(9)

पहला दिवस (नागौर) २८०२८८ (टेप से)

(1) A

○ प्राचीन ज्ञान विज्ञान एवं मध्यस्थ दर्शन, सह अस्तित्व वाद व जीवन विद्या पृष्ठभूमि

आज हम हर एक पहलुओं में पराभव की ओर जा रहे हैं।

पराभव — वर्तमान स्थिति

आज जितना सामर्थ्यशाली है कल और कम, आज जितना सामाजिक है कल और थोड़ा असामाजिक, आज जितना व्यवस्था में कल थोड़ा और कम व्यवस्था में पाते हैं। समस्त ज्ञान विज्ञान के चलते। आज से कल बदतर से बदत्तर की ओर चल रहे हैं। एक वाक्य में कहे तो मानव सामाजिक रूप में असामाजिक, आर्थिक रूप में और विपन्न होता जा रहा है राजनैतिक स्थिति में और अव्यवस्था में चलते चला जा रहा है। राजनैतिक विफलता को द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध के रूप में हम देख पाते हैं। सामाजिक रूप में जो हम देखते हैं अनेक जाति, पन्थ और सामाजिक चेतना कट्टरता की तरफ जा रहा हैं। आर्थिक रूप से आज किसी एक को दो के साथ लाने का प्रयास करते हैं तो कल वह १० और २ के अनुपात में पाते है। दस और दो को एक साथ लाने का प्रयत्न किया तो वो १०० और दस के अनुपात में हो गया। और आगे ~~कारण~~ बढ़े तो असमानता ही बढ़ी पायी। इसके कारण में पाया कि व्यापार चेतना और नौकरी की चेतना मनुष्य को आर्थिक असमानता की ओर दौड़ा रहे हैं। अनेक जाति, पंथ, सम्प्रदाय मनुष्य को कट्टरता की ओर दौड़ा रहे हैं जिससे विप्रतिक्रिया आदमी जात भय, भ्रान्ति की ओर जा रही है। इससे आदमी जात पटरी पर नजर नहीं आ रहा है।

मेरा मूल उद्देश्य दर्शन प्रस्तुत करना नहीं था। हमारा देश आजाद हुआ। सत्ता हस्तांतरित हुआ। सत्ता पा अपने जन बैठे/ ~~जनप्रतिनिधि~~ बने। तो हमारा संविधान राष्ट्र चरित्र क्या है इसे स्पष्ट नहीं कर पाया? इस मूल तत्व से मुझे चोट लगी। इसकी दवाई अन्य आदर्शों से न करके स्वयं काम शुरू किया। इससे स्वरूप का रूप कैसे समझ में आया। ~~कैसे आया~~। तत्व कैसा है! अस्तित्व में मानव कैसा है। मानव का प्रकृति कैसा है। व्यवहार में भी देखने लगा। वाङ्गमय रूप देने लगा तो मध्यस्थ दर्शन बन गया। सह अस्तित्ववाद हो गया। योजना बनने लगा। मेरी संवेदनशीलता या अनन्त का ~~अनन्तता~~ रूप कहिए, किसी योग या संयोग से ही क्रियाशील तो सारी वस्तु का जन्म होता ही है अनन्त से हमारा सम्बन्ध है ही, इसे बाद में कहूंगा। भारतीय संविधान में राष्ट्रीय चरित्र पहचाना जा सकता है ये विश्वास उत्पन्न हुआ। एक मात्र आविष्कार में इतना बड़ा।

दूसरा भाग – मनुष्य अभी तक दो प्रकार से घूमा।

ईश्वरकेन्द्रित चिन्तन ज्ञान

एक बार ईश्वर को बीच में लाया। रहस्य मूलक ईश्वरीय चिन्तन ज्ञान-
को हम ज्ञान मानते आये। इसके आधार पर मनुष्य ईश्वर से सम्बद्ध
होने की बात को माना। फलस्वरूप ईश्वर को केन्द्र मानकर
हजारों में हम सत्य को खोजने लगे। उसके लिए अनेकानेक
विभूतियों अपने को प्रयोग किए, अर्पित किया, ख्याति भी पाये।
जिनको हम आदर्श पुरुष मानते हैं। इससे दो प्रकार के

चरित्र (जिन्हें आज भी श्रेष्ठ मानते हैं) < भक्ति वादी चरित्र / विरक्ति वादी चरित्र

न भक्तिवादीत्व न ही विरक्त | ये दोनों ही शिक्षा एवं व्यवस्था का आधार या सूत्र नहीं बन पाती।
फलस्वरूप ये व्यक्ति की सीमा में रह गयी। या व्यक्ति को जितना
भी संसार, लोक, स्वयं श्रेष्ठ माना इससे कहीं-२ तृप्ति मिलती
सर्वाधिक ~~महापुरुषों~~ प्रयासों के बाद फिर महापुरुषों को
हम पढ़ पाये, समझे या माने उस आधार पर हमें शिक्षा
और व्यवस्था का कोई सूत्र नहीं मिला, राष्ट्रीय चरित्र नहीं
बन पाया।

इसके चलते हुए मानव आगे-२ इससे प्रयास करता ही
रहा। कोई न कोई ~~परम्परा~~ पंथ, मत, सम्प्रदाय, जाति, भाषा
हर एक अपनी श्रेष्ठता अनुसार किसी न किसी परम्परा को अपनाया।
और एक दूसरे के साथ टकराने की जगह में आ गये।
ये टकराने की जगह में रहा – विज्ञान। ये दूरी को चय दिए।
सब अपने-२ जगह जीते रहे, हो सकता है वो शान्ति पूर्वक भी
जिया होगा। अशान्ति पूर्वक भी जिया होगा। एक समुदाय दूसरे
समुदाय से जब-२ मिला है, स्थापित करने गया है तो टकराहट
ही मिली। ये सब घटनाएं किसी न किसी रूप में इतिहास में
प्रकाशनार्थ से रखा गया है।

वस्तुमूलक चिं० ज्ञान

इसके बाद जब हम दूसरी विधि से पहुंचे तो वस्तु
को बीच में ला लिये। जिसको विज्ञान युग कहा जा सकता है
जिसमें वस्तु को बीच में रखकर मनुष्य को चारों ओर घुमाया।
वो कहीं ले गया –

हम आवश्यकता से सुविधा, सुविधा से भोग, भोग से
अति भोग, बहु भोग की ओर चल पड़े। यह भी सर्वविदित
है कि भोग, अति भोग, बहु भोग व्यक्तिवादी होता है। यह समाज
हो नहीं ~~करना~~ सकता। न समुदाय हो सकता। जब समुदाय ही
नहीं होता तो समाज कहां से होगा। ये अपने को स्पष्ट रूप में प्रमाण
रूप में ~~सम्मुख~~ रखा हुआ है ही

इन दोनों को मिलाकर या किसी एक को सर्वाधिक लेकर

रहस्य से वाद विवाद

किसी गति को आगे बढ़ाना है तो पीछे की गति को स्पष्ट रखना ही पड़ेगा। अन्यथा आगे की गति नहीं हो पाती।

एक बात पर विचार करें, रहस्य की पृष्ठ भूमि पर हम जो कुछ भी कहें, चाहे ईश्वर कहे, परमात्मा कहो, सत्य कहो यदि उसके मूल में रहस्य ही है उस स्थिति में क्या स्पष्ट होगा क्या शिक्षा की वस्तु होगा? शिक्षा की वस्तु विश्लेषण और प्रयोजन है। बिना इन दोनों के शिक्षा का कोई अर्थ नहीं।

ईश्वर के. चि. ज्ञान

किसी भी वस्तु का आधार यदि रहस्य हो जाती है तो उस वस्तु से अथवा रहस्य से कोई हम वाद विवाद विहित सूत्र नहीं पा सकते। हमने यदि कोई सूत्र निकाल कर लिया भी तो दूसरा उस पर प्रश्न उठायेगा ही, शंका करेगा या विवाद उठायेगा। चूंकि प्रत्येक व्यक्ति में कल्पनाशीलता और चिन्तनशीलता सहज वर्तमान है। यदि मैं रहस्य और कल्पनाशीलता से कुछ सूत्र निकालता हूँ तो आप दूसरा सूत्र निकाल दोगे। तो विवाद ही उपजेगा। विवाद होगा ही। और कोई चीज निकालोगे तो भी विवाद ही उपजेगा/ वाद विवाद का परिणाम जितने भुगत ही चुके हैं। मेरा निर्णय, मेरा अनुभव और ज्ञान यही कहता है कि मनुष्य किसी भी चीज चाहे शिक्षा अथवा व्यवस्था अथवा आचरण अथवा व्यवहार के अथवा अपने व्यवसाय के आधार पर सूत्र निकाले वे अस्तित्व के आधार पर ही होगी। अस्तित्व में जो नहीं है उसका कोई आधार नहीं है उसका कोई सूत्र भी नहीं मिलेगा। ईश्वर को यदि सम्पूर्ण अस्तित्व मान भी ले तो रहस्य के आधार पर कोई सूत्र जो शिक्षागम्य और व्यवस्था के आधार के लिए नहीं मिलता। उसका आधार न कारण उपरोक्त से स्पष्ट हो गया।

वस्तु केन्द्रित ज्ञान

<u>वस्तु केन्द्रित चिन्तन ज्ञान</u> — इसमें हम वस्तु को तोड़ फोड़ कर पहचान ले गये हैं कुछ अधूरा ज्ञान भी कर लिए। प्रत्येक वस्तु में रूप, गुण, स्वभाव धर्म अविभाज्य रूप में वर्तमान रहते हैं। जिसे हम विज्ञान मानते हैं, जिस विधि को विज्ञान माना है, वहाँ हम रूप एवं गुणों तक सूत्रों को निकाल लिया। इसी विज्ञान को शिक्षा का आधार भी मान लिया है। विज्ञान से हम <u>विकास विधि के</u> स्थान पर <u>ह्रास विधि से गये</u>, जब उसे प्रमाणित करने गये तो <u>यन्त्र प्रमाण में रुक गये</u>। <u>व्यवहार प्रमाण में पहुँच नहीं।</u> चूंकि किसी भी वस्तु का रूप, गुण ही सब कुछ नहीं है। स्वभाव और धर्म के बिना सम्पूर्णता मिलती नहीं। दोनों के आधार पर ही जिसे विज्ञान मान लिया है। इस अधूरेपन के कारण, व्यवहार प्रमाण के स्थान पर यन्त्र प्रमाण मान लिया।

विज्ञान का उपकार

एक उपकार जो विज्ञान से हुआ। दूरी कम हुई। दूरी का भय, दूरी का दबाव यन्त्र विधि से कम हुई। दूरी घटने मात्र से मनुष्य में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं मिला। वस्तु में भी कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं, बल्कि विविध-२ वस्तु को पैदा करने लगे, उपयोग में लाये वहाँ भी विकास के स्थान पर ह्रास ही पाया। अतः शिक्षा और व्यवस्था का पर्याप्त आधार होना सम्भव नहीं पाया। अपर्याप्त होना स्वयं में एक अव्यवस्था की ओर रास्ता बना दिया। मनुष्य का गुणवत्ता, मनुष्य की वितृष्णा इसके लिए बहुत तादाद बढ़ा दिया और वस्तु खोटा हो गया। इस प्रकार मनुष्य विज्ञान के आधार पर हर दिन दरिद्र होने के लिए ही बाध्य हुआ न कि सम्पन्न के बल्कि सम्पन्न होने की सम्भावना घटती गयी।

विज्ञान से प्राप्त दरिद्रता

उपरोक्त दोनों मिलाकर, जोड़कर, घटाकर, काटकर, छांटकर शिक्षा और व्यवस्था का आधार नहीं बनाया जा सकता?

दो गलती मिलाकर — एक सही नहीं होती।

वस्तु पूर्ण

कोई वस्तु यदि पूर्ण होती इसलिए सम्पूर्ण होती, उसमें कोई खामियां नहीं होती। जबकि कोई आधा-आधा मिलाकर पूर्ण बनाया जाय, इन दोनों को कोई जोड़ने वाली भी कोई तीसरा वस्तु होगी। उसको खोजने लगेंगे तो वो मनुष्य ही बीच में आयेगी। मनुष्य के बीच में आयेगा ये दोनों मनुष्य में समाहित हो जायेगी। फलस्वरूप इन दोनों का चरित्र अलग से दिख नहीं पाता।

दो वस्तु को काटकर जोड़ने वाली वस्तु चाहिए

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान में जिसको हम ईश्वरीय ज्ञान कह रहे हैं, जिसे वस्तु केन्द्रित ज्ञान कह रहे हैं दोनों का द्रष्टा मनुष्य ही मिलता है। फलस्वरूप दोनों पक्ष के ज्ञान का जो धारक वाहक मनुष्य के रूप में मिलकर प्रमाणित हो जाता है। ये दोनों अलग-२ न होकर मनुष्य में समर्पित हो जाते हैं। अतः जो काटकर कुछ नहीं हो सकता। विगत में कोई प्रयास हुआ। शिक्षा परिपूर्ण होने के बाद ही व्यवस्था की सम्भावना को सोचा जा सकता है।

मनुष्य में दोनों समर्पित

ईश्वर केन्द्रित चिन्तन ज्ञान के द्वारा ही धर्म की बात बहुतायत रूप में कही गयी। ईश्वर को बीच में लाने से रहस्य स्वाभाविक रूप से आया। रहस्य के आधार पर धर्म को मूलतः समझाना सम्भव नहीं हुआ। धर्म को प्रतीकों और लक्षणों के आधार पर समझाने का प्रयास हुआ। इस प्रयास को समझाने के प्रयास में धर्म को ईश्वर वाणी के रूप में मनुष्य को स्वीकारने के रूप में बाधित किया। कितने भी धर्म ग्रन्थ हैं, धर्म के मूल ग्रन्थ हैं, ज्ञान का सार कहलाता है, वे सब ईश्वर वाणी ही मान विभिन्न देश काल में विविध व्यक्तियों ने घोषणा किया।

ईश्वर केन्द्रित ज्ञान से धर्म, धर्मशास्त्र

धर्म ईश्वर वाणी

हर जगह में जो धर्म ग्रन्थ मिले उसे मानव ने ईश्वर वाणी मानकर स्वीकार लिया है। एक जगह जिस धर्म ग्रन्थ में जो कहा गया दूसरी जगह उससे विपरित कुछ बातें दूसरे धर्मग्रन्थों में लिखी है। इन्हीं विरोधों के आधार पर मनुष्य अपनी कट्टरता पर में चला जाता है। सम्प्रदाय की सीमा में रह जाता है। धर्म की सार्वभौमता नहीं हो पाती है। बहुत बड़े समुदाय अपना बल के आधार पर धर्म को विस्तृत करने का काम इस धरती पर हुआ। इससे अनेकों संघर्ष हुए। कितने लोग वास्तव में आज भी धर्म तब से वास्तविक जीवन जी पाये, देखने को चले तो प्रश्नवाचक चिन्ह उभरता है। धर्म से तृप्त व्यक्ति मैं हूँ ऐसा कहने वाला व्यक्ति ~~मैं हूँ ऐसा कहने वाला मैं हूँ~~ होंगे तो इस धरती पर अभी मिला नहीं यदि मिलता है तो उनको सादर नमन है ही।

धर्मग्रन्थों में भिन्नता से वादविवाद

व. के. चि. ज्ञान का धर्म न्याय, विषम से कोई लेन देन नहीं

वस्तु केन्द्रित चिन्तन ज्ञान के आधार पर जब हम दौड़ते हैं तो धर्म का कोई मतलब ही नहीं। वस्तु ~~का~~ वस्तु से धर्म से कोई लेन देन नहीं, इतना ही नहीं न्याय से भी कोई कोई लेनदेन नहीं, विषमता से भी कोई लेन देन नहीं, वस्तु से केवल इतना ही लेनदेन है कि वस्तु से संग्रह कितना हो सका, कितना संग्रह नहीं हो सका इतने से ही हम रह जाते हैं। वस्तु से स्वयं उठ नहीं पाते। वस्तु को स्वयं लाद लेने के बाद इससे ज्यादा हम हो नहीं पाते। वितृष्णा में फंसे ही रहते हैं।

वस्तु के. चि. ज्ञा. से भी समाज और व्यवस्था नहीं मिली

वस्तु केन्द्रित चि. ज्ञान से वस्तु से यन्त्र प्रमाण से हमने चलने की दूरी को घटाया, सुनने की दूरी को घटाया, देखने की दूरी को घटाया। ये तो मिला, जो शेष मिलना चाहिए था मिला नहीं। यानि सामाजिकता मिली नहीं अखण्ड सामाजिकता मिली नहीं है। सार्वभौम व्यवस्था चाहिए ये मिली नहीं है इन दोनों आधारों पर हम पूर्ववर्ती ज्ञान को आधा अधूरा ही मान सकते हैं। पूरा नहीं मान सकते हैं।

पूर्णता के लिए चिन्तन आवश्यक

अतः पूर्णता के लिए चिन्तन अवश्यम्भावी है। चाहे आप करें, चाहे तुम करो, चाहे मैं करूं। अस्तित्व में जो ~~विचार है~~ जो पूरा होने तक निरन्तर प्रयास, प्रयोग, सतत अभ्यास रहेगा ही रहेगा।

वादविवाद का कारण धर्म का रहस्यमय होना

सार संक्षेप में वादविवाद का कारण बना धर्म ~~रहस्य~~ स्वयं रहस्यगम्य होगा, वह अध्ययन गम्य होना और व्यवहार, व्यवस्था का सूत्र नहीं बन पाया। जब व्यवहार और व्यवस्था नहीं बन पाता तो शिक्षा का स्वरूप नहीं लेना पाया गया।

राज्य

राज्य की इतिहास संक्षेप में ये है। राज्य से पूर्व, राज्य के पहले कोई हुआ कल्पना के पूर्व परिवार, ग्राम या कबीला के रूप में जो पनपी मान्यताएं, उस परम्परा में एक दूसरे कबीला के साथ, ग्राम, ग्राम समूह के साथ जो कटुता पनपी, जो एक चिन्ता बोध रही, कटुता पनपी। फलस्वरूप राज्य की परिकल्पना बनी। फलस्वरूप राजा की कल्पना हो पाई। राजा को एक निर्विवाद वस्तु माना गया। राजा का वाक्य संविधान माना गया। और उसको लोग मानने के लिए बाध्य हुए। इस स्वरूप में एक राज्य दूसरे राज्य के साथ शत्रुता को मोलता गया। एक दूसरे के साथ युद्ध अभ्यास, नव नीति विकसित हुई जो वर्तमान है।

राज्य अभी मिला नहीं

राज्य न तो गद्दी में बैठने वाले, अथवा गद्दी को ताकने वाले को अथवा गद्दी से चालित होने वालों को अभी तक नहीं मिला। और राज्य की वास्तविक परिकल्पना स्वराज्य के रूप में स्वराज्य की परिकल्पना अभी तक किसी ही होनी है। राज्य की अन्तर्गत, समुदायगत व्यक्तियों का गद्दी परस्त होने में ही अभी तक कल्पना की गई है।

अभी हम जिस गणतन्त्र राज्य प्रणाली में आए हैं उसके पराभव का कारण यही है कि गणतन्त्र शासन वोट, नोट और बटवारा के चक्कर में आ गया। और समुचित मतसम्मति से वास्तव में गणतन्त्र शासन नहीं हो सकता। गणतन्त्र शासन के रीति व्यवस्था हो पाती है। मानव परम्परा में सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र नहीं हो पाया।

मानव परम्परा अभी बनी नहीं

हर व्यक्ति व्यवस्था को चाहता है। जब राज्य किसी को मिला नहीं फिर भी उसकी परिकल्पना तो है ही। उसका स्वरूप और उसका संगीतबद्ध सम्भावना और आकांक्षा है। इसका आधार है मनुष्य में कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतन्त्रता सहज रूप में है। इन दोनों का तृप्ति बिन्दु स्वराज्य में मिलता है। ये ही वास्तव में मानव परम्परा की सूत्र रूप है।

। समुदाय में न तो समाज होता है तथा समाज न तो समुदाय हो पाता है। अखण्ड राष्ट्रीय चरित्र समुदाय के लिए नहीं, मानव के लिए होता है।

मानव परम्परा का माध्यम

व्यवहार रूप कैसे दिया जाय? जन मानस तक कैसे पहुँचाया जाय, ये अब मुख्य बात है। वो ध्रुव है। क्रम है। शिक्षा। यदि शिक्षा, संस्कार को सही कर ले तो जन मानस तक जीवन विद्या, सार्वभौम व्यवस्था तथा अखण्ड समाज की सम्भावना भी पहुँचेगी। इन ये तीन चीज शिक्षा के माध्यम से आप पहुँचेंगे। दूसरा ध्रुव राज्य का जो केन्द्र है, ध्रुव है तो पता चला तो परिवार में है। परिवार में राज्य का आधार कुछ अजूबा, गरिमा लगता है। परन्तु परिवार में मनुष्य का

व्यवस्था का केन्द्र परिवार

सम्पूर्ण पहिचान हो पाता है। परिवार को छोड़ने के बाद मनुष्य की पूर्ण पहिचान नहीं हो पाती। पूर्ण पहचान के बिना मनुष्य का पूर्ण मूल्यांकन नहीं हो पाता। अतः परिवार में ही मनुष्य का सम्पूर्ण

परिवार की परिभाषा

व्यक्तित्व मूल्यांकित हो पाता है। अतः परिवार में स्वराज्य की भ्रूण अवस्था अथवा ध्रुव है। उसको पहचानने की जरूरत है। परिवार की स्वरूप परिभाषा बनेगी - व्यवहार मानव, उत्पादन मानव, और व्यवस्था मानव मिलकर के जो स्वरूप हो पाता है उसकी परिभाषा बनेगी कि परिवार वो है जो परस्पर सम्बन्धों और मूल्यों की पहचान करता हो और व्यवसाय कार्य में एक दूसरे के लिए पूरक हो, ऐसा जो न्यूनतम मनुष्य की निर्वाह स्थिति है, कार्य स्थिति, अभ्यास स्थिति है, समझदारी की स्थिति ये ही परिवार के नाम

परिवार में अर्पित

से स्पष्ट हो पाता है। (हर मानव ऐसा परिवार चाहेगा ही) चूँकि अकेले में किसी व्यक्ति की पहचान हो नहीं पाता। इसलिए हर व्यक्ति किसी परिवार को वरता है। परिवार में ही पहले अर्पित होता है। उसके बाद किसी शिक्षा संस्था में अर्पित होता है किसी राज्य संस्था धर्म संस्था में अर्पित होता है। ये सबों विदित होती देखी हुई बात है। अतः परिवार स्वराज्य की स्थापित बनती है।

० जीवन विद्या की पृष्ठ भूमि

(स्वंय की पहचान शरीर यात्रा में पहचान) स्वंय को पहचानने की चिर आकांक्षा आदि काल से मनुष्य में देखने को मिलती है। उसके लिए बहुत प्रयास हुए। बहुत साधना किए गए हुई। आज भी जो साधना है उसमें अधिकांश भाग स्वंय को पहचानने में प्रयोजित किये हैं। जब हम स्वंय को पहचाने तो इसका निश्चित समय कहीं नहीं मिलता। किन्तु, जीवन विद्या और जीवन विद्या में उपलब्धि सहित साधना में एक ही शरीर यात्रा में जीवन को अच्छी तरह समझ सकते हैं, जी सकते हैं और प्रमाणित कर सकते हैं। ये मौलिक अन्तर है।

(शक्ति व बल समान) विश्वास ये किया जाता है कि जीवन का जो स्वरूप है शक्ति और बल के रूप में वो सब में ~~समान~~ ~~समान~~ समान दिखती है।

जैसे मैं आशा करता हूँ कितना भी करता हूँ उसके बावजूद भी हमारे पास आशा करने की पूँजी शेष दिखाई पड़ती है। इच्छा करता हूँ कितनी भी इच्छा करता उसके बावजूद भी इच्छा करने की शक्तियाँ दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार विचार, संकल्प, अनुभव में भी यही बात है। आप में भी यही है। इस प्रकार जीवन शक्तियाँ सब में समान रूप में हैं और ये अक्षय है। इन ~~दो~~ दोनों पर [illegible] करना होगा। अन्य उदाहरण कल्पना, कितनी भी कल्पना कर सकता है। इसी प्रकार आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और अनुभव को अनुरूप रूप में ~~करता ही है~~ मनुष्य करता ही है। इसी से मनुष्य की परिभाषा ही बनी है। शरीर और जीवन का संयुक्त साकार रूप में।

(जीवन को शरीर की आवश्यकता) अब जब जीवन अक्षय बल है उसे शरीर की क्या आवश्यकता थी? चूँकि अस्तित्व स्वंय सह अस्तित्व के रूप में मिलता है। सह अस्तित्व का प्रभाव कभी भी समाप्त नहीं होगी। जड़ प्रकृति व चेतन प्रकृति में सहअस्तित्व का ही प्रभाव है। सह अस्तित्व का पहला चरण चेतन प्रकृति का जड़ प्रकृति के साथ बनता है। जड़ प्रकृति का दो स्वरूप (भौतिक एवं रासायनिक स्वरूप) होता है। रासायनिक

(रासायनिक उत्कर्ष) स्वरूप का जो भाग है उसी का जो वैभव है, उत्कर्ष है, मनुष्य शरीर, जीव शरीर, वनस्पतियों की रचना के रूप में मिलता है। इससे पता चला कि भौतिक पराकाष्ठा रासायनिक उत्कर्ष है। रासायनिक उत्कर्ष पहुँचने के बाद इस धरती पर सर्वोत्कृष्ट रचना मानव ही है।

रचना क्रम भी श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर और मनुष्य शरीर तक पहुँचा है। मनुष्य शरीर रचना होने पर जीवन को व्यक्त होने की समस्त सम्भावना उदय हो गयी। मनुष्य शरीर के द्वारा ही जीवन आयामों में व्यक्त करने की प्रमाणिकता सभी आयामों में समीचीन होती है। जैसा सभी आयामों (बोलने, कूदने, खाने में, पीने, समझने में, समझाने में, करने में कराने में) में सभी प्रकार से व्यक्त होने लगता है तो विशेषता बन जाती है, सहज हो जाती है कि शक्तियाँ व्यक्त होने के सहज क्रम में आ जाता है। जीवन व्यक्त होता है जैसे भूख को पहचानता है, रोता है, कुछ दिन के पश्चात टट्टी पेशाब, कपड़ा अच्छा लगना बुरा लगना ये पहचानता है। शब्द बोलने, नहीं बोलना क्या करना क्या नहीं करना इन विभिन्न आयामों में जीवन स्पष्ट हो जाता है। ये स्पष्ट करते-2 अन्ततोगत्वा हम प्रमाणिकता की ओर पहुँचते हैं। प्रमाणिकता जीवन का परम लक्ष्य है जीवन की अभिव्यक्ति का। प्रमाणिकता की स्थिति तक पहुँचते समय मनुष्य प्रमाणिकता की आधारभूत वस्तुओं को पहचानता है। इसी आधार पर प्रत्येक मनुष्य को प्रमाणिकता के लिए व्यवस्था देता है। एक दूसरे को समझने समझाने करने कराने के क्रम में हम चलते हैं। और उसी करने कराने और पहुँचाने निर्वाह करने के क्रम में व्यवस्था हो पाता है। संक्षेप में मनुष्य का बहु आयाम इस प्रकार से देखा जाता है। अब शरीर हो जीवन न हो या जीवन हो शरीर न हो तो मानव परम्परा का कोई अर्थ नहीं बनता। मानव परम्परा की जो महिमा गरिमा और महिमा है वह शरीर और जीवन के संयुक्त साकार रूप में ही है। इसको अलग-2 देखते हुए मानव परम्परा को पहचाना नहीं जा सकता। चिन्तन की जो दो धारा पहले बताई। उनमें शरीर का एक भाग जो जीवन को पहचानने के लिए दौड़ा, भले ही वो किसी भी भाषा में दौड़ा हो किन्तु जीवन को देखने, समझने के लिए खोजने के लिए। इसलिए जीवन समझ किन्तु वो शरीर को नगण्य मानकर चला शरीर को पहचानने के लिए दौड़ में नहीं आया। दूसरी धारा की शरीर को जीवन मान लिया। अतः जीवन को नगण्य किया। फलतः शरीर को प्रमाणित नहीं कर पाया। दोनों में ही पूरक दोनों प्रकार से जीवन को अभिव्यक्त होने का शरीर वस्तु को नहीं पहचाना। जीवन की मुख्य पाँच शक्तियाँ हैं। प्रत्येक शक्तियाँ दो-2 माध्यम हैं मुख्य (प्रधान) क्रियाएँ करता है। जैसे आशा, मन का प्रधान शक्ति है। ये दो क्रिया करता है। चयन और आस्वादन। प्रत्येक मनुष्य ये करती ही है चाहे हजार

जानवरों, बच्चों को
वस्तु रखता हो, बच्चा, होत्र वह उसमें से चयन करता ही है।
चयन आस्वादन — अपनी रुचियों के अनुसार चयन करता है। कायिक शरीर सीमा
शरीर सीमा — में होती है। अपने दायरे की वस्तु ही चयन करता है। जो रुचियां शरीर
सीमा से भिन्न होती है उसका अर्थ होता है। शब्द का अर्थ होता
है क्रिया का अर्थ होता है, व्यवहार का अर्थ होता है, मन, मानसिकता
मन या मन में चयन आस्वादन — का अर्थ होता है। उसी में आस्वादन करना शुरू करता है।
दो भाग चयन और आस्वादन का एक शरीर की सीमा में
दूसरा अर्थ के रूप में, मूल्यों के रूप में यानि मौलिकता के
रूप में जो अर्थ होता है, उस अर्थ को चयन करके आस्वादन
लेता है सन्तुष्ट होता है। जैसे हम शरीर के अनुकूल वस्तुओं
का चयन करना — न्यायिक तथा प्रतिकूल वस्तुओं का चयन करना
व्यवस्था के
स्वाभाविक रूप से अन्याय हुआ। यदि अखण्ड समाज के लिए हम
वस्तुओं का चयन करते हैं तो वह न्यायिक हुआ। दो भाग हुए।
तीसरा भाग है जीवन तृप्ति के लिए चयन और आस्वादन करना।
जीवन तृप्ति के चयन आस्वादन — इस प्रकार अखण्ड समाज और व्यवस्था के रूप में जो चयन
और आस्वादन है अर्थ के मूल में तो आप हम इस बात को
मानेंगे, समझेंगे, सार्थकता को तो मात्र सार्थकता के लिए मनुष्य सार्वभौम
प्रयत्न करता ही रहा। सार्थकता के लिए मापदंड अखण्ड
सार्वभौम
अखण्ड समाज और अखण्ड व्यवस्था। लेकिन वर्तमान शिक्षा में
इसका कोई सूत्र मिला नहीं। इसके लिए
तथा चयन और आस्वादन को ऐसा सूत्र नहीं मिलता। सार्वभौम
व्यवस्था बहुत सहज है, मानव सहज है, मानव कामना सहज है
मानव अपेक्षा सहज है जैसा न्याय, विनिमय, उत्पादन सुलभ
हो जाये, इन तीन के सुलभ होने के लिए समुचित शिक्षा,
संस्कार सुलभ हो जाये। ये व्यवस्था का नमूना है, हर व्यक्ति
की जरूरत है। प्रत्येक व्यक्ति इसके लिए तत्पर है। इसलिए
व्यक्ति की सन्तुष्टि के लिए नमूना मानव मात्र के सामने
उस मानस तक ले जाने की प्रेरणा हुई अभ्यास
अभ्यास — अभ्युदय के लिए जो भी करता है (कायिक, वाचिक, मानसिक
कृत कारित अनुमोदित विधि से) कुछ भी क्रियाकलापों को हम
करता है इस सार्थकता को जो
आचरण → व्यवहार → प्रयोजन (अखण्ड समाज
सार्वभौम व्यवस्था) का हम अभ्यास कहेंगे।
अध्ययन से इति तक। सार्थकता के बाद है प्रयोजन आता है।
प्रयोजन इसके लिए प्रमाणिकता की आवश्यकता है।
इसमें जीवन और [illegible] लगता है। अखण्ड समाज और
सार्वभौम व्यवस्था को और कुछ [illegible] चीजें समझने लगती हैं, जानने,
मानने, पहचानने और [illegible] के आगे [illegible] है।

(जानना, मानना) यह चारों निर्वाह करने उसमें वैज्ञानिकता, समाज, धरती (13)
ज्यादा से ज्यादा सफल होती है या सफल होने के लिए रेखा
बनता है और जहाँ जानने मानने की बात आता है मानव
पूरा अस्तित्व अपने में जो व्याख्यायित है अनन्त और
(अस्तित्व) व्यापकता के रूप में, व्यापक सत्ता में अनन्त इकाई के रूप
में प्रकृति, नित्य वर्तमान है, सामरस्य रत है, क्रियाशील है,
विकासशील है। अस्तित्व के पूरे नक्शे को हृदय
में यदि प्रतिष्ठित करते हैं तो ये जानने मानने में आता है।
(विकास) जानना मानना भी एक विशालतम सम्भावना है, आवश्यकता
समाहित है। अस्तित्व स्वयं सह अस्तित्व, और
उसमें विकास। विकास का जो मूल रूप है वह
मूलतः परमाणु में है। अणुओं में विकास को देख
नहीं पाते। वस्तु जैसी होगी उसी वास्तविकता
के आधार से ही जानना होगा, मानना होगा। हमारी कल्पना
या मान्यता के आधार पर वस्तु की वास्तविकता को
व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। यथार्थता को,
सत्यता को जानना होगा, मानना होगा। प्रमाणिकता
के आधार ही है इसे जानना होगा। जानना मानना
की जो वस्तु आई - अस्तित्व, विकास, इसके
(जीवन जागृति) आगे जीवन कैसा ही, किस पद में है उसको जानना
मानना। इसके आगे चौथा पद है जीवन
जागृति। जीवन जागृति क्या क्या, है क्यों होता है,
इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त होता है। पांचवा मुद्दा
रासायनिक भौतिक रचना विरचना की बात आती है।
अभी तक की मानव परम्परा किसी न किसी अंश
में सफलता मानते हैं। कुछ पढ़या न पाया का पाया
(जानने, मानने वस्तु) इनकी चर्चा हो चुकी है।
अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति के बारे बहुत
प्रचार हुआ। इसमें कोई शंका नहीं। लेकिन पूर्ण
उपलब्धी हमें मिला नहीं।
अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान में ये चारों
सुलभ है, अध्ययन गम्य है, कैसा है समझ में आएगा।
जैसा अस्तित्व अध्ययन गम्य है, कैसा है समझ में आएगा
अस्तित्व अपने वैभव को प्रतिष्ठा के रूप में व्यक्त
किये रहता है। वर्तमान कभी खंडित हुआ दिखाई दिया नहीं।
अतः अस्तित्व निरन्तर है। मानव परम्परा, जीवन, प्राण
मानव परम्परा आशा आधार है।

एक दूसरे के साथ पूरकता उदात्तीकरण के रूप में संयोजित
है, उपकारी बने हैं एक दूसरे के साथ गुंथे हुए हैं,
इस प्रकार एक दूसरे के साथ सूत्रित है, प्रायोजित है, अनुप्राणित
है प्रमाणित है। मूल रूप में, सूक्ष्म रूप में भी बहुत सारे
व्यक्ति दिख पड़ते हैं। मनुष्य ही इसका द्रष्टा है। वह ही
प्रमाणित कर पाता है। जैसा मैं अस्तित्व को देखा, दूसरों
को समझाऊंगी व्यवस्था है तरीका है, बाद में ये बातें आप
के बातों का प्रकाश किया।

अस्तित्व

मैंने अस्तित्व को देखा। मानव, जीव जगत, वनस्पति
जगत, खनिज जगत अविभाज्य रूप में वर्तमान है।
अस्तित्व अपने में ऊर्जा में सम्पृक्त, सम्पूर्ण है।
ऊर्जा एक एक के दूसरे एक-एक के बीच में विरल
दिखाई पड़ती है। जिसको हम अभी तक समझने में
असमर्थ रहे हैं। मूलत यही कारण है जो हमारा इतना सारे
लोगों के परिश्रम लगाने के लिए आधा अधूरा है।
सम्पूर्ण ज्ञान - अस्तित्व में है, अस्तित्व से, अस्तित्व
के लिए है। यानी जो होता है वो जीवन ही होता है
दृष्टा पद में होने के कारण। जीवन के प्रभाव क्षेत्र
और रोशनी के आधार पर सम्पूर्ण वस्तु को देखा होता है
समझा होता है। देखने का मतलब समझने में ही सार्थक होता है
देखने का मतलब आँखों से देखने से नहीं, समझाने में जीवन में
चरितार्थ होता है। चरितार्थ होना तीव्र रूप में यथावत्ता
वास्तविकता एवं सत्य के रूप में आ पाता है। अस्तित्व ही
जैसा है वैसा है। जैसा है जीवन भी
परम सत्य है और सत्य जितना है साफ दिखाई देता है जितना
रोशनी में दिखाई पड़ता है और जितना है उतना हमें मिलता ही रहेगा।
जीवन को जीवन में जरूरत है, और यदि भाषा दें तो
बहुत तो घटता है न बढ़ता है, ऊर्जा व्यापक है, इकाईयां

अनन्त व्यापक

अनन्त और व्यापक। ऊर्जा की लम्बाई चौड़ाई गहराई को हम नाप नहीं
अनन्त है। इकाईयों को भी हम गिन नहीं पाते अतः अनन्त।
पाते अतः व्यापक। व्यापक ऊर्जा अतः व्यापक ऊर्जा में अनन्त इकाईयों का
इकाई। अतः व्यापक ऊर्जा में अनन्त इकाई घिरा हुआ और डूबा हुआ।
सम्पृक्त रूप। यानि भीगा हुआ, घिरा हुआ और डूबा हुआ। नियन्त्रण प्रमाणित है।
घिरा हुआ से हर एक-एक का नियन्त्रण प्रमाणित है और भीगा हुआ से
डूबा घिरा हुआ से क्रियाशीलता प्रमाणित है और ऊर्जा सम्पन्नता प्रमाणित है। ऊर्जा सम्पन्नता
हर एक एक में ऊर्जा सम्पन्नता प्रमाणित है। ऊर्जा बल और
ऊर्जा सम्पन्नता के नाम से जाना जाता है। रूप में हर एक एक में छिपा है।
ऊर्जा शक्ति का अविभाज्य रूप वर्तमान है।

मूल्य

मूल्य — ~~वस्तु की~~ मौलिकता ही मूल्य है।
मूल्य = अभाव = गुणों ~~की~~ का नियोजन।
गुण = सापेक्ष शक्ति; सापेक्ष शक्ति ⇒ गति → वातावरण। देश एवम् दिशा में।
शक्ति के दो भेद हैं —
(1) चैतन्य शक्ति।
(2) जड़ शक्ति।

चैतन्य शक्ति — (1) आशा, (2) विचार, (3) इच्छा, (4) संकल्प (5) अनुभूति
जड़ शक्ति — (1) ऊष्मा (2) प्रकाश (3) विद्युत, (4) ध्वनि (5) चुम्बकत्व।

शक्ति — बल का परावर्तन = शक्ति।

चैतन्य बल → आत्मा (1) मन (2) वृत्ति (3) चित्त (4) बुद्धि (5) आत्मा।

इकाई के निहित बल
इकाई ऊर्जामयता में स्थिति के कारण बल सम्पन्न होकर गतिवान है तथा गति ही के कारण प्रत्येक इकाई अपने ~~चारों~~ सभी ओर वातावरण निर्मित करती है।

प्रत्येक क्रिया क्रम गति परिणाम का आविर्भाव ~~...~~ है।
यही विकास का आधार ... पाता है। ये समझने में आता है।
अनुभव प्रमाण — इस ढंग से अनुभव मूल प्रमाणित सिद्धि से मानव
प्रमाणित हो जाता है और अस्तित्व में अनुभव परम प्रमाण है।
परम सत्य है। परम सत्य में ~~प्रमाणित होना परम...~~
अनुभूत हो गई प्रमाणित हो गई है।

विकास — अस्तित्व में पदार्थ अवस्था में मूल इकाई
विकास — जो परमाणु का नाम दिये हैं। परमाणु एक ऐसी सूक्ष्म वस्तु
का नाम है जो पदार्थ को विघटित करते चले जाये तो
परमाणु — स्वयं क्रियाशील एक स्वतंत्र मूर्त रूप में क्रियाशील एक
अवस्था मिलता है। ~~..~~ उस तरह जो हम परमाणु कह
रहे हैं। उसे पुनः प्रमाणित करते जाते हैं तो उसमें एक अद्भुत
बात देखने को मिलती है। हर एक क्रिया अपने में कई अंशों
सहित कार्य रत एक-एक रूप में मिलता है वो सम्मिलित
क्रिया — क्रिया के रूप में ही मिलता है। एक से अधिक अंशों से
गठित परमाणु होती है। ~~अंशों से~~ ऐसे परमाणु को
क्रम — हम क्रिया के रूप में देखते हैं। ऐसी क्रिया में क्रम गति
परिणाम स्थापित है। परमाणु के मध्य में अंशों का
परिणाम — घटना बढ़ना एक स्वाभाविक क्रिया है इसको परिणाम
का नाम दिया गया है। क्रम उसका नाम है मात्रा को
बदलने के रूप में जो कार्य हो रहा है, उसे क्रम का नाम
गति — दिया। गति की जो बात है। पदार्थ अवस्था में गति उसे
कहते हैं जो कई अंश मिलकर एक गति पथ ~~...~~ बनाते हैं
गति पथ में सम्पूर्ण ~~...~~ अंश और भी ~~..~~ भ्रमण
करते रहते हैं उसे ~~प्रथम रूप में,~~ प्रारम्भिक रूप में या
सम्पूर्ण रूप में गति माना गया है। ये गति का केवल रूप
हम ~~..~~ देखते हैं। आकार रूप में देखते हैं तो जो तुलनात्मक
रूप में मिलता है। ये तौल मिलाकर गति का मतलब है।
आर। अस्तित्व में ये सहज रूप में ~~मिलती है ...~~
समझने में आती है कि प्रत्येक वस्तु में बल ~~सम्पन्नता~~
रहती ही है इसलिए बल सम्पन्नता का आंशिक रूप
अंश परिवर्तन — निरन्तरता गति में होता है, शक्ति के रूप में होता है। ~~इसलिए जो~~
गति के रूप में प्रदर्शित हो पाता है। इसलिए हमारा
अध्ययन गम्य हो जाता है। ये आगे के पश्चात कुछ परमाणु
ऐसी स्थिति में रहते हैं जिनमें अंशों को समा लेने की
प्रकृति मिलती है, कुछ संख्या में ऐसे परमाणु होते हैं
जिनमें अपने में से कुछ संख्यागत अंशों को अपने में
से ~~...~~ करना चाहते हैं। उपरोक्त का महत्व बिन्दु

में स्थिति की आकांक्षा नाम से जा भौतिक रूप से इंगित होता है। रासा
होते, अजीर्ण होते के भी चाले हैं। जो तृप्त बिन्दु की ओर मनुष्य भी अनुभव
करता है। अति और न्यूनता के बीच में तृप्त बिन्दु का होना एक
प्रकृति सहज है, स्थिति सहज है, विकास सहज है, मानव सहज है,
अस्तित्व सहज है। इन सहज बिन्दुओं में जब हो जाते हैं तो ही
फल मिलाकर विकसित हो जाते हैं। विकास शील रहते हैं
भूखे और अजीर्ण परमाणु। ऐसे गठन पूर्ण परमाणु अपने
तृप्त होने के फल स्वरूप जो गठन पूर्णता के अर्थ को परिणाम
के अमरत्व के रूप में। ये ही गठन पूर्णता का महिमा शुरू
होता है। परिणाम का अमरत्व का जैसा ही स्थापित होता है तो
अपने बल अपने शक्तियां स्थापित होना पाया जाता है। चूंकि
अब मात्रा के अनुरूप शक्तियों का गठन अब समाप्त हो
जाता है। इसी के साथ और भी गुण पैदा होते हैं जैसे आणु
बन्धन से मुक्त। आशा बन्धन से युक्त होना। उसी से
आशा, विचार अनुभव, अनुभूति आदि शक्तियों का उदय होना पाया जाता है।
ये जीव प्रकृति में किसी न किसी अंश में, किसी न किसी
अंशात्मक चयन और आस्वादन की बात पाया जाता है। जीव जगत
में भी जिसमें परिष्कृत मेधा रचना हो चुकी है ऐसे शरीरों को
चलाने वाला भी जीवन ही है। और उसी क्रम में परिष्कृत मे
मेधस है मनुष्य शरीरों में रचित हो चुकी है फलस्वरूप
जीवन अपने को प्रकाशित करता है। ये क्रम जो पहले
इंगित कराया था सह अस्तित्व के प्रभाव क्षेत्र का रहा।
सह अस्तित्व अस्तित्व सहज होने के कारण। सत्ता में
सम्पृक्त प्रकृति। न तो सत्ता प्रकृति को छोड़ के दौड़
रहा तथा न ही प्रकृति सत्ता को। इसी प्रकार जड़ और
चेतन का सह अस्तित्व भी प्रकृति सहज है। इस क्रम
में विकास का जो पहला चरण है गठन पूर्णता के अर्थ में
जाना जायेगा। जीवन पद में आने के बाद जीवन जागृति
के एक अनिवार्य क्रम है। इस प्रकार जीवन जागृति को प्रमाणित
करना मानव का गरिमा और महिमा है। ये मनुष्य की विशेषता
मौलिकता या अनिवार्यता है। यह अनिवार्यता कोई लादी
जाने वाली वस्तु नहीं। ये जीवन सहज है। सहज जागृति का
जब भी विरोध करते हैं, विपरीत जाते हैं तो जागृति की
विवशता पायी जाती है। ये जागृति के लिए न कि अपराध
और अन्याय के लिए। अपराध व अन्याय के लिए कोई
अवस्था नहीं। ये भ्रम के कारण होता है इस से निकलने की
अवस्था है भ्रम से मुक्ति। प्रत्येक मनुष्य अन्य अवस्था
को समझने योग्य रहता ही है उसकी अर्हता है ही

गठनपूर्ण परमाणु

सहअस्तित्व

जागृति की अनिवार्यता

अव्यवस्था को समझते नहीं। अव्यवस्था का समाधान पीड़ा होना है। पीड़ा मनुष्य का वर नहीं। फल स्वरूप व्यवस्था को वरने की आवश्यकता बनता है।

अव्यवस्था

मानव मात्र बदलने

एक स्वरूप मनुष्य अव्यवस्था से पीड़ित होना तथा व्यवस्था से परास्त होना पाया जाता है। पीड़ा को कोई नहीं वरता। एक साधारण सूत्र है हर एक-एक अपने में व्यवस्था है, और समग्र व्यवस्था में भागीदार है। जैसा परमाणु में अनेक अंश होते हैं हर अंश अपने में एक व्यवस्था में तथा अन्य अंशों के साथ व्यवस्था में भागीदार हैं। ये परमाणु की व्यवस्था बनती है। अणु और रचनाओं में देखें तो प्रत्येक अणु अपनी अपनी जगह व्यवस्था में काम करता हुआ पाया जाता है। आपस में कहीं विरोध नहीं। प्राण रचनाओं में देखें। जड़ की कोशा के पत्ते की कोशा अपनी व्यवस्था में काम करते हैं कहीं कोई विरोध नहीं। उसी जीव और मनुष्य शरीर में भी देख सकते हैं। आँख, कान, नाक की कोशा स्वयं: अपने में व्यवस्था है।

व्यवस्था

जीवन

मनुष्य, जड़ और चैतन्य का संयुक्त साकार रूप। चैतन्य का मतलब जो चैतन्य परमाणु हुआ जीवन पद में आया जो चेतन पद में आया हुआ एक परमाणु है, जो भार से मुक्त होना, इच्छा से युक्त होना, अणुबन्धन से मुक्त होना, आशा विचार, संकल्प और अनुभव से युक्त होना तक सभी आयामों को प्रस्तुत करने में, प्रमाणित करने तक, सफल और अनुकूल अवसर मनुष्य परम्परा में है। मनुष्य शरीर के द्वारा ही जीवन इन सब बातों को प्रमाणित कर पाता है। इससे पहले की बातें जीव जगत में प्रमाणित करना सम्भव नहीं है। जीव जगत वंशानुषंगी अभिव्यक्ति है। वनस्पति जगत बीजानुषंगी अभिव्यक्ति है। और सम्पूर्ण पदार्थ अवस्था परिणामानुषंगी अभिव्यक्ति है। मनुष्य एक अद्भुत वस्तु है संस्कारानुषंगी अभिव्यक्ति। जीवन विद्या के नाम से जीवन को समझने के लिए हमारे जीवन समग्र रूप में सम्बोधित किया। प्रत्येक मनुष्य में जीवन समग्र रूप में विद्यमान है। जीवन समग्र रूप में है इसे प्रमाणित करने के लिए ही मनुष्य ही वस्तु हो पाता है। मनुष्य को छोड़कर अन्य संसार (जीव, प्राण व पदार्थ संसारों) मनुष्य को पहचानने का कोई आधार बनता नहीं। मनुष्य ही अस्तित्व

मनुष्य अस्तित्व का दृष्टा

(संसार) का दृष्टा हो पाता है। ~~...~~ अस्तित्व में ~~...~~ मनुष्य
एक ऐसी मात्र इकाई है ~~...~~ जो वर्तमान है। ~~इसी कीमत, वर्तमान~~
~~होने से ही जीवन को समझने का प्रयास~~

मनुष्य का वर्तमान इसी कीमत के आधार पर ही
अस्तित्व को समझने का प्रयास और वस्तुओं को समझने
का प्रयास जारी रहा। और मनुष्य को पहचानने का भरसक
प्रयास जारी रहा। जो कुछ भी अभी तक हुआ है (समीक्षा करें तो)

ईश्वरवाद व भौतिकवाद

मनुष्य को पहचानने के क्रम में ~~आदि से~~ अभी तक आज
तक हमने ~~...~~ शरीर ~~...~~ को मनुष्य मान लिया
अथवा जीवन मान लिया इससे पहचानना पूरा नहीं हुआ।
एक बार हम ईश्वर का दावा सा अपने मनुष्य को पहचानने के लिए
दौड़ गये, रहस्य में ही रहे। इसलिए ईश्वर का अंश होगा (जीवन)
एक सहज रहस्य प्रक्रिया रहा। इसलिए मनुष्य समझ में
आना पूरा नहीं हुआ।

समाज व्यवस्था नहीं मिला

इन दोनों से हम पार नहीं पाये। इन दोनों से ही अखण्ड
समाज और सार्वभौम व्यवस्था मिली नहीं। इन दोनों में मौलिक
अन्तर ये रहा जब मनुष्य ईश्वर का अंश है, अन्य जीव, ~~...~~
वनस्पति, पेड़ पत्थर इत्यादि भी जीवन का अंश है ऐसा
भी लोग सोचे। तो सब में ईश्वर है। रहस्य में ईश्वर भी
मानकर हमें आत्मा का स्वच्छ शुद्ध रूप मिला नहीं।
~~शिक्षा एवं व्यवस्था में कोई~~ यदि किसी व्यक्ति ने समझा
भी हो तो उसे व्यवस्था बनी नहीं। धर्म से व्यवस्था
अनुरूप लाद ली। उससे आत्मिक ज्ञान हो गया ऐसा
तो कहीं प्रमाणित नहीं। ईश्वर का ज्ञान हो गया ऐसा भी
प्रमाणित नहीं। हम धर्म के नाम से बहुत दिन राज्य की
बात इस धरती में किया है। दूसरे पक्ष में तो मिलने का
आधार ही नहीं है उसे तो हम झेल ही रहे हैं यहाँ तो
व्यवस्था की कोई गन्ध ही नहीं। मनुष्य दिन प्रतिदिन अव्यवस्था
की ओर ही जा रहा है। ये बीती हुई कर्म कथा हुई।

हमें चाहिए वाला बात है अखण्ड समाज और
सार्वभौम व्यवस्था। इसी को लेकर जीवन विद्या की
बात प्रारम्भ किये हैं।

जीवन प्रत्येक व्यक्ति में समान है। इसको प्रमाणित करने की वस्तु मनुष्य है, प्रमाणित करने वाला भी मनुष्य ही है। जीवन को प्रमाणित किसी यन्त्र, मशीन, चार्टप या अन्य कोई चीज होती नहीं। जो मनुष्य से बनाये चीज जो यन्त्र इत्यादि है वो मनुष्य के लिए छोटा पड़ गया। ये एक सिद्धान्त है जिससे जो कुछ भी पैदा होता है वो पैदा करने वाला वस्तु उससे बड़ा होता ही है (यन्त्रों के रूप में)। इन सब यन्त्र दृष्टि का दृश्य मनुष्य ही है। उसी यन्त्र के दृश्य में मनुष्य समा नहीं पाता। दृश्य छोटा होता है, दृष्टि बड़ा होता है। तभी दृष्टि में दृश्य समाया करता है। छोटी से छोटी व्यवस्था में भी हम देख सकते है। जैसे एक वस्तु है वो हमारी दृष्टिपात में नहीं आ पाती है तो हमारी दृष्टि में उसका प्रति बिम्ब नहीं हो पाता। अस्तित्व में एक दूसरे के ऊपर प्रति बिम्ब रहते ही है। एक दूसरे को पहचानने की बात है। जो देखने का मतलब समझने में सार्थक होता है, समझ वस्तु को, स्थिति को वर्तमान कोई समझने में बात आती है। वस्तुओं के धर्मों में हम समझते है, स्थिति के रूप में भी हम देख पाते है, गति के रूप में भी हम देख पाते है। परिणाम परिणाम स्थिति में

वस्तु का समझना

वस्तु ओं को हम बहुत विधाओं से हम समझते है। जो है स्थिति के रूप में भी हम देख पाते है, गति के रूप में भी हम देख पाते है, परिणाम के रूप में भी, परिवर्तन के रूप में भी, प्रयोजन के रूप में भी देख पाते है, इसी तरह मनुष्य के साथ भी। मनुष्य भी इन तमाम आयामों में अपने को व्यक्त करता ही है। हर वस्तु भी व्यक्त करता है। परन्तु मनुष्य और वस्तु में यही अन्तर है कि मनुष्य दृष्टा पद में है। वस्तु दृश्य पद में स्थापित होती है। ~~मनुष्य में दृष्टा~~ पद दृश्य और दृष्टा पद में जो अन्तर है मनुष्य में वो कौन सा अवयव है जो दृष्टा पद की क्रिया सम्पन्न करता है उसे जब सोचने जायेंगे, देखने जायेंगे तो पता लगता है कि जीवन दृष्टा पद में अपनी क्रियाओं को सार्थक बनाता है।

जीवन को यन्त्र से प्रमाणित नहीं कर सकते

दृश्य दृष्टि से छोटा

शरीर व जीवन का सम्बन्ध

शरीर के साथ जीवन का क्या सम्बन्ध है तो सह अस्तित्व का सम्बन्ध है। सह अस्तित्व सम्बन्ध के आधार पर इसी जीवन शरीर के माध्यम से अपने को प्रमाणित करता है

जागृति

व पाप्रमाणित करता है। जीवन जागृति को प्रमाणित करता है। जीवन जागृति को जब तक जीवन प्रमाणित नहीं करता है तब तक शरीर की आवश्यकता बना ही रहता है। सर्वाधिक जो जीवन जागृति के अनन्तर अनन्त शरीर की आवश्यकता बहुत कम पड़ता है। शरीर के बिना भी जीवन तृप्ति हो पाता है। कुल मिलाकर। अतृप्ति जागृति के अर्थ में और जागृति न होना अतृप्ति के रूप में स्पष्ट भासित है। ये जीवन सहज, विकास सहज रूप में ही दर्शित है। परमाणु ही विकसित होकर जीवन पद में होता है। जीवन पद जीवन परमाणु की विशेषता ये होता है कि अक्षय शक्ति अक्षय बल। कोशिश

मनुष्य अपनी उपयोगिता नहीं समझ पाया

हम सम्पूर्णता को अध्ययन नहीं कर पाये। इससे मनुष्य का उपयोग घट गया। हम वर्तमान में यथा प्रमाण से वस्तु का अध्ययन पूर्ण नहीं कर पाये। एक आदमी १०० वर्ष पूर्व कितने कार्य में अपनी उपयोगिता को व्यक्त कर सकता था और आज कितना कम कार्य करता है, रोने के अलावा और दूसरा कुछ नहीं मिलेगा नहीं (थोड़े अंक में सर्वाधिक अध्ययन की)

तो अक्षय शक्ति अक्षय बल सन्तुष्टि के लिए जो कार्यरत होते हैं, धीरे-२ जागृति की बात आती है। मनुष्य में वो जागृति की सम्भावना हो जाती है। जागृति के बिना मनुष्य सन्तुष्ट होना सम्भव नहीं है। जैसा किसी वस्तु का अध्ययन करते जाते हैं तो किसी भी वस्तु का सम्पूर्ण अध्ययन नहीं कर पाते हैं। इससे वस्तु से भी सन्तुष्ट नहीं हो पाते हैं, पहचानने की क्रिया से भी सन्तुष्ट नहीं हो पाते हैं तो अधूरा पहचान करके पाते हम

यथार्थता समझ आ जाती है।

जो भ्रमित करते हैं तो कुछ दिनों के पश्चात जो मानव सहज जो विवेक है, कल्पनाशीलता विश्लेषण करना शुरू करती है। फलस्वरूप इसी क्रम में मनुष्य पता करता हमारा अधूरा ज्ञान स्पष्ट होने लगता है। उसका अधूरापन हुई ईश्वर को या आत्मा को जीवन मानकर काम किया शरीर को जीवन माना तो ये अधूरापन भी विकसित हुआ। इसके बाद इस ढंग से मनुष्य के सामने स्पष्ट होने की आवश्यकता है ही। यथार्थ के सामने जाना पड़ता है। एक स्थिति ऐसी आती है कि यथार्थ का स्रोत, स्थिति सब अस्तित्व में ही दिखाई पड़ती है, इसको तो आप हम देख सकते, सोच सकते, पा सकते हैं लिखकर बता सकते हैं। दृष्टा पद अकनिश्चित होता है, ये मनुष्य

में ही है इस बात को जब हम देखते जाते हैं तो ७ हकै होता

शिक्षा में सम्मिलित कर लिया। अभी शिक्षा में जो सर्वाधिक सम्मिलित है (समाविष्ट है) वह वस्तु केन्द्रित ज्ञान है।
~~ईश्वर केन्द्रित ज्ञान बहुत न्यूनतम हो गया है।~~ इन अवस्थाओं का मनुष्य जैसा दिग्भ्रमित, दिशाहीन, होकर पीड़ित-पतित अपनी इस अनिश्चयता से कुण्ठित होने के बाद ही होता देखा गया।

अब इसको देखने के पश्चात जो मैं ले आया जो अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान - इसके अनुसार जीवन अपने आप में स्पष्ट होने वाली बात आयी। ~~जीवन~~ जब स्पष्ट हो सकता है तो मनुष्य, जीवों, वनस्पतियों, खनिजों को भी देखा है। खनिज संसार भी अपनी ~~है~~ ही प्रतिष्ठा है। खनिज और वनस्पति संसार एक आवर्तनशील पद्धति से अपने को वैभवित किये हुए है। उसी भांति मनुष्य अन्य प्रकृति के साथ एक आवर्तनशील पद्धति वैभवित होना एक सहज प्रक्रिया है।

इस ढंग से मनुष्य - जीवन और शरीर का साकार संयुक्त साकार रूप में इस धरती पर वैभवित होने को मिला।

वर्तमान समय शिक्षा में शरीर को अध्ययन करने का प्रयास किया है। फल स्वरूप, मनुष्य शरीर को जीवन समझ लेता है। शरीर को जीवन समझने से पराभव हाथ आया है। इस विधि से जीवन को स्पष्ट करने से जीवन विद्या नाम रखा।)

1. ~~रहस्य मूलक ईश्वर केन्द्रित चिन्तन ज्ञान~~
2. अनिश्चयता, अस्थिरता मूलक वस्तु केन्द्रित चिन्तन ज्ञान
3. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान
   मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद। इसमें से निश्चित जीवन ज्ञान सहज रूप से मिलता है।

o ~~रहस्य मूलक~~ ईश्वर केन्द्रित ज्ञान और अनिश्चयता अस्थिरता मूलक वस्तु केन्द्रित चिन्तन ज्ञान कभी शिक्षा और व्यवस्था का आधार नहीं हो सकता।
~~साररूप में~~ - चाहे दोनों को मिलाकर, घटाकर, काटकर जोड़ कर शिक्षा और व्यवस्था का आधार नहीं बनाया जा सकता। धर्म और राज्य का आधार।

जीवन शक्तियों का रूप

जो शरीर के माध्यम से भी पहचाना जा सकता है जैसा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्द्रियों द्वारा पहचाना जाता है उसमें भी ~~इसमें~~ जीवन्त इन इन्द्रियों में होना एक अनिवार्यता है। इन आधार पर जब ज्ञानेन्द्रिया काम करती है तो जीवन्त की रोशनी में ही काम करती है। साथ-२ ही हम इन्द्रियों द्वारा शरीर के देखने सुनने के कार्यों को कर पाते हैं। इन तमाम कार्यों को सम्पादित करते समय में हर जगह में पहचानने और निर्वाह करने की जानने मानने की प्रक्रिया को सदा बनाये ही रखते हैं। प्राथमिक रूप में कल्पनाशीलता की एक रूप रहती ही है। जैसा-जैसा तथ्यों को दृष्टि की रोशनी में समझते जाता है वैसे-२ तब वही चीज विश्लेषण और विवेचना कहलाती है। तो विश्लेषण और विवेचना पूर्वक, विश्ले. और विवे. सम्मत, विश्ले. और विवे. सहित जो चीज हम देख पाते हैं यथार्थता पूर्वक ही हमारे जीवन की रोशनी में हम रखते हैं जो विश्लेषण है, विश्लेषण को यदि देखें, जैसे एक वस्तु है उसे देखें तो उसके आकार

वस्तु का पूर्ण अध्ययन नहीं हुआ

आयतन का रूप ही आँखों में प्रतिबिम्बित होता है, तो जबकि समझ में आता है उसका रूप, गुण, स्वभाव और धर्म हमको समझ में आता है। जबकि गुण, स्वभाव और धर्म किसी भी नापदण्ड से किसी भी वस्तु का नहीं आ पाती। कोई किसी पदार्थ का हम नाप दण्ड करते हैं ऐसा हम मान लेते हैं। किन्तु वो किया नहीं रहता। इस ढंग से किया नहीं रहता है कि हम किसी वस्तु के आकार आयतन की सीमा में ही किसी वस्तु के नापदण्डों को किया रहता है। इसके साथ गति की नापदण्ड का प्रयत्न किये हैं। गति को समझ लिया। अतएव जो समझा वो आवेशों को गति इन दोनों ध्रुव रूप के सम्बन्ध में आकार आयतन को नाप लिया ऐसा हम मानते हैं।

आवेश को गति

समझकर सम्पूर्ण वस्तु कितना आवेशित है इसको नापने के लिए कोई मनोवेग के वैभव चलते कुछ नाप करने की कोशिश किये। तो कोई भी आवेश अपने आवेश के रूप में सदा रह नहीं पाता, इसलिये आवेशात्मक गति की स्थायीता के मामले में सदा ही शंका बनी रही। इसलिये हम नापदण्ड

वस्तु को नाप नहीं पाये

में हम जो बहुत बड़ी चीज मानकर नापे हैं। ससम्मान ये बात को कहना चाहूँगा कि वस्तु को ये पूरा का पूरा नाप नहीं सका। तो इसके अलावा स्वभाव और धर्म को नापने की बात हो ही नहीं पाती। किसी भी यन्त्र से स्वभाव व धर्म नापा नहीं जा सकता। जो नापे हैं वो भी अधूरा है जिसको हम नाप लिये हैं ये कहते हैं उसकी सम्पूर्णता को तो हम नापे ही नहीं हैं। यदि वस्तु को ही नहीं नाप पाये तो मनुष्य को क्या नापेंगे। वस्तु का जो रूप भी समझ में आता है। रूप भी जब हम देखते जाते हैं जैसा कि आकार आयतन और घन। किसी भी वस्तु को जब हम देखने जाते

आवेश को गति मानना भ्रम रहा

हैं तो किसी वस्तु का आकार आयतन ही ~~नाप पाते हैं~~। आँखों में आंशिक रूप में आता है, घन आता ही नहीं। ~~आवेशित भी~~ घन समझ में आता है। घन समझ में आता ही नहीं। इसके पश्चात आता है आंशिक रूप में आवेशित मनुष्य को गणित की भाषा में गतिया समझ में आता है। गति आती है, आवेश ही आता है। आवेशों को यदि हम विकास का आधार मानें तो इससे बढ़कर वंचना क्या होगी। मेधावियों को सोचने के लिए ये मुद्दा है। जब हम गति को, आवेश स्वयं में उसका स्वभाव तो है नहीं, स्वभाव से वंचित रहने को ही हम गति कह रहे हैं। और स्वभाव से वंचित रहना कोई भी वस्तु चाहता नहीं। हर आवेश सामान्य होना ही है। इस ढंग से आवेश निरन्तरता के अर्थ में प्रयोजित होना सम्भव ही नहीं। तो जैसे हमको समझ में आता है तो आवेश अस्तित्व में व्यवस्था का भी आधार बन नहीं पाता ये भी हम अनुभव करके देखा। इस अनुभव से यदि

आवेशित मनुष्य

मनुष्य को सम्मुख लायें तो, आवेशित मनुष्य तमाम प्रकार के ~~उपद्रव~~ उपद्रव करता ही है। अपने ही हाथ पैर पटक कर स्वयं तोड़ लेता है। इस विधि से आवेशों को गति के रूप में पहचाना। यदि ढंग से अध्ययन करना है तो वस्तु को फाड़ पीटकर वस्तु को हम अध्ययन करने योग्य बनाते हैं। तो स्वयं का अध्ययन करना, कोई वस्तु का अध्ययन हुआ नहीं।

अध्ययन विधि व यन्त्र प्रमाण के मूल में मानव को गति मार्ग में भ्रम

टुकड़े का अध्ययन करना, सम्पूर्णता का अध्ययन करना हम मान लेते हैं। यह ही हमारी दुर्दशा का कारण है। इससे बचने के लिए हम, सद्बुद्धि का उपयोग करें। पहले हम विकास विधि को पहचानें और व्यवहार प्रमाण को पहचानना होगा। इससे मानव का विकास की गति की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त होगा। आज विधि और यन्त्र प्रमाण में मनुष्य का विकास की गति ~~प्रमाण में होता नहीं~~ प्रशस्त होगा नहीं। मेरी आँखों में ये साफ - साफ दिख रहा है। विश्वास के लिए बहुत सारी जगहों में, बहुत सारे दृष्टांत दिए जा सकता है, जैसे बच्चे को आवेशित कराइये, आप उन्हें कुछ भी नहीं सिखा पायेंगे। कोई जानवर को आप आवेशित करें तो उसे कुछ भी नहीं सिखा पायेंगे। और किसी वनस्पति को आवेशित कर दीजिए उसे कोई उन्नति दे नहीं पायेंगे। आप किसी पत्थर को आवेशित करें तो आप उसे गुणात्मक या मात्रात्मक रूप दे नहीं पायेंगे। ये सब चीजें आपके सम्मुख हैं। उसी आवेश को यदि गति और विकास का एकमात्र स्रोत मान लें मनुष्य कैसे चलित नहीं हुआ? कैसे कहा जाये?

यन्त्रों का लाभ

मनुष्य को यन्त्र प्रमाण से जो लाभ हुआ वो पहले ही कहा। ये दूरी घटाने के लिए (आँख, कान, पैर) ये अवश्यमेव काम किया। इसके अलावा संचार व्यवस्था में जो कुछ भी किया, इन्हीं आधारों के आधार पर बनी है। ए हमारा पैर दो कि.मी. की रफ्तार से चलता है, और उसको दो हजार कि.मी. की रफ्तार से दौड़ने के लिए यन्त्र बना दिया।

यन्त्रों से मानव में विकास नहीं हुआ

इससे मनुष्य विकसित हुआ ये सिद्ध नहीं हुआ। मनुष्य तो उतना ही है जितना अपने विवेक के साथ जीता है। मनुष्य के साथ जीता है, उससे अधिक पाषाण के साथ, धातु के साथ, वनस्पति के साथ और जीवों के साथ जीना मनुष्य के आकार का स्वरूप नहीं है। हां मनुष्य के आकार का स्वरूप नहीं मिलता है कि मनुष्य मनुष्य के साथ कैसा जिये। मुद्दे की बात ये ही है। हम कितना मनुष्य [illegible] के साथ जी पा रहे हैं स्वयं ही जांच कर लीजिए।

गणित साक्षात्कार द्वारा

आप जिसको गणित समझाते हैं तो गणित स्वयं आपको समझाने लग जाती है। मनुष्य स्वयं गणित को, गणित का निर्माता है, द्रष्टा है अब गणित से गणितज्ञ स्वयं को समझने योग्य

③ A 28-2-92

जीवन की दो प्रमुख शक्तियों आशा और विचार पर चर्चा की। बच्चा जन्म से ही चयन और आस्वादन करता है। प्राणावस्था में भी चयन पाया जाता है। पदार्थावस्था में भी पहचानना और निर्वाह करता रहता ही है। जीवन जीवावस्था में चयन और आस्वादन दोनों है। चयन और आस्वादन ही जीवमात्र लेता है, इसलिए ही जीव है।

जन्म से चयन आस्वादन

बच्चा सैकड़ों खिलौनों में चयन करता है और आस्वादन करता है। अनेक किशोर अनेक व्यंजनों में चयन करते हैं और आस्वादन करता है। अनेक प्रकार के कपड़े, अनेक रंग के कपड़ों को रखा जाए तो चयन अनेक होती है। ये तो शरीर और जीव्हा से सम्बन्धित हो गयी। इसके बाद कान से सम्बन्धित बात आती है। किस संगीत से ध्वनि से बच्चा चयन करता है। यदि हम किसी बात को हम समझाते

समझाना और समझना

हैं तो कितने बच्चे उसके अर्थ को समझ पाते हैं। जैसे करुणा अब कितने बच्चे करुणा का सार्थक अर्थ समझा, कितने नहीं समझे तो हम यदि इसको परीक्षण करें तो मूल्यों के सम्बन्ध में अवयवों के सम्बन्ध में (अवयव आँख, कान, नाक वगैरह) इस प्रकार मूल्यों के सन्दर्भ में जैसा कृतज्ञता, गौरव विश्वास, वात्सल्य आदि जब हम बतायेंगे तो उसके अर्थ को जो किस प्रकार समझा और अभिव्यक्त कर पाया इन प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित कर सकते हैं। इसी भांति हम पढ़ने में आते हैं जैसे भौतिक शास्त्र को पढ़ाया। भौतिक शास्त्र को पढ़ा गए तो कितने बच्चे भौतिक शास्त्र के अर्थ को समझे, कितने नहीं समझे। इस प्रकार हर के भूमि पर इसको समझा जा सकता है।

भाषा/शब्द की सीमा

भाषा के शब्द की ध्वनि की सीमा में ही सीमित हो जाती है। इस प्रकार के शिक्षा के अर्थ में वह आयामी सार्थकता के अर्थ में ही समझा जा सकता है। भाषा के अर्थ को रूप में ही समझा जा सकता है। भाषा के रूप में नहीं समझा जा सकता। भाषा एक ध्वनि की परिसीमा में ही सीमित हो जाती है। उससे अधिक उसका मूल्यांकन नहीं हो पाता है।

शब्द से भाषा अर्थ

शब्द से अर्थ का इंगित होना बहुत जरूरी है। अर्थ अस्तित्व में होने वाली क्रियाकलापों के और स्थिति के सम्बन्ध में ही सहज तथ्य है तो इन आधारों पर यदि हम परीक्षण करें तो जो चयन की पहचान करें, किसमें कैसा है इसको करते हैं तो ... तो तब अर्थ को समझने के क्रम अपने आप ही तरह समझ सकते हैं।

क्रम में अर्थ को समझने का जो प्रवाह रही है ~~[illegible]~~ मानसिक प्रवाह रही है, स्थिति या रही है वो बदलकर अर्थ को समझने के क्रम में जो मानसिकता उस अर्थ के गौरव को स्वीकार कर रोक कर देता है। ये मूल मुद्दे की बात है, जहाँ तक शिक्षा जगत अभी पहुँचा नहीं है या पहुँच कर (विफलता) को प्राप्त हुआ हो ये स्वयं आप ही समझें।

शिक्षा शब्द के अर्थ तक नहीं गयी

इसे समझ कर बच्चों को इस प्रकार शब्द के अर्थ में उनकी मानसिकता पहुँच रहा है या नहीं इसे देखें व पहचानें। यदि अर्थ नहीं पहुँच रहा हो तो उसके उपाय किये जाये।

आस्वादन को स्वीकारना या अस्वीकारना / न्याय के सम्बन्धों को स्वीकारना या अस्वीकारना

आस्वादन करने में स्वीकारने और अस्वीकारने के बारे में बात आती है। जैसा सम्बन्ध है, सम्बन्ध को स्वीकारने या न स्वीकारने के अर्थ में प्रमाणित होता है। मूल्यों को स्वीकारना या न स्वीकारना, अभिव्यक्त करना, अभिव्यक्त न करना प्रमाणित हो पाता है। प्रयोजनों को स्वीकारना या न स्वीकारना; सार्थकता को स्वीकारना या न स्वीकारना, न्याय को स्वीकारना या न स्वीकारना, इस प्रकार का परीक्षण करने की आवश्यकता है।

न्याय आस्वादन मूल्यों के मूल्यांकन में आस्वादन प्रमाणित (न्याय)

न्याय और आस्वादन के पक्ष में मूल्यों का जो मूल्यांकन के रूप में आस्वादन प्रमाणित हो पाता है। जैसा किसी ने किसी के साथ विश्वास किया तो सामने वाला व्यक्ति उसका मूल्यांकन करता है। उस स्थिति में विश्वास का मूल्यांकन जीकर सहज रूप में प्रमाणित हो जाता है। इस प्रकार हरेक मूल्य का मूल्यांकन हो जाता है। मानव मूल्य, स्थापित मूल्य एवं शिष्ट मूल्यों का जो अध्ययन किया उसका प्रमाण मूल्यांकन के रूप में ही मिलता है मानव परम्परा में। हमारा न्याय ~~और आस्वादन~~ कितना न्यायपूर्ण एवं अन्याय पूर्ण है। तौलने की विधि से न्याय के आधार पर पूर्ण आयाम में हम न्यायिक होने में सुनिश्चित हो पाते हैं। हर न्याय में हमें न्याय पूर्ण होने की जरूरत है ही। तो जैसा मनुष्येत्तर प्रकृति के लिए भी न्याय पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। और मनुष्य के साथ भी। मनुष्य के साथ न्यायपूर्ण कार्य का जो आकार प्रकार बनता है ~~उनको~~ सम्बन्धों को पहचानने के उपरान्त ही जीना सहज रूप में ही विनियोजन शुरू हो जाता है। जैसे माँ जब अपने पेट में तो बच्चे के रूप में स्वीकारती है उसी वक्त ममता उमड़ पड़ती है। जिसके लिए किसी शिक्षण प्रशिक्षण की जरूरत नहीं पड़ती है। तो सभी मूल्य जीकर सहज अभिव्यक्त हैं तो बाकि शिष्टता और मांगमय(?) से प्राप्त तथ्य ये सब अध्ययनपूर्वक होने वाली सहज गोष्ठी(?) है। अध्ययन से अस्तित्व में जो कुछ है वह सब प्राप्त होता है लेकिन प्रमाणित जीकर ही करेगा। दूसरा कोई होगा नहीं तो जब जीना ही प्रमाणित होना है तो सीधे-सीधे जीकर ही प्रमाणिकता करने के लिए शिक्षा विधाओं को क्यों नहीं विकसित किया जाये। व्यवहार विधाओं को क्यों न विकसित किया जाये। और मूल्यांकन विधाओं को क्यों न विकसित किया जाये।

जीकर ही प्रमाणित करना है तो शिक्षा व्यवहार विधाओं को विकसित और आचरण करें(?)।

न्याय — व्यवहारिक, व्यवसायिक, सभा में

तो सब बातें जीवन सहज रूप में, कार्यक्रम के रूप में जाने जाते हैं, सुदृढ़ होते जाते हैं। लगती है। जब हम व्यवहार के हों में सुदृढ़ होते जाते हैं तमाम संबंध भी। तब हम सभी आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में हम न्यायपूर्ण व्यवहार करने योग्य हुआ, व्यवहार करने योग्य हुए। इसी से अखण्ड समाज का सूत्र सूत्रित हो जाता है। तो इसके बाद जैसे जो

धर्म — धर्माधर्म की बात है, सर्वतोमुखी समाधान की बात आती है। जो हम न्याय समझा। तो वो समाधान सम्पन्न है या नहीं यह तौलना की स्थितियों में हम सार्वभौम व्यवस्था को पा लेते हैं। तीसरा भाग आता है सत्य। सत्य को पाते हैं हम हर प्रयोजन

सत्य — में सार्वभौम व्यवस्था में भी अखण्ड समाज में भी पाते हैं। सत्य को कैसे समझेंगे। सत्य तो सत्य को समझ पाते हैं, सत्य को कैसे समझेंगे। मानव परम्परा चीज है जिसकी निरन्तरता होती है। मानव परम्परा यदि अखण्ड समाज की निरन्तरता होती है। मानव परम्परा समाज होता है तो समुदाय को समाज के रूप में होती है तो तभी समाज होता है तो अन्तर्विरोध पनपा ही रहता है नहीं हो पाता। उसमें कोई आवश्यकता नहीं बनती अन्यथा समुदाय होने की कोई। स्वाभाविक रूप में तो अन्तर्विरोध रहेगा तो द्रोह, विद्रोह, स्वाभाविक रूप में परम्परा जन्मती है। मानव जाति के लिए जो उपयोगी नहीं है। परम्परा के लिए गौरव नहीं है। ये बातें अभी तक अनुभव हो चुकी हैं। विश्लेषणात्मक

वृत्ति — इसके बाद तुलनात्मक दृष्टि को हम अच्छी तरह समझ गये।

परिभाषा — वृत्ति को भी समझ गये। दो काम प्रत्येक में जो जीवन शक्ति है वो है चित्त। और तीसरी जो जीवन शक्ति है वो है चित्रण और चिन्तन।

चित्त — व्यक्ति में देखने को मिलेगी — तो हमारी करनी का जो कुछ भी जो कुछ भी में करने जाऊँगा, तो हमारी करनी का जो कुछ भी विचार में आता है है उन आकारों आकार है, हमारी इच्छा में, विचार में आता है वो चित्त में ही होता है। वो

चित्रण — को चित्रित करने वाला जो स्थली है वो चित्रण। कोई घर बनाना हो, पुल बनाना, मन्दिर बनाना हो मठ बनाना हो कुछ भी बनाना हो। किसी भी काम करने समय में पहले उसका चित्र हमारी इच्छा क्षेत्र में आता है, चित्त में आता ही है। तो चित्रित करने के पश्चात हम उसको शब्द देते हैं, आकार देते हैं इसके बाद कार्य रूप देते ही हैं। इसके चित्त इन्द्रिय कलापों को करने वाली वस्तु का नाम है चित्त। चित्रण मूलतः जीवन गत ऐश्वर्य है। चित्रण न्याय, धर्म, सत्य, नाक नाना का कोई नहीं। ये अवश्य है न्याय, धर्म, सत्य, नाक उसके अनुरूप ये सब चलें।

चिन्तन — जो वस्तु जीवन में चित्रित हुई है इसके बाद चित्त की छठवीं क्रिया आती है वो है चिन्तन। चिन्तन एक ऐसा सामर्थ्यवान बात है। चिन्तन में प्रयोजनों को देखने की क्रिया है। चिन्तन पूर्वक ही प्रयोजनों को पहचानता है।

तो कुछ भी चित्रण हुआ, जो कुछ भी तुलन हुआ, जो कुछ भी

चिन्तन में प्रयोजन की पहचान

बिश्लेषण हुई, चयन हुई और आस्वादन हुई उसके प्रयोजन को अनुसन्धान करने वाला जीवन शक्ति है उसका नाम है चिन्तन। जब मनुष्य चिन्तन क्षेत्र में अपने को पहचान पाता है स्वयं को तो उसके पास प्रयोजन स्वाभाविक रूप में ही आती है। वो है (i) जीवन का अमरत्व (ii) शरीर का नश्वरत्व और (iii) व्यवहार का नियम। जीवन का अमरत्व और शरीर का नश्वरत्व को ध्यान में रखकर हो ~~व्यवहार को देख~~ व्यवहार के नियमों को अच्छी तरह से देख पाते हैं और व्यवहार के नियमों का जब दृष्टा हो पाते हैं। तो हम बहुत आयामों में सन्तुलित हो पाते हैं। सन्तुलित की जब बात करी तो उसके तात्पर्य में मनुष्य और मनुष्येत्तर प्रकृति के बीच में सन्तुलन होने की बात आती है। तो भी मनुष्य को व्यवहार के नियम में इंगित हो पाता है। सन्तुलन का दृष्टा स्वयं मनुष्य हो पाता है। दूसरा मनुष्य-मनुष्य के साथ सन्तुलित होने की बात आता है उसका सूत्र निकल आती है। फलस्वरूप मनुष्य के साथ सन्तुलित होने के सूत्र और प्रमाणित होने की स्थिति में आता है।

शरीर का नश्वरत्व

तीसरा भाग शरीर का नश्वरत्व जब समझ में आता है तब शरीर को जीवन मानकर पागल होने की बात अपने आप समाप्त हो जाती है। ये तीनों बात बहुत ही महत्वपूर्ण है जीने गया तो बहुत साथ है मन को दे डाला। प्रत्येक मनुष्य चिन्तनशील होता हुआ बहुत अनिवार्य स्थिति है। ये स्वाभाविक रूप में होता ही है। यदि उसकी अड़चनों को निकाल दें।

शरीर को जीवन मानकर अपराध

अड़चन क्या है? शरीर को जीवन समझ लिया और जीवन को समझा ही नहीं उस स्थिति में मनुष्य भ्रमित होने के अलावा और क्या करेगा। शरीर को जब जीवन समझेगा। उस आधार पर व्यवहार करेगा। राज्य का ताना बाना शिक्षा और व्यवस्था की बात सोचेगा, सभी बात सोचेगा। शिक्षा फल मिलने वाला है, व्यवस्था फल होने वाला है और शरीर जीवन हो नहीं सकता तो इस इस प्रकार से जो आवेशपातित, जनापातित गौणापातित दोषों से त्रस्त होकर के कुछ कुछ पाप अपराध का आरोप करता है मनुष्य शरीर यात्रा को अन्त करने में गाफिल हो जाता है। इससे परम्परा को तो कुछ मिलने वाला नहीं है, स्वयं को कुछ मिला नहीं है इस ढंग की रिक्तता के साथ और परम्परा के साथ जो मजबूरियाँ तैयार हुई शरीर को जीवन समझने से निर्मित की गयी थी। मानव कुल के साथ अपराध से सम्पन्न हो गया।

बुद्धि बोध और संकल्प

चौथा क्रिया कलाप, चौथा जो शक्ति है वो है बुद्धि। उसका दो कार्य होता है बोध और संकल्प। संकल्प मनुष्य में उस स्थिति में देखा जाता है प्रत्येक मनुष्य में जिसके लिए वो दृढ़ पूर्वक कर पाता है। जिससे प्रयोजन सिद्ध होता है और नियमों का पालन होता है। इतना ही नहीं शरीर यात्रा की सार्थकता उसके सामने

संकल्प की सफलता वस्तु में ही जीवन जागृति में है।

बिलकुल स्पष्ट योजना के रूप में ~~साफ~~ रहता है। शरीर सफलता का ~~संकल्प~~ जो योजना के ~~रूप में ही~~ रहो (?) हो योजना उसी ही संकल्प सार्थक हो पाता है अन्यथा वस्तु के साथ कोई भी संकल्प सार्थक नहीं होगा। तो जीवन सफलता का एक ही वस्तु है जीवन जागृति। जागृति के लिए यदि संकल्प होता है तो मनुष्य स्वाभाविक रूप से जागृत होता ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं। जब-२ मनुष्य इसके लिए दौड़ा है ~~जो~~ संकल्प किया है तो उसे मिला ही है। जिन-२ के लिए दौड़ा नहीं है तो वो बाकि ही है। जो बाकि रहा वो है जीवन। जीवन को पहचानने में या तो हम भ्रमित रहे या मौन रहे। भ्रमित अवस्था में भी ~~कोई~~ समझ में आया नहीं और मौन रहने में ~~न~~ समझ में आने का कोई प्रश्न ही नहीं। इस प्रकार बिना जीवन समझे जीवन सफलता का लक्ष्य कैसे बन सकता है। तो जीवन सफलता के अर्थ में ही मनुष्य का संकल्प सार्थक हो पाता है। वो पूर्णतया सफल नहीं हो पाता है।

जीवन को समझे बिना लक्ष्य की सफलता सम्भव नहीं

उसके बाद जीवन का दूसरा काम है वो है जो कुछ भी हमने समझा उसका बोध निरन्तर जीता जागता हमारे

बोध

सत्य ही सम्मुख है। बोध जो है, सत्य ही बोध हो पाता है। दूसरा कोई चीज़ बोध नहीं होता है। सत्य बोध यदि होती है तो वह अस्तित्व सहज होगी। जीवन सहज होगी, जीवन जागृति सहज होगी, तो शरीर और भौतिक रचना विरचना सहज ही होगी। मनुष्य को ~~शरीर~~ इन ~~रूप~~ भौतिक रचना विरचना सहज ही बोध होगा। यदि हम जीवन जागृति का बोध के ~~रूप~~ स्वरूप का बोध सहज रूप में ही ~~हमको~~ समझ में आ जाते हैं या जाते हैं तो जीवन का अमरत्व सहज रूप में आ जाती है तो नैसर्गिक नियम या विकास यदि समझ में आ जाती है तो नैसर्गिक नियम यानि विकास यदि समझ में आ जाती है तो ये सारे नियम अपने को समझ में आते लगते हैं। प्राकृतिक नियम, बौद्धिक नियम, सामाजिक नियम समझ में आ जाता है। इस प्रकार सभी तथ्यों का बोध होता है। सभी नियमों का बोध होता है, सभी वास्तविकताओं का बोध होने लगता है। यथार्थ का बोध होता है। सभी वास्तविकताओं को हम समझ सकते हैं, सार्थक हो सकते हैं। इसी को सत्य बोध के नाम से हम समझ सकते हैं। पाँचवा शक्ति आत्मा। इसके बाद पाँचवा क्रियाकलाप, पाँचवा शक्ति आत्मा।

सत्य ही बोध हो पाता है

आत्मा की महिमा इसका महिमा अनुभव के रूप में। अनुभव का मतलब होता है ~~यह~~ वो ही वस्तु रह जाती है जैसा देखना अर्थात् समझना। देखने के रूप में जब आत्मा के प्रभाव क्षेत्र में अस्तित्व ही जब देखने के रूप में चीज़ें रह जाता होगा जिसका साक्षात्कार आता है तो इसके बाद कोई चीज़ नित्य साक्षात्कार है। उसका साक्षात्कार नहीं हो। अर्थात अस्तित्व नित्य साक्षात्कार है। उसका साक्षात्कार आत्मा। आत्मा ही जो करने वाला है जीवन में मुख्य भाग रूपी आत्मा। आत्मा ही जो अस्तित्व स्वरूप साक्षात् है सम्पूर्ण साक्षात् को साक्षात्कार करता है। अस्तित्व स्वरूप साक्षात् है जिस क्रिया का नामकरण है आत्मा उसको साक्षात्कार करता है। जिस क्रिया का नामकरण है 'आत्मा' उसको साक्षात्कार करता है तो जो अनुक्रम से साक्षात्कार हो अनुभव का जो अर्थ योजना तो जो अनुक्रम से साक्षात्कार होगा अनुभव के अनुभव मान में होगा। अनुभव का जो अर्थ होगा अनुभव ही साक्षात्कार होगा। अनुभव के

आत्मा की महिमा अनुभव में

अस्तित्व को साक्षात्कार करने की आत्मा में निरन्तर तड़पन है

लिए नित्य, निरन्तर है प्रस्तुत है। और साक्षात्कार करने के लिए आत्मा अपने में निरन्तर तड़पता है। इसका योग हो जाता ही जीवन की परिपूर्णता है। इस परिपूर्णता को पाने के लिए इच्छा न होना, विश्वास न होना, ऐसा आप किसको विभाजित करोगे।

प्रमाणिकता

साक्षात्कार की वस्तु को प्रमाणित कर सकते हैं

आँखों की सीमा

आत्मा का दूसरा भाग/काम है प्रमाणिकता और वो जो साक्षात्कार देखा है उसे प्रमाणित करने में किसको क्या तकलीफ होगा। आप हम भी आज तक जो प्रमाणित करते आ रहे है जो देखा उसको प्रमाणित किया। बाधा ये हुई कि हम आँखों से देखना, देखना मान लिया। आँखों से बहुत छोटी से भाग को देखा जा सकता है। बहुत छोटी से भाग आँखों में प्रतिबिम्बित हो पाता है। और जीवन में जो प्रतिबिम्बित होता है साथ विश्व ही, व्यापक ही प्रतिबिम्बित होता है। जीवन को भुला देकर हम आँखों को पकड़ लेते हैं। आँख तभी सभी वस्तुओं को देख पाता है जब आँख जीवन्त रहता है। और आँख को जीवन्त रहने के लिए जीवन का होना अनिवार्य है।

इस प्रकार जीवन का दस क्रिया मनुष्य में अभिव्यक्त वर्तमान होना आप हम देख पाते हैं। आप हम देखने का मतलब है यदि इस बात को हम समझ सकते हैं और यदि समझते का तात्पर्य भी हम उसका भी उत्तर यही है जानना और मानना। ये दोनों जब अपने तृप्ति बिन्दु में आते है तब समझना की उपाधि बनती है। जब इस समझदारी की उपाधि में हम आगे बढ़ते हैं तो समझदारी, ईमानदारी दोनों एक साथ वर्तमान होती है। समझना, जानने के रूप में चरितार्थ हो पाता है और मानना ईमानदारी के रूप में चरितार्थ होता है। मैं समझता हूँ कि हरेक व्यक्ति अपने में, अपने को कहीं-न-कहीं ईमानदारी के रूप में ही ठण्डा साँस ले पाता है। बेईमानी की स्वीकृति तो साथ एक भी आदमी इस धरती पर मिलेगा नहीं जो ठण्डा साँस लेता हो। यदि इस एक सर्वेक्षण को आप हम ठीक से कर लेवे तो आप हम एक बड़ी भारी निर्णय को पायेंगे। वो है समझदारी, ईमानदारी मनुष्य की स्थिति का, गति का द्योतक है। जानने मानने का केवल ही दूसरी भाषा में समझदारी ईमानदारी बनता है। इन भाषा में समझने की बात ही प्रधान है और समझने के मूल में जानना मानना मुख्य है। जानने मानने की जो कुछ भी

जानना = समझना।

मानना = ईमानदारी

ईमानदारी में ही ठण्डा श्वास

अस्तित्व सत्य है

सत्य है जो सहअस्तित्व को इंगित कराये वो सार तत्व ही है। अस्तित्व का
प्रमाण पूछें तो वर्तमान ही अस्तित्व है। वर्तमान नित्य है। वर्तमान
नित्य है ही इस को आप हम खंडित नहीं कर सकते कुल
मिलाकर वर्तमान ही अस्तित्व के रूप में वैभवित है। इसलिए
में ही (अस्तित्व में ही) यह अस्तित्व प्रतिष्ठा, निरंतर प्रतिष्ठा
जीवन प्रतिष्ठा, जीवन जागृति प्रतिष्ठा, रासायनिक भौतिक
रचना विरचना रूपी प्रतिष्ठा अपने आप दृष्टिगोचर होता है
अर्थात देखने को मिलता है। यदि आप इनको देख पाये तो सार तत्व को
देख पाये। यदि अस्तित्व को देखना चाहते ~~सब~~ प्रत्येक
मनुष्य में समाहित होने का पहले इंगित कराया जा चुका है।

अस्तित्व का प्रमाण वर्तमान

वर्तमान की निरंतरता (आंशिक [illegible])

तो सबसे बड़ी दृष्टि, शक्ति आत्मा है। तो क्रम से जो छोटा-२
होता जाता दृष्टा शक्ति न्यूनतम मन में है। मन शरीर का दृष्टा
हो पाता है, शरीर और इन्द्रिय सन्निकर्ष का दृष्टा हो पाता है।
इससे अधिक वो हो नहीं पाता है। इस क्रम में हम दृष्टापद
प्रारम्भिक रूप
प्रतिष्ठा का दो क्रियापद रूप मन से देख पाते हैं विशालता को।
देख पाते हैं। मन के बाद वृत्ति में, वृत्ति के बाद चित्त में, चित्त के बाद बुद्धि में, बुद्धि के बाद
आत्मा। दृष्टापद पूर्ण प्रतिष्ठा को आत्मा में पहचान पाता है।
अभी जो इस क्रम में मन अनुभूत होता है स्वयं में स्वयं
को पहचानना। स्वयं दूसरे को पहचानना। दोनों बात जीवन
का ही अर्थ है। दृष्टापद को हम समझने में भी अच्छी तरह
से भटके हैं। रहस्य के आधार पर और रासायनिक भौतिक
क्रियाओं से दृष्टापद पहचाना नहीं गया। ये दो ही बड़ी भारी
दुखदगाथा रही जो कि शिक्षा में मानव परम्परा को नहीं
बना पायी। यदि दृष्टापद ही समझ में नहीं आता तो हम सिद्ध
बात को लिए गणित समझा रहे हैं। दृष्टा पद ही नहीं है तो सिखाने
की क्या बात है? सिखाने की क्या बात है, समझाने की क्या बात है!
करने की क्या बात है? कराने की क्या बात? ये सब दोष
अपने आप से उभर पड़ते हैं। अब यदि इसको ही ईमानदारी
से सोचा जाय तो हम कहीं न कहीं अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति
और अल्पव्याप्ति के दोषों से पीड़ित होते हैं या ग्रस्त होते हैं।

सर्वोच्च दृष्टि आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन

मन शरीर का दृष्टा

दृष्टापद को समझने में भटकाव से दोष

(ग्रस्त होने से ही मनुष्य ठीक से पहचान नहीं पाता, ग्रस्त न होने से मुक्त)
~~[illegible]~~ मानना।
अतिव्याप्ति - जो जैसा है उससे अधिक ~~समझना~~ मानना।
अनाव्याप्ति - जो जैसा है उससे उसे कम ~~समझना~~ मानना।
अल्पव्याप्ति - जो जैसा है ~~[illegible]~~ उसके स्थान पर दूसरी वस्तु
~~समझना~~ मानना।

[illegible] स्वरूप एक दूसरे से जुड़ी हुई बातों से छूट जाते हैं।

शुभ की आकांक्षाएं

विमुख हो जाते हैं। आकांक्षाएं तो शुभ समझने में आती हैं।
आदिकाल से लेकर अब तक मानव परम्परा में प्रत्येक शास्त्र
में शुभ की आकांक्षा झलकती है। किसी में अधिक किसी में
कम, झलकता आकांक्षा ही है और उसका सार्वभौमिकता
कार्य रूप, नूतन रूप; या समाज गति रूप [illegible] देने में
[illegible] अभी भी हम प्रतीक्षा में ही हैं। सभी समाज

कहाँ सुलझेंगे

समाज शास्त्री, विज्ञान शास्त्री और सभी तत्ववेत्ता
को पता है। क्या दृश्य पद को समझे बिना हम कहीं
सुलझ सकते हैं। दृश्य पद को पहचाने बिना जो
कुछ भी निर्णय ले क्या ठीक हो सकता है। इस बात पर
पुनर्विचार करना क्या जरूरी नहीं है? मेरे आँखों में तो

पुनःविचार जरूरी है

पुनर्विचार करना बहुत जरूरी है। नितान्त आवश्यक है।
शरीर को जीवन समझना अभी तक हमने जितने भी
निर्णय लिया वो हमें काला दीवार के सामने खड़ा किया।
और रहस्य को जीवन समझ कर जितने भी निर्णय
लिया वो सभी हमें एक काला दीवार के सामने खड़ा किया।

जीवन में बोध

जीवन पद प्रतिष्ठा में नित्य वर्तमान है। जीवन में सत्य
बोध होता है, वस्तु बोध होता है, इन्द्रिय बोध होता है, और
इन्द्रियों का व्यापार बोध होता है। इन बोधों को ले साथ
ही हम जी रहे हैं। जी पा रहे हैं। बोध नहीं हो रहा है
इसलिए रूपान्तर नहीं है मनुष्य के साथ, जो कुछ भी बोध हो
रहा है इसी सीमा में बोध करता है, इसी सीमा में जी जाता है।

जीवन विशाल है

ये बोध जीवन तृप्ति का आसार नहीं बना। इन्हें में आपके
जो आशय है, शुभ है, शुभ का आशय है उसको हम पा नहीं
पाते हैं। [illegible] जीवन विशालतम सीमा में जीने की वस्तु है
इतनी सीमा में जीने की वस्तु नहीं है। इसका अर्थ ये हुआ

जीवन को (विशाल को) छोटे में (शरीर में) बसे पाते हैं

कि तो बहुत बड़े चीज को बहुत छोटे बर्तन में, छोटे जगह में
बोते जाते हैं। तो कैसा करते हैं? फल स्वरूप जीवन को हम
जीवन को शरीर में बोते जाते हैं तो उतने ही हम
कुण्ठित होने के लिए बाध्य होते चले जाते हैं। आज भी हम
वैसे ही हैं जीवन में, से, के लिए व्यक्त होने वाली चीज में
जीवन के लिए शरीर भी एक दृश्य है। जीवन का अध्ययन भी
एक दूसरे के लिए जैसे मन वृत्ति के दृश्य है, वृत्ति दृष्टा हो
जाता है। फल स्वरूप परीक्षण निरीक्षण करता है। मन, वृत्ति
चित्त के लिए दृश्य है। मन, वृत्ति, चित्त बुद्धि के लिए दृश्य है।
मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि आत्मा के लिए दृश्य है तो अन्तःकरण
के नाम से जो [illegible] करना चाहते रहे हैं मैं समझता हूँ इन्हीं
[illegible] को ठीक होना शायद है चाह रहे होंगे। ये समय इन्सान
के लिए समीचीन है। ह्रास में प्रयत्न के लिए आगे की ओर।

बड़े का अनुभव छोटे का मूल्यांकन

अस्तित्व में एक सिद्धान्त है बड़े का अनुभव होना है और छोटे
का मूल्यांकन होता है। हर छोटी चीज जो देखने के स्वरूप है
उससे छोटी चीज का मूल्यांकन हो पाता है अधिक का अनुभव
हो पाता है। इस प्रकार मन का क्रिया कलाप वृत्ति के लिए

मूल्य स्वरूप

छोटा है। वृत्ति मन का दृष्टा बन पाता है। फलस्वरूप
वृत्ति अपने क्रियाओं (तुलन और विश्लेषण) से मन को मूल्यांकित
करने में समर्थ है। तो स्वाभाविक है कि बड़े मूल्य में छोटे

मन वृत्ति के अनुरूप

मूल्य अपने आप में समर्पित होते हैं। इस सिद्धान्त से मन
वृत्ति में समर्पित होना और उसमें अनुभूत होना, वृत्ति के संकेतों
से मन को प्रशान्त होना, प्रफुल्लित होना एक सहज क्रियाकलाप है
तो इस सहज क्रियाकलाप का अर्थ ये है कि जब मन और
वृत्ति के बीच निर्विरोध हो जाता है, तालमेल बन जाता है
संगीतीकरण होता है। इसी स्थिति में मनुष्य सुख का
अनुभव करता है। विचार और चयन के बीच में जब
तक अन्तर्विरोध होगी तो चयन और आस्वादन से सुख
पाना सम्भव नहीं हो पाता। तो ये हमने व्यक्ति में अध्ययन

मन, वृत्ति का चित्त अनुरूप = शान्ति

गम्य है। इसी भांति आगे वृत्ति और मन का दृष्टा चित्त होता है।
चित्त जब वृत्ति और मन का मूल्यांकन करता है। तो स्वाभाविक
चीज है कि जो चित्त का अनुभव वृत्ति करता ही है। इसी
भांति बुद्धि का अनुभव चित्त, आत्मा का अनुभव बुद्धि
करता एक सहज प्रक्रिया है। इस क्रम में मनुष्य में अपने एक
एक दूसरे अवयवों का अनुभव करना। जैसा शरीर में जो अवयव हैं
जैसा हाथ, पैर, आँख; इनका भी अनुभव करना मनुष्य से सम्पादित
हो पाता है। जैसा उसके क्रिया कलापों के ~~सम्बन्ध~~ साथ
एक दूसरे को समझने का स्वरूप को स्पष्ट किया, (एक विधि)
दूसरी विधि जीने के स्वरूप को, स्वपरक, स्वरूप के लिए पहचानने
की विधि स्पष्ट किया। अनुभवों को हर स्थापित तथ्य है
सुख, सम्बोध शान्ति, सन्तोष और आनन्द का अनुभव करना।
मन और वृत्ति के बीच जो तालमेल, संगीतीकरण, तृप्त बिन्दु है वो
ही सुख है। मन का वृत्ति विरोधी नहीं और वृत्ति का मन से विरोधी
नहीं। एक दूसरे के साथ जो तृप्त रहते हैं वो ही स्वभाव गति है।
इसी स्वभाव गति में ही मनुष्य सुखी हो पाता है।
और इस स्वभाव गति में जो तालमेल, संगीत जुड़ जाता है।
दूसरे वृत्ति और चित्त के बीच में जो तालमेल, इस स्थिति में मनुष्य को शान्ति सहज
तृप्त बिन्दु मिल जाती है। प्रत्येक प्राणी सुख शान्ति चाहता ही है।

सुख का वैभव न्याय

रूप में मिल जाती है। न्याय के साथ मनुष्य सुखी होता है
सुख का वैभव है न्याय।

आपको पहचानते जाते हैं तो अखण्ड समाज की व्यवस्था
... अखण्ड समाज को देखा पाया जाता है। उसमें होने वाले

क्रियाकलापों में सम्बन्धों की पहचान और मूल्यों का निर्वाह मिलेगा। ये ही न्याय के रूप में गण्य हो पाता है। तभी मनुष्य सुखी होता है।

शान्ति में स्वयं में व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी

शान्ति तभी हो पाता है जब स्वयं में मनुष्य व्यवस्था के लिए प्रमाणित हो जाये। और व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह कर सके। तब मनुष्य आपस में शान्ति का अनुभव करता है। जब तक स्वयं में एक व्यवस्था न हो और समग्र व्यवस्था में भागीदारी ना हो ऐसी स्थिति में शान्ति का होना सम्भव नहीं।

सुख, शान्ति मानव सहज आकांक्षा

सुख और शान्ति मानव सहज आकांक्षा है जिसको हम शुभाकांक्षा कह सकते हैं। उसको व्यवहारिक रूप और कार्य रूप में देखना चाहे तो। अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में ही हो पाता है। इस प्रकार मनुष्य जीवन की आकांक्षा, उसकी स्थिति उसकी गति तीनों चीज स्पष्टतया झलक पड़ती है, समझ में आती है उसकी सार्थकता को आंकलन करने में भी कोई बाधा नहीं रह पाती। इस प्रकार पहले अखण्ड

परिवार में ही मनुष्य की पहचान

समाज की भागीदारी होने के क्रम में देखा जाये तो परिवार में ही मनुष्य की पहचान हो पाती है। समस्त आयामों की पहचान भी परिवार में ही हो पाती है। इस आधार

परिवार की परिभाषा

पर परिवार की परिभाषा — 'परस्पर सम्बन्धों व मूल्यों का निर्वाह करें और व्यवसाय कार्य में परस्पर पूरक हो सकें'। बनती है। परिवार की संज्ञा बनता है, परिवार का स्वरूप बनता है। परिवार का कार्य बनता है, गरिमा बनता है जिससे बौद्धिक समाधान और भौतिक समृद्धि हरेक परिवार को स्वत्व रूप में मिलता है। तो ऐसी परिवार मूलक राज्य की व्यवस्था में सम्पूर्ण परिवार एक परिवार के जो

परिवारों समग्र परिवार (अखण्ड समाज) के सार्वभौम व्यवस्था तो शान्ति

सूत्र है वो समग्र परिवार में एक रूपता के साथ अनुभव होने के फलस्वरूप शंका, द्रोह, विद्रोह, अविश्वास से मुक्त होकर विश्वास, आस्था, निष्ठा से युक्त होकर एक अखण्ड समाज का अनुभव हो पाता है और सार्वभौम व्यवस्था का सूत्रपात हो पाता है। तो इस तरह से सार्वभौम व्यवस्था के सूत्रों के आधार पर शान्ति का अनुभव करना, फलस्वरूप शंका कुशंका से मुक्त हो जाना ये सहज है और एक अखण्ड समाज के एक अविभाज्य रूप में प्रत्येक मनुष्य होना एक सहज प्रक्रिया है।

बुद्धि व चिन्तन में सामरस्यता

इसके पश्चात आता है बुद्धि और चिन्तन का सामरस्य, [illegible] नहीं पड़ती है। और सत्य बोध के [illegible]

सन्तोष — प्रयोजनों को समीकरण, नियन्त्रण और उसका सार्थकता में मन और बुद्धि का कार्य कलाप और वो समाधान और मानव कुल तक भागीदारी का जो बोध कराता है, उसकी भागीदारी में जो सफलता होती जाती है उतना ही सन्तुष्टि, जितना सन्तुष्टि मिलती है।

आनन्द — जब जीवन सन्तुष्टि मिलने लगती है उसी का नाम होता है सन्तोष। इसकी पराकाष्ठा बनती है अनुभव। अनुभव वो चीज है बुद्धि में जो सत्य बोध हुआ रहता है उस अस्तित्व में वो सत्य पहचान लिया जाता है। उस समय उसको अनुभव की संज्ञा दी जाती है। क्रिया के रूप में पहचानना। ऐसे अनुभव के फलस्वरूप ही आनन्द सहज हो जाता है। नित्य वर्तमान हो जाता है। तो इस ढंग से सुख, शान्ति, सन्तोष और आनन्द का एक नित्य आकांक्षा है। मानव परम्परा में यदि कोई नित्य आकांक्षा है तो यही आनन्द ही है। इसी आनन्द के क्रम में ही विभिन्न स्थितियों में हम सुख, शान्ति, सन्तोष रूप में पहचानते हैं। ये जीवन सहज, सुखद सुन्दर और समाधानपूर्ण प्रमाणिकता सहित अवस्था है।

जीवन को क्रिया एवं प्रयोजनों के आधार पर स्पष्टीकरण — जीवन को समझाना कितना आवश्यक है। अब जीवन को स्वरूप ही निर्णय करो। जीवन को क्रिया के रूप में बताया प्रयोजन के रूप में बताया। प्रयोजन और दूसरा भाग प्रयोजन के रूप में बताया।

क्रिया एवं प्रयोजनों में संगीतिकरण — प्रयोजन और क्रिया के बीच तालमेल युक्त जीवन सहज क्रिया ही है। तो जीवन, जीवन ही क्या? अस्तित्व में अविभाज्य रूप अस्तित्व ही है। जीवन होने का फलस्वरूप ही अस्तित्व की एक अंश ही है। जीवन होने का अपने आप में उसमें में होने का गुण ~~उसमें सहज है~~ होना सहज है। इन सहज क्रिया कलाप को हम जब समझने की जगह में जायें तो चारों अवस्थाएं अस्तित्व में सहज रूप में है। अस्तित्व में पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था चारों अवस्थायें सम्मिलित रूप में हैं। ऐसी कोई स्थिति आप इनको काट छांट कर अलग करके देख जायें, ये हमारे सामर्थ्य के बस की नहीं है। ये पूरा अविभाज्य रूप में वर्तमान है।

दृष्टापद की महिमा — अविभाज्य रूप वर्तमान वस्तुएं दृष्टा पद में होने के फलस्वरूप आपने में जो संगीत का अनुभव करना अपने में सहज रूप में है। यदि इन दृष्टा पद प्रतिष्ठा में नहीं होती शायद ही ये भी जीवों सहित प्रताड़ित, वनस्पतियों सहित सद्रूप ऋतुओं और धरती के साथ सुलसता हुआ और वस्तु के सद्रूप परिणामों के साथ

बदलता हुआ होगा। जबकि मनुष्य अपनी प्रजाति की सुरक्षा बनाए रखने के लिए मौलिक अधिकार सम्पन्न है। इसको यदि थोड़ा सा फैलाकर देखें तो एक अद्भुत

प्रत्येक अपने त्व सहित

लीला ये दिखती है तो जैसा होके वस्तु अपने त्व सहित विद्यमान है। जैसा लोहा लोहत्व के साथ अपने अस्तित्व को, व्यवस्था को व्यक्त करता है। जब लोहा अपने त्व सहित व्यवस्था को व्यक्त करता है। उसमें कोई भी सन्देह नहीं। लोहत्व के आधार पर ही मनुष्य लोहे को पहचानता है। यदि लोहत्व ही पहचान नहीं आता तो मनुष्य लोहे को पहचान ही पाता नहीं। इस आधार से मनुष्य, मनुष्येत्तर प्रकृति को त्व सहित व्यवस्था को पहचाना, इसका दृष्टा पद प्रतिष्ठा का गवाही है। ये गवाही न्यूनाधिक होके सबके में मिलता ही है। कोई व्यक्ति थोड़ा ज्यादा वस्तुओं को पहचान लेता है कोई थोड़ा कम वस्तुओं को पहचान लेता है। तो जब कभी भी कोई किसी वस्तु को पहचानता है तो पहचानता है क्या कि, उसकी व्यवस्था को ही पहचानता है तो कुल मिलाकर विशेषता क्या है? ये है कोई भी किसी

व्यवस्था में ही पहचान

वस्तु को पहचाना आप हम मानते हैं उस स्थिति में वस्तु को व्यवस्था के रूप में ही पहचानेगा। अव्यवस्था का कोई पहचान होती नहीं। अव्यवस्था का पहचान न कोई सार्थकता का सूत्र हो पाता न व्याख्या हो पाता। इस ढंग से लोहा में, लोहत्व की पहचान के साथ, मनुष्य उसकी उपयोगिता को पहचाना है। दूध का दूधत्व के साथ, मणि का मणित्व के साथ, मिट्टी को मिट्टीत्व के साथ उसकी उपयोगिता को मनुष्य पहचाना है। वृक्षों में विभिन्न प्रजातियों साथ अपने-2 त्व के साथ उसकी उपयोगिता को पहचाना है। जीवों का जो त्व होता है, जैसे गायत्व के साथ उसको उपयोगिता को पहचानता है यानि उसके त्व के साथ ही व्यवस्था को पहचानता है। इस प्रकार मनुष्य, मनुष्येत्तर

मानव मानवत्व को पहचानने से वंचित

प्रकृति को उसके त्व के साथ ही पहचान पाया है। जो पहचान न शेष है वह भी उसके त्व के साथ ही पहचान पायेगा। लेकिन ये एक अच्छी पहेली है कि मानव मानवत्व को पहचानने से ही वंचित रह गया। बाकी को थोड़ा कम भी पहचानते तो अपन को कोई हानि लाभ ज्यादा नहीं हो पाता। मनुष्येत्तर व्यवस्था को पहचानने तथा मानवत्व को न पहचानने से विकास नहीं होता। विकास की अवधारणा ही मनुष्य मनुष्यत्व ही। इससे व्यवस्था बनी नहीं। मानव का उपयोग पहचाना नहीं।

फलस्वरूप मानवत्व के आधार पर व्यवस्था का कोई सूत्र इस धरती पर मिला नहीं। तो ये नहीं हुआ तो जैसा जिसका मन पड़ा कर दिया, जो होना है होते आया है।

अतः मानव मानवत्व को पहचानना नितान्त आवश्यक है, इसको पहचानने के बाद ही मानव स्वयं व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को पहचानता है।

26.04.92 [द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध विहित व्यवस्था
मध्यस्थ दर्शन एवं योजना]

द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध विहित व्यवस्था को हर व्यक्ति करता है स्वीकारता है। इसी को शुभ मानकर चल रहे हैं। इसके सकारात्मक स्वरूप के बिना प्रत्येक मनुष्य शुभ के प्रति निष्ठा सम्भव नहीं हुआ। ये ही मानव कुल का कुण्ठा का बिन्दु है।

मध्यस्थ दर्शन एवं योजना

सकारात्मक शुभ स्वरूप को जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह करना मानव कुल का एक अपरिहार्यता है। इसका भरपाई अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन सार रूपी मध्यस्थ दर्शन, ज्ञान विज्ञान और विवेक सम्मत तर्क प्रणाली रूपी समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद के अर्थ में सहअस्तित्ववाद और आवर्तनशील अर्थव्यवस्था ~~चिन्तन~~ मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी आचार संहिता जो व्यवहारवादी जनचेतना के रूप में है, इसके साथ ही मानव ~~संचेतना~~ वादी मनोविज्ञान करता है। इनके आधार पर परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना, मानवीय संविधान योजना, मानवीयता पूर्ण संस्कार योजना, शिक्षा का मानवीयकरण योजनाएं प्रस्तुत हैं।

परिवार मूलक स्वराज्य योजना :— के अनुसार संघर्ष विहीन व्यवस्था का मार्ग स्पष्ट हुई है। जिसका क्रियान्वयन की रूपरेखा को स्पष्ट किया गया है। जिसको अन्तर्ग्राम, जिला में प्रमाणित करने के लिए प्रयास रत है। जिसमें उत्पादन, विनिमय, शिक्षा संस्कार, स्वास्थ्य संयम, न्याय सुरक्षा विनिमय कोष प्रणालियों को स्पष्ट कर दिया है।

मानवीय संविधान योजना :- व्यवस्था के रूप में संविधान, अस्तित्व सहज होने का सत्य को प्रकाशित करते हुए मानव परम्परा में विश्वास, मानवीयता के प्रति सहज सर्व सुलभ होने की यथार्थ को बोध गम्य कराते हुए, मानवीयता पूर्ण मानव की परिभाषा, व्याख्या, मूल्य चरित्र नैतिकता कायिक, वाचिक, मानसिक कृत कारित व अनुमोदित प्रभेद से जाने वाली क्रियाकलापों में प्रत्येक मनुष्य स्वयं में एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होने, सम्बन्धों का पहचान और मूल्यों का निर्वाह करने कराने के क्रम में ~~व्यापिक का~~ न्याय का ध्रुवीकरण सार्थकता उसकी निरन्तर महिमा व्यवहार गम्यरीति से प्रस्तुत किया।

F7 रण सिंह डायरी नोट्स -बाबाजी सान्निध्य में_c

मानवीयता पूर्ण संस्कार योजना :- इसमें मानवीयतापूर्ण आचरण में विश्वास और निष्ठा को जाग्रत करने की व्यवस्था है। साथही प्रत्येक मनुष्य जीवन को जानने, मानने पहचानने एवं निर्वाह करने के लिए शिक्षा सुलभ करने, आगत जीवन क्रिया कलापों में विश्वास और निष्ठा को स्थापित करने के लिए सम्पूर्ण वस्तु समीचीन हुआ है।

शिक्षा का मानवीयकरण योजना :- प्रचलित शिक्षा जो विज्ञान, तकनीकी साक्षरता और आंकलनात्मक ज्ञान के रूप में परिसीमित है। उसका मानवीयकरण योजना मूल रूप में विज्ञान के साथ चैतन्य पक्ष का अध्ययन, मनोविज्ञान के साथ संस्कार पक्ष का अध्ययन, दर्शनशास्त्र के साथ क्रिया पक्ष का अध्ययन अर्थशास्त्र के साथ प्राकृतिक एवं वैकृतिक (मानवकृत) ऐश्वर्य की सदुपयोगात्मक एवं सुरक्षात्मक नीति पक्ष का अध्ययन, राज्य नीति शास्त्र के साथ मानवीयता के संरक्षणात्मक तथा सम्वर्धनात्मक नीति पक्ष का अध्ययन समाजशास्त्र के साथ मानवीय संस्कृति व सभ्यता पक्ष का अध्ययन, भूगोल और इतिहास के साथ मानव तथा मानवीयता का अध्ययन, साहित्य शास्त्र के साथ तात्विक पक्ष का अध्ययन अनिवार्य है।

ये मानव सहज योजनाएं मानव कुल को मानवीयता से परिपूर्ण जाग्रत, समृद्ध सम्वर्धन कार्य कार्यक्रम के लिए मार्ग दर्शन है। इस मार्ग में मानव में समाहित अमानवीयता का उन्मूलन होना स्वाभाविक है। अमानवीयता का स्वरूप कार्य रूप में द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध और अव्यवस्था के रूप में ही पीड़ादायक होना पाया जाता है। प्रत्येक मनुष्य में न्यूनाधिक रूप में अव्यवस्था का समझ और उसका पीड़ा जीवन सहज रूप में ही व्यक्त होता है जिसको बाल्यकाल से ही न्याय का याचक, सही करने का इच्छुक और सत्य वक्ता के रूप में पहचानना सर्व सुलभ है। इसी के आधार पर मनुष्य को सहज प्रेरणा मिलती है कि प्रत्येक मनुष्य में न्याय का अभिप्सा है उसे सार्थक और सहज बना दे। यह सर्वोपरी अनुसन्धान का प्रमाण होगी अपना है। दूसरा सही कार्य को करने का इच्छा भी बचपन से ही अनुसरण, सहयोग आज्ञापालन जैसी प्रवृत्तियों के रूप में प्रमाणित होता है इसे सफल बनाने की दिशा में नियम पूर्ण आचरण और उत्पादनशीलता में पारंगत बनाना शिक्षा का मूल उद्देश्य होना सहज है। इसी क्रम में व्यक्ति अपने को व्यवस्था के रूप में पाना सहज होता है। इसी क्रम में निपादी पर जीवन विद्या में पारंगत होने के उपरान्त सहज ही स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान होना पाया जाता है। फलस्वरूप सम्बन्धों की पहचान और मूल्यों का निर्वाह स्वयं में एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी की अर्हता प्रमाणित होता है।

सर्वशुभ कामना

इस प्रकार सार्वभौम शुभ, सार्वभौम व्यवस्था, सार्वभौम न्याय, सार्वभौम नियम की अभिव्यक्ति परम्परा में समाधान, समृद्धि अभय सह अस्तित्व सहित परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, ग्राम से विश्व तक प्रमाणित होना समीचीन है, इसे सफल बनाना ही सर्वशुभ कार्य का शुभारम्भ आंशिक परिपूर्णता और उसकी निरन्तरता है। यही सर्वशुभ कामना है।

बाल्यकाल से मनुष्य में

ए नागराज, प्रणेता एवं लेखक मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद) www.madhyasth.org

(i) जीवन की निरन्तरता
(ii) जीवन शक्ति और ... मूल्यों की निरन्तरता
(iii) सतर्कता की निरन्तरता
(iv) सजगता की निरन्तरता, जीवन जागृति की निरन्तरता

मूल्यों की निरन्तरता

स्थापित, शिष्ट मूल्य

मूल्यों को स्थापित मूल्य और शिष्ट मूल्यों के रूप में पहचाना जाता है। स्थापित मूल्य वो है जागृति पूर्वक किया गया स्वीकृति। शिष्ट मूल्य – स्वीकृत मूल्यों को अभिव्यक्त, सम्प्रेषित एवं प्रकाशित करने को किया है। यह जीवन का सहज कार्य और वैभव है। जीवन में ही जानने, मानने और पहचानने का क्षमता, योग्यता समाहित है। जीवन स्वयं जागृति पूर्वक अस्तित्व समग्र को अथवा इस धरती सम्पूर्ण को और धरती में समझने योग्य सम्पूर्ण क्रिया कलापों को जानना, मानना, पहचानना जीवन सहज महिमा है।

यन्त्र प्रमाण अनुपयुक्त

जीवन ही जागृति क्रम में – अपने को प्रमाणित करने का निरन्तर प्रवर्तनशील है। जीवन अपने स्वरूप में अमरत्व प्राप्त पद में कार्य रत होने के कारण उसकी जागृति ही उसके लिए तृप्ति बिन्दु होना सहज है। जीवन अपने में गठन पूर्ण परमाणु के रूप में विद्यमान होते हुए अन्य प्रकृति अर्थात जड़ प्रकृति जो रासायनिक भौतिक रचना विरचनाओं के रूप में दृष्टव्य है। इनके योग संयोग और यन्त्रीकरण विधियों से गठनपूर्ण परमाणु प्रमाणित नहीं होती। क्योंकि अधिक शक्ति की सम्पूर्णता को प्रमाणित करना ~~प्रमाणित करना~~ युक्ति संगत नहीं है। फलतः कार्य संगत नहीं है। मूलतः सम्पूर्ण ~~जड़~~ प्रकृति का योग, संयोग, वियोगात्मक क्रिया कलापों द्वारा रचित सम्पूर्ण ~~यन्त्र~~ मानव से कम महिमा सम्पन्न होना नियति सहज है नियति सहज का तात्पर्य विकास सहजता से है। इसप्रकार विकसित के लिए अविकसित यन्त्र अथवा साधन होना देखा जाता है। भौतिकवादी विश्व दृष्टिकोण के अनुसार हर वस्तु को यन्त्रों से देखने, पहचानने की भ्रम को लेकर अपनी विवशता को लेकर चलता हुआ स्पष्ट है। इसी क्रम में मनुष्य को यन्त्र से पहचानने का प्रयास हुआ है।

यन्त्र जीवन को नहीं माप सकता

मनुष्य स्वयं जड़ चैतन्य प्रकृति का संयुक्त साकार रूप में विद्यमान है। चैतन्य प्रकृति जड़ प्रकृति से रचित शरीर द्वारा सम्पूर्ण कार्य कलाप करता हुआ देखने को मिलता है। तो सम्पूर्ण यन्त्र जड़ प्रकृति की रचना है। अभी तक यन्त्र ~~यन्त्र~~ रचना क्रम में मनुष्य शरीर से श्रेष्ठ रचना अथवा समान रचना नहीं हो पायी। यह सर्व विदित होते हुए मनुष्य यन्त्र से प्रमाणित हो जाए जबकि ये अस्तित्व सहज नियम है कि जो जिससे निर्मित होती है उससे वह सभी निर्मिति कम होती है। मनुष्य द्वारा अभी तक जितनी निर्मितियों को प्रमाणित किया है वह सब मानव से छोटा होना सहज ही प्रमाणित है कि इससे अधिक समृद्ध रचनाओं के लिए तत्पर है ही। इससे यह भी सिद्ध स्पष्ट समझ में आता है कि मानव जितने भी रचनाओं को कर पाने का सम्भावना है उसमें आंशिक रूप ही साकार हो पाया ~~है~~ है। अर्थात कार्य रूप में आ पाया है।

सम्पूर्ण यन्त्र जड़ प्रकृति की रचना

मनुष्य श्रेष्ठ

सभी यन्त्र मनुष्य से छोटे

मनुष्य के सर्वेक्षण से अपरोक्ष कोई कुई बात या तथ्य प्रत्येक मनुष्य में प्रमाणित होता है। वह इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक मनुष्य जो कुछ भी किया रहता है, सोचा रहता है उससे अधिक सोचने और करने का स्रोत उन्हीं में निहित रहता है जैसा एक मनुष्य के ऊपर एक सौ प्रतिबिम्ब पड़ा हो अथवा अरबों पड़ा हो। उससे अधिक ~~प्रतिबिम्ब~~ प्रतिबिम्बों को पहचानने की क्षमता प्रत्येक मनुष्य में होती है। प्रतिबिम्बन की सार्थकता जानने, मानने एवं पहचानने के रूप में हर व्यक्ति में होना पाया जाता है। यदि ... व्यक्ति को पहचान होता है, १० को पहचान लेता है तो उससे अधिक को पहचानने की क्षमता उसमें है ही।

प्रतिबिम्बन क्रियाएं रूप, गुण, स्वभाव व धर्म के रूप में समीचीन है। क्योंकि प्रत्येक एक में रूप, गुण, स्वभाव धर्म आदि आज्य ~~कथन~~ वर्तमान है।

__रूप__ :→ प्रत्येक एक में रूप आकार, आयतन व घन के समान होते हैं।

आंखों से रूप के दो आयाम - आकार और आयतन तथा घन गणित से देख पाते हैं। आंख को पंच ज्ञानेन्द्रियों में फैला सकते हैं। देखना = समझने से, इसके चार स्रोत = आंख, गणित, गुण और कारण)। ~~कारण से गुण~~।

__गुण__ :→ गुण सम, विषम और मध्यस्थ गति के रूप के समान होते हैं।

कारण से गुण (पदार्थ, प्राण, जीव, ज्ञानावस्था होने का गुण, अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक भौतिक रचना विरचना के कारण से गुणों का साक्षात्कार होता है।

गुण = गति - अस्तित्व में प्रत्येक एक स्थिति में बल, गति में शक्ति को व्यक्त करता हुआ दिखाई पड़ती है। जैसा मनुष्य को चलता हुआ देखने पर मनुष्य अपने में बल सम्पन्न रहता ही है। वह जब गतित रहता है उस समय में भी मनुष्य का अस्तित्व स्पष्ट तथा प्रमाणित होती है। हाथ, पैर, आदि में जो गतियां दिखाई पड़ती है वह सब मनुष्य का ही स्वयं स्फूर्त/स्वयं प्रेरित तथ्य के रूप में ही प्रमाणित होती है। इससे स्पष्ट होता है कि स्थिति में हरेक एक बलसम्पन्न रहता ही है। गति में शक्ति का प्रकाशन होता ही है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीव, अणु, परमाणु यन्त्रों से निरीक्षण, परीक्षण पूर्वक परिमाणित किया जाना मानव सहज कार्य है। ऐसे गतियों को निरीक्षण, परीक्षण करने से पता चलता है कि सम, विषम और मध्यस्थ क्रिया के रूप में सभी गतियां प्रयोजित होते हैं।

सम, विषम मध्यस्थ गतियां

रचना कार्य (उर्वरकशीलता में) अर्पित गति सम शक्ति के नाम से जाना जाता है। विसर्जन कार्य में अर्पित गति अथवा शक्ति - विषम गति के नाम से जाना जाता है। यह सब कार्य रूप में पहचानने की विधि है। इसी प्रकार वाणी का गति भी इन्हीं तीन क्रिया-कलापों के लिए अर्पित होता पाया जाता है। सम्पूर्ण विचार भी। ये मनुष्य के कार्य में सहज रूप में सम, विषम मध्यस्थ क्रिया कलापों को कायिक, वाचिक मानसिक रूप में किये जाने वाली सम्पूर्ण क्रिया कलापों को वर्गीकृत रूप में समझा जा सकता है और समझाया जा सकता है।

सम्पूर्ण विचार, कार्यकर्म सभी सम, विषम मध्यस्थ

सम ~~क्रिया~~ क्रिया की स्वभाव गति में रचनाशीलता उसका मध्यस्थ शक्ति है। आवेश को विषम गति में ही प्रयोग कर दिया जा सकता है वह विशेषकर मनुष्य में ही है। मनुष्य में विषम गतियां असन्तुलन का कारण हो जाते हैं। जबकि जीवों में न्यून रूप में पाये जाने वाली __क्रूरता अथवा हिंसक कृत्यों से जो परिणाम है__ वह सन्तुलन के अर्थ में सार्थक होता है और वन स्थितियों में रचना विरचना का अर्थ पूरकता के अर्थ में सार्थक हो जाता है। पदार्थावस्था में सम्पूर्ण विकास और रचना परिणाम के अर्थ में सार्थक हो जाता है। यह क्रम से परिणाम का चरम प्रयोजन रासायनिक पदार्थों और रचनाओं के रूप में प्रमाणित है। विकास का सार्थकता गठनपूर्णता के अर्थ में सार्थक है जो स्वयं जीवन पद का स्वरूप है। सम्पूर्ण वनस्पतियों का सार्थकता जीव शरीर और मनुष्य शरीर के पूरक होने के अर्थ में सार्थक है और वहाँ प्राण कोशायें जिस वनस्पति जगत को प्रकाशित किये हैं वही प्राण कोशाएं जीव शरीरों के रूप में रचना क्रम को अर्पित करने के अर्थ में सार्थक होता है। सम्पूर्ण जीव जगत जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में प्रकाशमान है। समृद्ध मेधस युक्त शरीर रचना का योगफल में भिन्नता सहित सम्पूर्ण जीव दिखाई पड़ती है। यह अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व होने का प्रमाण है (व्यवस्था है) इसी ... में वंश अनुषंगी स्वभाव का स्पष्ट रूप ~~है ... ...~~ अनेक परम्परा रूपी जीवों का सार्थकता मानव

आवेशात्मक गति मनुष्यों में ही

निर्माणात्मक में पूरकता

शरीर रचना के लिए पूरक होना प्रमाणित है। क्योंकि जीवन [illegible] मनुष्य का कलतरण होना विपरीत सहज / विकास सहज है।

<u>स्वभाव</u> :- प्रत्येक इकाई में स्वभाव चार अवस्था के आधार पर स्पष्ट होता है। जैसा कि - <u>पदार्थावस्था में संगठन विघटन</u> के समान होते हैं। <u>प्राणावस्था में सारक, मारक</u> के समान होते हैं। <u>जीवावस्था में स्वभाव</u> क्रूर, अक्रूर — के <u>क्रूर अक्रूरता</u> के समान होते हैं। मनुष्य में <u>धीरता, वीरता और उदारता</u> पदों में गण्य होते हैं।

<u>धर्म</u> :→ पदार्थावस्था में अस्तित्व धर्म, प्राणावस्था में अस्तित्व सहित पुष्टि धर्म, जीवावस्था में अस्तित्व, पुष्टि सहित आशा धर्म। जीवन की पहली अभिव्यक्ति आशा। जीवों में जीने की आशा (वंशानुषंगीयता से) है। जीवों में भी जीवन है। ज्ञानावस्था में मानव अस्तित्व, पुष्टि, आशा सहित सम्पूर्ण सुख धर्मी है। सुख ही शान्ति, सन्तोष और आनन्द के रूप में निरन्तरता के क्रम में स्पष्ट हो जाता है।

अस्तित्व पुष्टि आशा सहित सुख धर्म

[अविनाशीता के अर्थ में अस्तित्व। पुष्टि - अपने ही प्रतिरूप को प्रकट करने के अर्थ में पुष्टि धर्म। वनस्पतियों में एक कोशीय, द्विकोशीय, बहुकोशीय (बीजानुषंगी पानी हवा मिट्टी - भूमि के संयोग से)। अण्डज पिण्डज - में, भूचर में अण्डज, पिण्डज दोनों नभचर में अण्डज अधिकतम। जलचर में अधिकांश अंडज। उद्भिज्ज से अण्डज समृद्ध रचना, अण्डज से समृद्ध पिण्डज। पिण्डज रचनाओं में मानव शरीर रचना सर्वोपरि समृद्ध है]

अस्तित्व दृष्टापद

अस्तित्व में ज्ञानावस्था की इकाई मानव ही दृष्टापद में है। दृष्टापद का प्रमाण जीवन प्रकाश में अस्तित्व ही समाने की सन्दर्भ में है। अस्तित्व का प्रतिबिम्बन जीवन प्रकाश में आती है। अस्तित्व कैसा है यह प्रत्येक मनुष्य को जीवन प्रकाश में प्रतिबिम्बित होता है, इसका प्रमाण यह है मनुष्य को अस्तित्व कैसा है यह समझ में आता है। अस्तित्व कितना है यह आवश्यकता के आधार पर समझ में आता है। जानने, मानने के योगफल में समझदारी का स्वरूप होता है। जिसमें से कुछ अंशों को पहचानना और निर्वाह करना हो जाता है। यही है प्रमाण कि पहचानना और निर्वाह करना आवश्यकता के परिसीमा पर आधारित है। जानना, मानना - अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक भौतिक रचना विरचनाओं के सम्बन्ध में स्पष्ट है। इस विधि से जानना मानना स्वयं प्रमाणिक समझदारी है यही अनुभव और अभिव्यक्ति स्वयं प्रमाण होना मानव सहज कार्य है। इसप्रकार मानव ही अस्तित्व में दृष्टापद प्रतिष्ठा में प्रमाणित होना वर्तमान है।

जीवन ही दृष्टा होना अपने जागृति के आधार पर प्रमाणित होता है दृष्टापद में दर्शकता और दृष्टियों की क्रियाशीलता के आधार पर स्पष्ट हो जाती है। सम्पूर्ण मानव में दर्शकता प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्य के रूप में क्रियारत होना परस्पर मनुष्य के अथवा स्वयं मनुष्य के निरीक्षण सर्वेक्षण परीक्षण पूर्वक प्रमाणित होती है। इसे प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है।

जीवन का मूल्य प्रमाण

जीवन और शरीर का संयुक्त साकार रूप में प्रत्येक मनुष्य साकार है। जीवन का पहला प्रमाण शरीर को जीवन्त बनाये रखने के रूप में, दूसरा प्रमाण दर्शकता के रूप में स्पष्ट हो जाता है। ऐसा जीवन परिणाम का अमरत्व पद में संक्रमित वैभव है इसी के फलस्वरूप जीवन में अक्षय बल और अक्षय शक्तियां समाहित रहते हैं। फलस्वरूप उसकी निरन्तरता शाश्वत सत्य है। जीवन ही मूल्यों के

मूल्य

[illegible] होना और [illegible] पूर्ण मूल्य, जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य और वस्तु मूल्य (सुन्दरता कला और उपयोगिता मूल्य) के रूप में अध्ययन

गम्य है। ये सभी मूल्य जीवन का ही अभिव्यक्ति स्वरूप है। और इसके महिमा स्वंय अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था के रूप में व्यवहारित होना स्वाभाविक है। इस प्रकार जीवन में शक्ति और बल की अक्षयता स्वंय मूल्यों के निरन्तरता का धारक वाहक होना सहज है।

(जीवन के जागृति पूर्वक सम्पूर्ण मूल्यों के रूप में प्रमाणित / प्रमाणित होने का क्रम)

जीवन ही स्वंय जागृति पूर्वक सम्पूर्ण मूल्यों के रूप में प्रमाणित होता पाया जाता है। प्रमाणित करने के क्रम में अनन्त के साथ सहअस्तित्व, मानव तथा नैसर्गिकता के प्रति आशय (विश्वास) अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था के प्रति समाधान, उत्पादन और विनिमय में नियन्त्रण और सन्तुलन के रूप में सम्पूर्ण मूल्य प्रयोजित होते हैं इसके लिये निर्भ्रम अध्ययन परम्परा (शिक्षा, संस्कार परम्परा) फलस्वरूप प्रामाणिकता के आधार पर न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता और विनिमय सुलभता मानव में, से, के लिये नित्य स्वीकृत है।

(सम्पूर्ण मूल्यों का मूल स्वरूप, स्रोत, व प्रमाण जीवन है)

सम्पूर्ण मूल्यों का मूल स्वरूप है जीवन। सम्पूर्ण मूल्यों का स्रोत है जीवन। सम्पूर्ण मूल्यों का प्रमाण है जीवन। सम्पूर्ण मूल्यों का प्रयोजन है जीवन जागृति।

साधना :- [

अनुभव कर, अनुभव कराना देखकर, दिखाना	व्यवहार कर दिखाना व्यवहार व्यवस्था कर दिखाना	प्रयोग कर दिखाना
↓	↓	↓
अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति	सम्बन्धों का पहचान मूल्यों का निर्वाह व्यवस्था एवं व्यवस्था में भागीदार	व्यवसाय = उत्पादन = सामान्य आकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं + महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं का उत्पादन
जानना + मानना = अनुभव	पहचानना + निर्वाह करना = व्यवहार + व्यवसाय (उत्पादन)	प्रयोग में यान्त्रिक, तान्त्रिक ऊर्जा गति बल सम्बन्धी प्रयोग होते फलन व्यवहार और अनुभव में प्रमाणित सार्थक पाया जाता है)
आत्म भाव को समझके व अनुभव करना कहना जीवनगत क्रिया है।	व्यवहार और व्यवसाय करना कहना मे शरीर और जीवनगत अर्थात मानवगत क्रिया है।	

]

साधना, साधक और साध्य :→

साधना शब्द से सुधारने का अर्थ ध्वनित होता है। मनुष्य के अर्थ में सुधारने का सार्थकता -4 स्वरूप में प्रमाणित होता है।

(i) न्यायिक होना - यह सम्बन्धों और मूल्यों को पहचानने और ~~व्यवहार~~ निर्वाह करने के रूप में सार्वभौम व्यवहार प्रमाण होता है। जिसके आधार पर मानव परिवार ग्राम से विश्व तक अखण्ड समाज का रूप को प्रदान करता है।

(ii) दूसरा सुधरा हुआ का प्रमाण स्वंय में अर्थात प्रत्येक मनुष्य में नियमित (नियन्त्रित) और सन्तुलित होने के रूप में आचरण प्रमाण सार्वभौम होता है।

(नियमत्रय) नियन्त्रित होने का (सन्तुलित होने) तात्पर्य नियमत्रय जो बौद्धिक, सामाजिक और प्राकृतिक रूप में वर्तमान है, उसका पालन में है। बौद्धिक नियम- असंग्रह, स्नेह, विद्या (जीवन विद्या) सरलता और अभय बाकी मूल प्रवृत्तियों के रूप में नित्य सुखकारी होना प्रमाणित है। दूसरा सामाजिक नियम - स्वधन, स्वनारी / स्वपुरुष और दया पूर्ण कार्य व्यवहार विन्यास के रूप में होना पाया जाता है। यह प्रमाण आज मनुष्य के आचरण में देखने को मिलता है, मिलना सम्भव है और सम्पन्न होने के लिये बाध्य है। इसलिये साधना आवश्यक है।

प्राकृतिक नियम - मनुष्येतर प्रकृति मनुष्य के लिये नैसर्गिक है। और मनुष्य मनुष्येतर प्रकृति के लिये नैसर्गिक है। इनमें पूरकता विधि वर्तमान है। इसे पालन करना प्राकृतिक नियम है। इसे तीन प्रकार से प्रमाणित होती है।

पहला प्रत्येक धरती पर वर्षामान, तापमान व शीतमान उसी धरती पर निहित अथवा समृद्ध वनस्पति और खनिज के सन्तुलन में होना पाया जाता है। वह जीव और मनुष्य के लिये पोषक होना फलन है। ऐसे सन्तुलन को बनाये रखने के लिये जिस अनुपात में इस धरती की वनस्पति और खनिजों की सुरक्षा अनिवार्य है उसको बनाये रखकर अतिरिक्त अथवा अनावश्यक मात्राओं को उपयोग और सदुपयोग विधि से मानव मनुष्येतर प्रकृति को नैसर्गिक होने का सत्य में जागृत होने का प्रमाण प्रमाणित होता है।

जीवन जागृति की आकांक्षा / मनुष्य ही नैसर्गिक सम्बन्ध का पालन

दूसरा मनुष्य संस्कारानुषंगी इकाई होने के कारण से इसमें जीवन जागृति का अभिलाषा, अपेक्षा और सम्भावना सहज रूप में चीन्हित है। मनुष्य नैसर्गिक सम्बन्धों में जागृत होने की सम्भावना भी इसी में समाहित है। इसलिये मनुष्य अपने दायित्वों, कर्तव्यों, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में और अखण्ड समाज परम्परा को बनाये रखने के क्रम में नैसर्गिक सम्बन्ध को पहचानना और निर्वाह करना सहज है। फलत सन्तुलन अर्थात ऋतु सन्तुलन की निरन्तरता में भागीदारी मनुष्य के द्वारा निर्वाह होना स्पष्ट हो जाती है। अस्तु ऋतु सन्तुलन में मनुष्य पूरक होने के क्रम में इस धरती की खनिज और वनस्पतियों को सन्तुलित बनाये रखना, मानव सहज कर्तव्य होता है। यह अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था विधि से सर्वथा पालन हो पाती है।

विषम समाज में नैसर्गिकता नहीं

विषम समुदाय भोग अति भोग, संग्रह प्रणाली से और उपेक्षा, घृणा और अवमूल्यन विधि से नैसर्गिक सम्बन्धों का पालन करना सम्भव नहीं। इसके विपरीत इन नियमों को उल्लंघन करने के लिये विवश हो जाता है जिस को इस वर्तमान में देखा जाता है।

विषम मानव परम्परा से प्राकृतिक ऐश्वर्य क्षतिग्रस्त

तीसरा प्राकृतिक सन्तुलन के लिये पूरक होना। मनुष्य जागृत इकाई अथवा जागृत इकाई होने के लिये इच्छुक होने के कारण मनुष्य जागृति पूर्वक ही नैसर्गिक असन्तुलनों को सन्तुलन में लाने का प्रयास अथवा कर्तव्य को पूरा करने के रूप में मानव प्रस्तुत होता है अथवा प्रस्तुत होना अनिवार्य है। आज तक के इतिहास में इस धरती पर गुजरा हुआ मानव भिन्न-भिन्न समुदायों के चेतना में फसा व भ्रमित होकर फलस्वरूप असुरक्षा की पीड़ा से पीड़ित होकर उसके परिणाम स्वरूप नैसर्गिक अथवा प्राकृतिक ऐश्वर्य को क्षतिग्रस्त करना, सर्वाधिक संग्रह करना, जीने के क्रम में सामरिक क्षमता को बढ़ाना, शोषण करना, आतंक, द्रोह विद्रोह के चंगुल में सर्वाधिक लोगों को फंसा देने के रूप में समीक्षित है। इससे स्पष्ट हुआ कि प्राकृतिक ऐश्वर्य क्षतिग्रस्त हुआ। फलतः ऋतु असन्तुलन समीचीन होना ऐसा स्वरूप और इसकी

अव्यवस्था की समझ से पीड़ित होना तथा भी उसके निराकरण का आधार

मात्रा भी मनुष्य की समझ में आती है। उसका पीड़ा भी होती है। क्योंकि अव्यवस्था की समझ मानव जीवन सहज किया है। फलस्वरूप उससे पीड़ित होना भी उसके निराकरण के लिए आधार बन पाता है। इस विधि से मानव परम्परा ने जो भी क्षतिग्रस्त किया है उसका भरपाई मानव ही करेगा इस जिम्मेवारी को सादगी से स्वीकार करना ही ~~[illegible]~~ जैसे ~~[illegible]~~ प्राकृतिक नियमों को पालन करने का प्रवर्तन हो पाती है। तभी हम जो क्षतिग्रस्त और असन्तुलित वैसर्गिकता को समग्र उपाय पूर्वक भरपाई करने के लिए कार्य आरम्भ ~~कर~~ सकते हैं।

प्रदूषण के उपाय

उपाय का तात्पर्य ऊर्जा विज्ञान और प्रणाली के विकल्पों को खोजना। विकल्प का तात्पर्य खनिज तेल और कोयला के स्थान अन्य उपायों को खोजना। खनिज कोयला और तेल ही सर्वाधिक प्रदूषण का कारक तत्व ~~बैठ~~ बन बैठा है दूसरा घातक रासायनिक तरल विरल पदार्थों का अधिकाधिक मात्रा में तैयार करना और उसका उपयोग करना। तीसरा अन्य खनिज पदार्थ जो लोहा आदि है उसको अननुपाती विधि से उपयोग करना। चौथा वन वनस्पतियों को अननुपाती विधि विध्वंस और उपयोग करना। पाँचवें विकिरणीय द्रव्यों को अननुपाती विधि से उसका घातक (मनुष्य, जीव, वनस्पतियों ~~के~~ के लिए) प्रयोग करना और उपयोग करना। इन विधियों से हम जितने भी प्रयोग कर डाला वह भी असुरक्षा के भय से ही अधिक मात्रा से उपयोग किया, अल्प मात्रा से मनुष्य के हाथ, पैर, आंख, नाक

यन्त्रीकरण का तुच्छ लाभ

कानों से होने वाले क्रिया कलापों को गति देने के रूप में यन्त्रीकरण प्रक्रियाओं मानव सुलभ किया। इन सहज चित्रण से स्पष्ट हो गया कि ~~किन~~ -२ विधियों से हम मानव केवल समुदायगत चेतनावश

समुदायगत चेतनावश भ्रमित होकर अपनी कुण्ठा

भ्रमित होकर क्या-क्या कर डाले और उसका परिणाम क्या हुआ। उसमें से मानव कुल के लिए कितना अड़चन पैदा हुआ। कुल मिलाकर असुरक्षा के भय से ही ~~मूलतः~~ वह भी मनुष्य मनुष्य असुरक्षा के भय से ही सामरिक तन्त्रणा (मुद्रिक मानसा) उभरी। उसके लिए संग्रह अनिवार्य हो गया। फलतः विवशता ने घेर लिया। विवेक दब गया। ~~[illegible]~~ विवशता से मानव ने मानव के साथ, मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ अपराध परम्परा को अपना लिया। अब जब मानव कुल ही प्राकृतिक प्रकोप के कोप में दबने लगा तब थोड़ा सा विचार करने के लिए विवश होता आ रहा है। अभी भी

पतन की सीढ़ी उत्थान की दिशा से जुड़ी है।

सुधारने की सम्भावना बनी है। क्योंकि, ~~[illegible]~~ हर पतन की सीढ़ी उत्थान की दिशा से जुड़ी हुई मिलती है। अस्तु प्राकृतिक ऐश्वर्यों को जितने भी क्षतिग्रस्त किये हैं उस क्षति पूर्ति करने के लिए मानव

वर्तमान परिवेश में सर्वप्रथम कार्यक्रम

समग्र में निश्चित कार्यक्रम की आवश्यकता है। ऐसे कार्यक्रमों में सर्व प्रथम कार्यक्रम शिक्षा का मानवीयकरण, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था संविधान का मानवीयकरण और संस्कार परम्परा का मानवीयकरण। इसलिये कि प्रत्येक मनुष्य मानवीयता पूर्वक ही स्वायत्त व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होने के लिए अर्हता है। उसे उपर को शिक्षा, संस्कारों से उज्जवल बनाने की व्यवस्था है। फल स्वरूप अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था मानव सहज रूप में वैभवित होना समीचीन है। इसकी साकार सिद्धि से ही प्राकृतिक और नैसर्गिक और मानव में निहित अमानवीयता तथा जितने भी आयाम, कोण, दिशा परिप्रेक्ष्यों में किया गया क्षतियों को आपूर्ति किया जाना

उपलब्धि सहज है। इसी से जनराष्ट्रों में विप्लव और युद्ध, शोषण द्रोह, विद्रोह से मुक्ति और पर्यावरण संकट से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त होता है।

मानवीयता पूर्ण मानव परम्परा में सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज गति सहज है। इस क्रम में उसी का विकल्प भी सहज रूप में स्वीकार होता है। अस्तु - मानव मानवीयता पूर्वक ही नियंत्रित (नियमित) और सन्तुलित होना नियमत्रय के आधार पर स्पष्ट हुई।
~~जिसमें से नियमित होने का तौर स्वरूप को नियमत्रय पालन में बताई गई है।~~

सामाजिक नियम सन्तुलन बिन्दु जिसमें से सामाजिक नियम सन्तुलन का बिन्दु है। इसी में मूल्य, चरित्र और नैतिकता के रूप में आचरण सन्तुलन हो पाती है। मानव परम्परा का सन्तुलन बिन्दु यही है। इसी से समाज और सामाजिकता का अर्थ प्रतिपादित होना सहज हो जाता है।

मूल्य के सम्बन्ध में पहले विस्तार से चर्चा कर चुके है। चरित्र, कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत कारित के रूप में प्रमाणित होता है। चरित्र का प्रधान बिन्दु आहार, विहार, स्वास्थ्य संयम के रूप में गण्य होता है।

मानवीय आहार वनस्पति और खनिज जगत में श्रम नियोजन पूर्वक प्रतिफल के रूप में प्राप्त आहार के रूप में अन्न, औषधि प्राप्त होती है। इन अन्न औषधियों से मानव शरीर पोषण सहज है। वनस्पति और खनिज वस्तुओं के उपयोग विधि से शरीर संरक्षण के साधन उपलब्ध हो पाते है। यह आवास और अलंकार द्रव्य के रूप में गण्य होते है। मानवीय चरित्र में मूल्यों का अभिव्यक्ति सहज है। यह प्रधानतः मानव और जीवन मूल्य से सम्बन्ध रखते है। मानव चरित्र का ध्रुवीकरण इन्हीं मूल्यों के आधार पर प्रमाणित है। इसलिए मानव चरित्र जीवन मूल्य और मानव मूल्य की अभिव्यक्ति है। मूल्य - मूल्यों में से दो प्रकार की मूल्य चरितार्थ होने के अर्थ में मानवीय चरित्र चित्रित हो पाती है। यही संस्कृति और संस्कार का फलन है। इसी के आधार पर सभ्यता का फलन होना सहज है। इसी क्रम में

मूल्य - स्थापित मूल्य, और शिष्ट मूल्य और श्रम मूल्यों ~~का~~ उपयोगिता

मूल्य

मूल्यों की अभिव्यक्ति सम्प्रेषणा और प्रकाशन कार्य स्वयं मूल्य के अर्थ में नित्य गति है। यही पहले रूप में सम्बन्धों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह है। सम्बन्ध दो प्रकार से होते हैं। वह —

मानव सम्बन्ध और नैसर्गिक सम्बन्ध - मानव सम्बन्धों में ~~स्थापित मूल्य और शिष्ट मूल्य प्रमाणित होते हैं।~~ नैसर्गिक सम्बन्धों में ~~प्रेम~~ उपयोगिता मूल्य प्रमाणित हो पाते हैं। फलस्वरूप परिवार में समाधान समृद्धि, विश्व परिवार में समाधान, समृद्धि अभय, सहअस्तित्व सहज है। इस प्रकार मूल्यों का वैभव और उसका सार्थक रूप अखण्ड समाज के रूप में स्पष्ट हो जाता है। ~~नैतिकता~~

नैतिकता → मूलतः धर्म ~~नीति~~ नीति और राज्यनीति के नाम से इंगित होता है। जिसका सार्थक रूप मानव के ~~धन~~ तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा के रूप में प्रमाणित होता है। अर्थ का सदुपयोगात्मक क्रियाकलाप ही धर्मनीति और सुरक्षात्मक क्रिया कलाप ही राज्य नीति के नाम से जाना जाता है। यह अखण्ड समाज अर्थात परिवार समाज सार्वभौम व्यवस्था जो स्वराज्य के नाम से जाना जाता है वह स्वयं में प्रत्येक मनुष्य व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित हो जाती है। यही मानव में नैतिकता का तात्पर्य है।

मूल्य, चरित्र नैतिकता का वर्तमान = आचरण

इस प्रकार मूल्य चरित्र नैतिकता का वर्तमान ही आचरण के नाम से प्रतिष्ठित होता है। मनुष्य मानवीय आचरण के रूप में ही प्रतिष्ठा सम्पन्न हो पाता है। अमानवीय आचरण को स्वयं मनुष्य भी पतन का स्वरूप स्वीकारता है। यह परम्परा में और ~~...~~ के में होने वाली निरीक्षण क्रिया का अभिव्यक्ति है। प्रत्येक मनुष्य जीवन जागृति क्रम में होने के कारण परीक्षण, निरीक्षण सर्वेक्षण सहज है। इसी क्रम में मानवीय आचरण पूर्वक ही प्रत्येक मनुष्य सामाजिक होना प्रमाणित होती है। अमानवीयता पूर्वक किया गया आचरण/कार्य असामाजिक होता है।

मानवीय आचरण सुखकारी

अमानवीय आचरण से असामाजिक

(iii) तीसरा समाधान :— मानव के सर्वेक्षण से पता लगता है कि प्रत्येक मनुष्य समाधान को वरता है अर्थात स्वीकारता है और समस्या को नहीं स्वीकारता। इस आधार से और आगे परीक्षण निरीक्षण करने पर मनुष्य अपना सम्पूर्ण मनुष्य सुख धर्मी है। ~~सम्पूर्ण सुख – सुख शान्ति, सन्तोष और आनन्द के रूप में~~ ~~आकर में और~~ ~~मानव परम्परा में ही प्रमाणित होना समीचीन है।~~ जिसमें से समाधान नित्य सुख का स्रोत है। क्योंकि समाधान सर्वतोमुखी वैभव है। मानव के जितने भी दिशा, कोण, आयाम परिप्रेक्ष्यों में समाधान निपति सहज है। निपति का तात्पर्य विकास और जागृति से है। सुख की पराकाष्ठा शान्ति, शान्ति की उत्कृष्टता सन्तोष, सन्तोष की पराकाष्ठा आनन्द के रूप में मानव अनुभव करता है। यह ~~...~~

रूप में ~~...~~ मानव ~~...~~ मनुष्य स्वयं व्यवस्था।

और समग्र व्यवस्था में भागीदारी रूपी समाधान अथवा सर्वतोमुखी समाधान और जीवन जागृति व प्रमाणिकता रूपी प्रमाण के रूप में चरितार्थ ~~होने~~ (सार्थक) होता पाया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण सुखों का प्रमाण सहित जीने की कला के सन्दर्भ में ही अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान (विश्व दृष्टिकोण), विज्ञान व विवेक सम्मत तर्क संगत शैली और मानवत्व सहित जीने की कला अनन्त शील अर्थ चिन्तन और कार्य ये सम्पूर्ण सुखों को मानव में प्रमाणित होने का ~~सम्भावित है~~। ~~इस क्रम में~~ सहज हैं।

यानि क्रिया रूप (मानवीय समाज न्याय, मानव सन्तुलन, नियन्त्रण (आचरण), और सर्वतोमुखी समाधान और प्रमाणिकता

सर्वतोमुखी समाधान, परिवार से ग्राम विश्व परिवार तक की समाधान की आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य स्पष्ट होते है। इसी में सर्वतोमुखी समाधान का स्थिति और गति परिवार मूलक स्वराज्य योजना के रूप में आपके सम्मुख है। सम्पूर्ण मानव मात्र सहज, सन्तुलन वा नियन्त्रण सहज, सर्वतोमुखी समाधान सहज रूप में जीने की कला को विकसित करना ही परिवार मूलक स्वराज्य योजना का अभिष्ट है। ऐसी स्वराज्य योजना का क्रियान्वयन से ही सर्वतोमुखी समाधान सर्व सुलभ होने की और व्यवस्था समीचीन है।

(समाधान परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में)

मानव के सन्दर्भ में वर्तमान में विश्वास व्यवस्था अपने स्वरूप में मानव परम्परा में शिक्षा संस्कार, संविधान और राज्य व्यवस्था ~~..~~ प्रभावशील है। इनमें से राज्य शासन वर्तमान में प्रभावशील है अविभाज्य वर्तमान है। इनमें से राज्य शासन वर्तमान में प्रभावशील है जबकि परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था अथवा गणतान्त्रिक राज्य में व्यवस्था हो पायेगी, शासन नहीं पाये गी। इसके लिए मानवीय कृत शिक्षा संस्कार, मानवीयता आचार संहिता रूपी संविधान और मानवीयता पूर्ण परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था स्वयं गणतान्त्रिक ~~अभिप्सा~~ अर्थात उसका शुभेच्छा मानव का चिरआकांक्षी शुभेच्छा आदर्शवाद का कल्याण अपेक्षा भौतिकवाद का सन्तुलन अपेक्षा अभी तक जो परामूत है वह सब परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में साकार होने, सार्थक होने और उसकी निरन्तरता होने की सम्भावना सहित प्रस्तुत हुआ है। इस प्रकार इसे साकार रूप देना ही सर्वतोमुखी समाधान का सहज कार्यक्रम है।

(मानव परम्परा में विश्वास है व्यवस्था)

(आदर्शवाद की कल्याण व भौतिकवाद की सन्तुलन अपेक्षा)

(अभीप्सा = अभ्युदय की इच्छा)
कल्याणपेक्षा = सभी का शुभ चाही, परमार्थी, और पाप मुक्त अथवा पुण्यशील होने की कामना।
सन्तुलन = आर्थिक सन्तुलन,

(iv) प्रमाणीकता :— प्रमाणीक होना प्रत्येक मनुष्य का इच्छा है। यह जीवन जागृति क्रम में सहज उपलब्धि है अथवा गन्तव्य स्थली है। क्योंकि जागृति पूर्वक ही प्रत्येक मनुष्य - जानने, मानने

पहचानने, निर्वाह करने की क्रिया कलापों को अर्हविशी कार्य करता है)

विद्रोही — जानते हुए न मानने की स्थिति में शरारती अथवा विद्रोही के रूप में मूल्यांकित होता है। और मानते हुए न जानने की स्थिति में रूढ़िवादी के रूप में

रूढ़िवादी — मूल्यांकित होता है। पहचानते हुए निर्वाह न करने की स्थिति में उपेक्षा, घृणा, ~~निरसहायता~~ निरसहायता के रूप में मूल्यांकित

उपेक्षा, घृणा निरसहायता — होता है। निर्वाह करते हुए न पहचानने की स्थिति में मूर्खता और दासता के रूप में मूल्यांकित होता है। (हरि शरणम् भव तरणम्)

मूर्खता व दासता — ये सब अल्प जागृति का द्योतक होते हैं, जिन-इनको जानता भी न हो, मानता भी न हो, पहचानता भी न हो, निर्वाह करता भी न हो यह अजागृति के रूप में मूल्यांकित होती है।

जानने मानने की वस्तु — जागृति का स्वरूप मानव परम्परा में जानने, मानने, उसका अभिव्यक्ति सम्प्रेषणा और प्रकाशन के रूप में साक्ष्य होता है। यही यह जागृति और उसका प्रमाण है। यही अनुभव और उसका प्रमाण है। ऐसे जानने, मानने के लिए सम्पूर्ण वस्तु, अस्तित्व, अस्तित्व ही सह-अस्तित्व में विकास, अ० में जीवन, अ० में जीवन जागृति और रासायनिक भौतिक रचना विरचनाएं हैं। पहचानने निर्वाह करने के लिए

पहचानने निर्वाह करने की वस्तु — सम्पूर्ण वस्तुएं मानव सम्बन्ध, नैसर्गिक सम्बन्ध और उनमें निहित ~~स्वरूप~~ अथवा निर्देशित मूल्यों के रूप में है।

इस प्रकार मानव में जागृति का सहज प्रमाण उक्त दो स्वरूप में निरन्तर प्रमाणित होता है। ऐसा प्रमाणित होने के लिए मानव परम्परा का सहज मूल्यांकन हो पाता है। परम्परा का स्वरूप पहले ही इंगित हो चुकी है। अस्तु प्रमाणिकता का स्रोत, प्रथमतः शिक्षा, संस्कार, है। उसके सहायक स्रोत परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है जिसमें प्रमाणित होने का निपुणता मानव उदय शील रहता है। ~~जिससे~~ दूसरा सहायक स्रोत मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान है

मानवीयतापूर्ण आचार संहिता रूपी संविधान — जो मूल्यों को मूल्यांकित करने का विधि है और गलती और अपराधों को सुधारने का सूत्र है।

280492 साधना के अभीष्ट के सम्बन्ध में उपर सामान्य रूप में जिज्ञासा व उद्देश्य के लिए कुछ आवश्यकीय बिन्दुओं को इंगित कराया है। साधना जिज्ञासा या उद्देश्यों के आधार पर ही दिशा और कार्य निश्चित होता पाया जाता है। सार्थकता के अर्थ में उद्देश्य अथवा लक्ष्य का होना अनिवार्य है। लक्ष्य, उद्देश्य और प्रयोजन में प्रमाणित होना ही साधना क्रम का सफलता है।

~~इस विधि में भी साध~~

साधक :→ अस्तित्व में निरीक्षण, परीक्षण व सर्वेक्षण पूर्वक प्रमाणित करने की स्थिति में मानव कुल ही परम लक्ष्य, परम प्रयोजन परम उद्देश्य को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने योग्य है।

प्रत्येक मनुष्य साधक होने योग्य

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य साधक होने योग्य है। साधना सउद्देश्य पूर्वक से सफल होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। मानव परम्परा में मूल उद्देश्य मानवता को जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करना है। मानवता से ओतप्रोत मानव परम्परा में ही अतिमानवीयता अर्थात देव मानव, दिव्य मानव पदों में विकसित होने और संक्रमित होने का अथवा जागृत होने तथा संक्रमित होने का आधार और दिशा मानवता के आधार पर ही होना पाया जाता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ मानवीयता से परिपूर्ण मनुष्य ही साधक होने की अर्हता को प्रमाणित करता है। मानवीयता मानव के लिए स्वत्व, स्वतन्त्रता और अधिकार के रूप में प्राप्त जागृति है, अथवा समीचीन है। मानव मानवता के लिए व्यथित है ही। इतना ही नहीं मानव मानवीयता पूर्वक ही व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करता है। व्यवस्था की अभीप्सा प्रत्येक मनुष्य में होना प्रमाणित है। भले ही प्रत्येक व्यक्ति सार्वभौम व्यवस्था के प्रति जागृत ना हो। जागृति का सूत्र प्रत्येक मनुष्य में समाहित है ही। उसको व्यवस्था की अपेक्षा और इच्छा के रूप में दिखाई पड़ती है। शैशव काल से भी न्याय की अपेक्षा, सही करने की इच्छा, सत्य बोलने की सहज प्रवृत्ति सहज ही स्पष्ट है। अबाल वृद्ध मनुष्य अव्यवस्था की समस्या से पीड़ित होना सर्वविदित तथ्य है। इस आधार पर मनुष्य सर्वतोमुखी समाधान के लिए साधक होना मानव सहज प्रवृत्ति है। इसे प्रमाणित करने के लिए प्रामाणिक होना एक अनिवार्य शर्त है। इस प्रकार सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता ही प्रधान उद्देश्य है। इसके प्रति तीव्र जिज्ञासा ही साधक की अर्हता को प्रमाणित करता है।

मानव मानवीयता के लिए

शैशव काल में ही

साध्य :→ साधना जब सउद्देश्य होती है साधना की गति निश्चित दिशा (उद्देश्य की दिशा में) गतिशील रहता है तब गम्य स्थली गामी हो जाती है। इस विधि से लक्ष्य तक पहुँचना (साध्य) सहज सुलभ होता है। मानव सहज साध्य वस्तु जीवन जागृति प्रामाणिकता समाधान, समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व है।

साधक, साधना साध्य का सार्थीकरण व्यवहार प्रमाणों

मानव सहज साध्य के लिए सम्पूर्ण साधना, अभ्यास और प्रयोग अर्पित होना अनिवार्य है। फलस्वरूप व्यवहार प्रमाण सहज सुलभ हो जाते हैं। प्रयोग और व्यवहार व्यवहार प्रमाण में ही अनुभव साबित होना आवश्यक है। प्रयोग और व्यवहार प्रमाण में उतना ही अपरिहार्य है। इससे स्पष्ट हो गया कि मनुष्य से सम्पन्न होने वाले प्रयोग, व्यवहार, विचार, अनुभव होते हुए इसका साक्षी स्थली व्यवहार ही है। इस प्रकार प्रयोग, विचार और अनुभव व्यवहार में प्रमाणित या साबित होना ही मानव परम्परा का महिमा है यह न हो पाना ही सम्पूर्ण मत भेद का आधार है। साधना, साधक साध्य का संगीतीकरण व्यवहार प्रमाण में ही होता है। व्यवहार अथवा मानव का सम्पूर्ण व्यवहार सार्वभौम व्यवस्था में भागीदार और स्वयं में व्यवस्था के रूप में तथा अखण्ड समाज / परिवार मूलक अखण्ड समाज में

परम साध्य

में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होता है। अस्तु मानव का
परमसाध्य जीवन जागृति जो स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होता
है। दूसरा सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होता है। तीसरा
अखण्ड समाज के रूप में प्रमाणित होता है। चौथा- इसके फलस्वरूप
समाधान, समृद्धि, अभय सहअस्तित्व सहज सुलभ होते हुए
समाज न्याय / मानव न्याय सर्व सुलभ होता है। यही मानव का सम्पूर्ण
साध्य वस्तु है।

अस्तित्व में अनुभव स्वयं प्रमाणिकता को प्रकाशित
करता है। अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व में ही विकास, जीवन,
जीवन जागृति और रासायनिक भौतिक रचना विरचनाओं
को जानने, मानने, पहचानने निर्वाह करने के फलस्वरूप सार्वभौम
व्यवस्था अखण्ड समाज ~~मानव न्याय / समाज न्याय~~ सहज
सुलभ हो जाता है। इस प्रकार साधना का सम्पूर्ण प्रयोजन स्पष्ट हो जाती
है।

~~विगत की समीक्षा~~ :- विगत में आदर्शवादी विचार (धारा में रहस्यमूलक ईश्वर
केन्द्रित चिन्तन ज्ञान को व्याख्यायित करने के रूप में आया)

5, आदर्शवाद

यह अपने चरमोत्कर्ष साधना के फल में मोक्ष, ईश्वरानुभूति
आत्मानुभूति, सत्यानुभूति आदि नाम दिया। मूलतः अनुभूति
व्यवहार में प्रमाणित न होने के लिए कहा। यही उसका कुण्ठा और
पराभव का कारण रहा है। इस प्रकार कुण्ठा वैराग्य ~~के प्रचार के प्रसार~~
अथवा भुलावा देने के क्रम में पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, भय और प्रलोभन
चार वर्ण, चार आश्रम के योगफल में धर्मशास्त्रों की रचना
मनीषियों ने किया। अन्य देशों में भी स्वर्ग-नरक, पाप पुण्य
भय-प्रलोभन किसी ~~जाति~~ एक जाति अथवा एक से अधिक
जातियों का योगफल में धर्मशास्त्र इस धरती पर जितने भी रचित
हुए हैं उन सब का आधार यही रहा है। प्रधानतः पाप और नरक से
भय, पुण्य और स्वर्ग से प्रलोभन सम्पूर्ण परिकथाओं, कथाओं
का और काव्यों का धुरी रहा। इसी आधार पर मानव में भय
और प्रलोभन पनपती आयी। इसी भय और प्रलोभन को राजदण्ड
28. और राज्य व्यवस्था का आधार माना गया। जबकि अस्तित्व में भय और
प्रलोभन का सत्ता नहीं है। इससे पता लगता है इस सदी (बीसवीं) के
दसवीं दशक तक मानव परम्परा ने क्या किया?

धार्मिक कार्यक्रम

आदर्शवादी बोधि से जितने भी धर्म मत, पंथ, सम्प्रदाय परम्पराओं
का गद्दियां स्थापित हुई। उन सब में मान्यताएं यह रहा मनुष्य
मूलतः पापी, अज्ञानी और स्वार्थी होना मानकर सार
सम्पूर्ण धार्मिक कार्यक्रमों को स्थापित कर लिए। इन सभी
कार्यक्रमों का उद्देश्य पापियों को तारना है, इसके लिए एक विशद
... अज्ञानियों को ज्ञानी, स्वार्थियों को परमार्थी और

कार्यक्रमों को फैला दिया। इसकी सार्थकता का मापदण्ड इस विधि के साथ आस्था रखने वालों की संख्या पर आधारित रही। इसी को सफलता का मापदण्ड मानते आये। यहां तक ध्यान देने की बात यह रही कि एक भी आदमी पापमुक्त हुआ, अज्ञान मुक्त हुआ, स्वार्थमुक्त हुआ ऐसा प्रमाण ~~मिला~~ किसी ने प्रस्तुत नहीं किया।

अवतार

इसके साथ बहुत लोग स्वार्थ, पाप, अज्ञान मुक्त मनुष्य रूप में अथवा अवतार के रूप में अथवा देवदूत के रूप में मानते हैं। यह मान्यताएं राजगद्दियों में भी अपने-अपने ढंग से मान्यताओं के रूप में यथा विभिन्न करते आये। ये तालमेल जब तक बना रहा तब तक इसे धार्मिक राजनीति का नाम देते रहे। जब राजगद्दियां प्रधानतः व्यापार पर आधारित हुई तब विवाद उसका आधार रहा अथवा वर्ग संघर्ष रहा जिसको आर्थिक राजनीति के नाम से जाना गया। दोनों स्थिति में भय और प्रलोभन के आधार पर ही सभी धर्म संविधान और राज्य संविधान स्थापित रहे। और अभी भी वर्तमान है। भय और प्रलोभन की अंतिम ~~परिणाम~~ परिणति बल प्रयोग अथवा अपराध का अपराध से प्रतिकार का नाम देते आये। इसी को दण्ड भी कहा।

(राजगद्दी धर्मगद्दी में तालमेल)

पापियों को तारने के लिए दयालु, कृपालु, करुणामय परमात्मा, ईश्वर देवी देवता गुरु देवदूत अवतारित पुरुषों को ~~व्यक्तियों~~ समर्थ ठहराया गया। धार्मिक इतिहास के अनुसार सर्वाधिक अवतारी देवदूत (ईश्वर का प्रतिनिधि) शरीर यात्रा को समाप्त करने के बाद पूजा योग्य हुए। ऐसे व्यक्तियों ऊपर कोई दया कृपा, करुणा सम्पन्न रहने का आस्था स्थापित किये। उन आस्थाओं के आधार पर पापियों को तारने की तरीकाएं, पापस्वीकृति, नम्र समर्पण ~~विधियों से~~ पूजा, प्रार्थनाओं से पाप से मुक्त होने को, दान और तप से यज्ञ से पाप से मुक्त होने का भरोसा दिलाये। साथ ही स्वर्ग मिलने का आश्वासन दिये। स्वर्ग में तमाम सुविधा भोग की परिकल्पना दी। सामान्य मनुष्य प्रलोभित होना सहज रहा। प्रलोभनवश ईश्वर (पुजारी) का स्थापना होती आयी। इस प्रकार की स्थापना के आधार पर कोई न आशी, प्रसाद से (कुछ खाने पीने को मिलने से) तीर्थ स्नान से, उपदेशों से, पुण्य कथाओं के श्रवण से (जो अवतारी देव प्रतिनिधि और सिद्ध पुरुषों की जीवन गाथा) पाप मुक्ति, फलतः आरोग्य और परमार्थी होने की भरोसा दिलाया। यह पूर्णतया धर्म तन्त्र की प्रचारिक कुशलता रही है।

(धार्मिक कार्यक्रम)

पुण्य का कार्यक्रम

अब प्रकारान्तर से तप, दान, त्याग, यज्ञ परोपकार पुण्य का आधार माना गया। सारा दान का केन्द्र अथवा दान ग्रहण का केन्द्र सम्पूर्ण धर्म गद्दियां अपने रूप में उभरी, संग्रह का स्थान बनी। फलतः अविध के रूप में नहीं। धर्म गद्दी के ~~अनुयायी~~ प्रतिष्ठित अनुयायी पुजारी और प्रचारक के रूप में भी रहे। ये भी दान ग्रहण करने के योग्य भी ~~किये गये~~। ~~परमात्म~~ परमात्मा का प्रतीक में अथवा प्रभाव के

धर्म और परोपकार को पहचाना गया। जातियों के रूप में जैसे-२ धर्मों के अनुयायी हुए जैसा आत्म धर्म के अनुयायी, ईसा धर्म के अनुयायी मूसा धर्म के अनुयायी, कबीर पन्थ के अनुयायी, सिक्ख पन्थ के अनुयायी मुडियाआदि (धर्मगत) (कई तरह आदिवासी आदि) के अनुयायी, गौण्ड जाति के अनुयायी, इसी प्रकार से जैन, बौद्ध धर्म के अनुयायी, और भी जितने मत पन्त परम्परा सम्प्रदाय परम्परा (जैन श्वे. दिगम्बर) के अनुयायी को उन-उनके पन्थ, धर्मों में आस्था उत्पन्न करने के लिए, साथ ही अज्ञान, पाप और स्वार्थ से मुक्ति दिलाने के लिए जो-२ कार्यक्रम समय के अनुसार परिवर्धित होती गयीं, मूलतः संस्थापकों ने जो रूपरेखा देकर गये जिनको आचार संहिता, और संस्कार परम्परा कह सकते है, उन-२ के शिष्यानुमोदन को बनाये रखने के लिए पुजारी, पीठाधीश, ~~विद्वान~~ विद्वानों का होना पाया जाता है। उनका प्रचार कार्य उन-२ धर्म, मत, सम्प्रदाय, पन्थ में आस्था को सुदृढ़ करना, श्रेष्ठ बताना अन्य के प्रति घृणा पैदा करना अथवा द्वेष पैदा करना महत्वकार्य अथवा पवित्र कार्य मानकर इस धरती पर धर्म संविधानों का निर्वाह होता आया। इसमें कहीं सर्वमान्य धर्म को पहचानने का विधि और सही के दर्शन दर्शनतत्व निकल नहीं आया।

आर्थिक राजनीति में धन केन्द्र

किसी भी देश के लिए संस्कृति का आधार बना रहा। वह उपरोक्त विविध धर्म, मत, जाति, पन्थ, रंग परम्परा के आधार पर पहचाना जाता रहा। उसमें भाषा भी एक प्रमुख मुद्दा बना रहा। इन्ही के आधार पर देश को अथवा राष्ट्र को पहचानने की बात सोची गयी। अन्ततोगत्वा, आर्थिक राजनीति के प्रभाव में धन को केन्द्र में रखकर सम्पूर्ण व्यवस्था को सोचा गया। इस विधि से

अपराधी होने की सम्भावना

देशवासियों को अपराधी होने की सम्भावनाओं को स्वीकार उसके लिए दण्ड विधानों को विविध प्रकार से प्रस्तावित कर लिया। बल और दर्प (दर्प = अर्थात हिंसक बल और हिंसा का प्रतिरोध करने वाला सही होने की दृढ़ मान्यता के आधार जैसे आजीवन कारावास, फांसी इत्यादि दण्ड के आधार पर दण्ड प्रक्रिया को सम्पन्न करते हैं)

दर्प

अपराधी भी अपराध करते समय में और कभी कभी लोग इसी दर्प से अपराध कर पाता है। जब वह उसका दर्प भंग हो जाता है तब वह अपराधी के रूप में हो जाता है। इतना ही नहीं पड़ोसी देशों को शत्रु मानकर के हर देश अपने संविधान का गठन कर रखता है। इस प्रकार राजतन्त्र, धर्मतन्त्र दोनों में परस्पर देश, जाति, धर्म, आदि ~~इन्हीं कारण~~ के नाम में विरोध का प्रचार सहज होते आया। ~~इन्हीं कारण~~ किसी न किसी परिवार, जाति अतः इन्हीं कारणों वश मानव किसी न किसी परिवार, जाति है

मानव परम्परा की कठिनाई

धर्म, मत सम्प्रदाय और देश में अपने होने सहज रहता है और जन्म से यह न्याय का याचक, सही करने का इच्छुक और सत्य वक्ता होते हुए राज्य में, [illegible] आदि के चंगुल में फंसकर

जन्म सहज आशिष्ट तानों में रह जाता है। वह स्वयं [illegible] परम्परा के परिवार में अर्पित रहता है उसी आधार में वह स्वयं हो जाता है। यह मानव कृत वातावरण का प्रमाण है।

राज्य धर्मतन्त्र वर्ग समुदायगत चेतना द्वैत को पैदा किया

इस प्रकार राज्य तन्त्र और धर्म तन्त्र यह दोनों वर्ग समुदाय गत चेतना से अर्थात पहचान से प्रेरित रहा है। जिस समुदाय के लिए जो धर्म और राज्य तन्त्र काम करता रहा वह उसी समुदाय की हितों की रक्षा करने, शान्ति बनाए रखने, सब लोगों को खुशहाल करने के आश्वासनों के साथ राज्य गद्दी ईश्वर कृपा, ईश्वरानुग्रह पूर्वक ज्ञानी, परमार्थी, और पाप मुक्ति को सुलभ कराने की आश्वासन के साथ किसी समुदाय को आश्वासन देते आये। आज भी इसका प्रमाण इस धरती की सभी देशों और समुदायों में प्रमाणित होती है।

साधक, साध्य एवं साधना का फलन

साधना, साधक और साध्य के रूप में जागृत मनुष्य, जागृत परिवार, जागृत मानव को पहचानने, साधक को साधना को मानवीय लक्ष्यों के अर्थ में सार्थक होने की बात स्पष्ट की। साथ ही मानवीयता ही मानव का मूल लक्ष्य, साधक को लक्ष्य का धारक (परम लक्ष्य) होना स्पष्ट किया। साधक को सभी विधि वाहक के रूप में मानव को पहचानने को मानवीयता के आधार पर ही मनुष्य को स्पष्ट किया। साथ ही साधक का सहज महिमा होना बताया। को पहचानने की प्रमाण मानवीयता के आधार साध्य के सम्बन्ध में मानव परम्परा के लिए, समग्र व्यवस्था में भागीदार पर प्रत्येक मनुष्य एक व्यवस्था और मानव कुल के लिए परिवार होने का सत्य को स्पष्ट करते हुए और मूल्य मूलक परिवार और मूलक स्वराज्य, सम्बन्धों और तथ्यों को स्पष्ट किया। साथ समाज रूप सार्वभौम होने की अनुभव मूलक प्रणाली से ही इस बात पर बल दिया गया मानव, इकाई के रूप में जीने की कला को विकसित करने वाली होने के कारण वह प्रतिपादन किया। मानव सुख धर्मी होने के विधि को स्पष्ट कर मानव में सार्वभौम धर्म पहचानने की जागृति दिया। सम्पूर्ण मनुष्य साधक है, उसका साध्य जागृति है। समाधान मानव धर्म है। समाधान और सर्वतोमुखी समाधान है। समाधान पूर्वक ही सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज मानव परम्परा का वैभव होना समीचीन है। जीवन जागृति सत्य में अनुभव है। और इसका अभिव्यक्ति है प्रमाण। यही जीवन जागृति स्वानुशासन और स्वतन्त्रता के रूप में नित्य वैभव है। साथ ही सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के लिए प्रेरणा स्रोत है। यह सब

मानवीयतापूर्ण परम्परा में अर्पित प्रत्येक मनुष्य एक ही शरीर यात्रा में जीवन जागृति लक्ष्य मार्ग प्रशस्त रहने का प्रमाण होगी।

290492

विगत की साधना विधियां

साधना विधि - ईश्वर, देवी, देवता, आत्मा, चित्त और बुद्धि के आधार पर साधना विधियों को विगत ने पहचानने का प्रयास किया। इसको ज्ञानयोग, भक्ति योग, कर्मयोग, ध्यान योग, अष्टांगयोग, राजयोग, सांख्य योग, चित्त योग, हठ योग, क्रिया योग, बुद्धि योग, आदि को मन्त्र, तप (कायिक, वाचिक, मानसिक) पूर्वक सफल होने का आश्वासन दिये हैं। इसी में मन्त्र, यन्त्र के साथ तन्त्र और यन्त्रों को समावेश किया।

मौलिकता — इस धरती पर विविध जलवायु में विविध मानसिकता के साथ साधना विधियों को विविध प्रकार से अनुसंधान किया। इस सब का मार्मिक एक बिन्दु है विविध आयामों में बहती हुई मन को, आत्मस्थ बुद्धिस्थ अथवा चित्तस्थ करने की बात कहते हैं। इस के लिए क्रिया योग वाले कहते हैं कि किसी के अनुग्रह, संयोग से मन आत्मस्थ होते ही उसमें साधना की कर्तृत्व की आवश्यकता को अनुकूल किया जाता है। इसमें क्रियायोग (कुण्डलिनी योग)

हठ योग — वाले कहते हैं तप और शारीरिक क्रियाएं कर्तृत्व के रूप में करना ही होगा। तप के साथ हठ की आवश्यकता है। इसलिए इसे हठ योग का नाम दिया। फलस्वरूप कुण्डलिनी जागृत हो जायेगी। मन आत्मस्थ हो जायेगा। इसमें हठ कर्तृत्व को प्रधान रूप बताते हैं। इन परिणामों को अपनी कुण्डलिनी जागरण को निश्चित होने की बात करते हैं। इसमें कर्तृत्व का अधिकतम समावेश हो जाता है।

बुद्धि योग :- बुद्धियोग वाले यह कहते हैं कि परमसत्य है। बोध के स्वभाव का प्रकोप पर ... सत्यबोध। सत्यबोध शून्य बोध व आत्म अनुभूति कहते हैं। इसके आगे कहे हुए सत्यबोध या शून्यबोध आत्मबोध का पर्याय पूर्ण मोक्ष ही माना गया है। आत्मस्थ मन अथवा सत्यबोध, आत्मबोध समाधि मान माना है। कर्तापद को ही मनुष्य बुद्धि योग में कर्तृत्व की अनुकूलता हुआ है। इस में ... को हेय नहीं स्वीकारा गया। यह राजयोगवालों के साथ है। हठ योगियों का कर्तृत्व के साथ तपश्चर्या स्वीकारने की बात कहते हैं।

चित्तयोग :- चित्तयोग वाले चित्त को परम विशाल मानते हैं। इसी में समाधि लाभ करने की बात करते हैं। इसी में आनन्द का वास है। इन मान्यताओं के आधार पर चिदाकाश में आनन्दानुभव ... परम उपलब्धि अथवा निर्वाण माना जाता है। इसमें

... को आत्मा का अनुभव ... । इनको ...

चित्त में रखा जाता है।

सांख्य योग :- सांख्य योग उसको कहते हैं जिस विधि से मूल तत्व अनेक तत्वों के रूप में विभक्त हुआ उसके विपरीत पद्धति से पुनः मूल तत्व में पहुँचना रह गया है। मूल तत्व को प्रकाश मानते हैं। साथ ही प्रकाश व प्रकृति के मिलन को अविवेक पूर्ण बताते हैं। इस विधि से भी गम आत्मस्थ होने की बात कहते हैं। इसमें विशेष कर चित्त और बुद्धि का अवमूल्यन होता है।

इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति

राज योग :- राजयोग प्रधानतः के जागरण से सम्बन्धित है। उसके पूर्व की भूमि में यम नियमों को स्वीकारते हैं। को मान लेते हैं। अष्टांग योग के सदृश प्राणायाम को ध्यान क्रिया और यह राजयोग जागृति के प्रयास में होते हुए इसमें ध्यान क्रिया और विधि को ही अपनाता है। क्रिया शक्ति को शरीर में ज्ञान शक्ति को आत्मा में और इच्छा शक्ति को चित्त में होने वाली सिद्धि और विधि होने के कारण वैभव बताते हैं। इसका विधि और सिद्धि इस प्रकार राजयोग इसका प्रमाण पुनः नहीं देखा पाया गया। क्रिया शक्ति को जागृति का आधार में शरीर का आधे मूल्यन शरीर जागृत के कारण है।

अष्टांग योग :- अष्टांग योग का परम लक्ष्य समाधि है। उसके लिए ८वें सोपान में समाधि बताया गया। समाधि चार सोपानों को ० सोपान बताये गये। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधी ४ मानसिकता के आधार पर। मानसिकता और शरीर के अन्तरंग योग बताया। बहिरंग योग का बताते हुए इसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम बताते हुए अपना। निर्विकल्प संयोग में नाम दिया। इसका सम्प्रज्ञात निर्बीज सम्प्रज्ञ अपना। निर्बीज समाधी माना गया। सम्यक विवेक, ऋतम्भरा निर्विकल्प समाधी की बात कहा। इसी को कैवल्य स्थिति प्रज्ञा का उदय होने की बात। प्रज्ञाप्रकाश होने की सम्भावना बताया है। इसका प्रमाण पूछने पर अनिर्वचनीय बताते हैं और समाधी का प्रमाण लोकेतर बताते हैं। आत्मस्थ होने की बात मानते हैं। समाधि की स्थिति में इसमें चित्त और बुद्धि का अवमूल्यन होता पाया जाता है।

ध्यान योग :- ध्यानयोग में मूलतः एक ध्येय वस्तु को पहचानना आवश्यक बताते हुए किसी देवी, देवता का नाम देते हैं। ऐसे नाम को मन्त्र कहा करते हैं। ऐसे देवी देवता का रूप का कल्पना की जाती है। अथवा मन्त्र के अर्थ में अपना नाम के अर्थ में कोई स्वरूप की परिकल्पना की जाती है। उसी रूप में तदाकार वृत्ति को पाने के क्रम में ध्यान क्रिया को कहते हैं। यह अन्तरंग साधना कहलाता है। इसका परम उपलब्धि इष्ट देवी देवताओं के रूप में प्रत्यक्ष

मन्त्र एवं देवी देवता को ध्येय

प्रकार के योगनिद्रा के पश्चात कुण्ठा और निराशा के रूप में ही होता है
फलतः वह भटकाव के रूप में प्रभावित हो जाता है।
वैदिक विचारों के अनुसार कर्म वह जिसका फल अथवा
परिणाम स्वर्ग और स्वर्ग में अनेकानेक उत्तम भोगों के रूप में बताया
जाती है। इस धरती के समस्त संविधान भी इसी के
पक्षधर है। सम्पूर्ण संविधान पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, भय
और प्रलोभन से लिप्त है। इससे पता लगता है कि समस्त
धर्म संविधान पाप और नरक के प्रति भय, पुण्य और स्वर्ग
के प्रति प्रलोभन को स्थापित करना ही उद्देश्य माना करते हैं।
कर्म योग में निश्चित शारीरिक क्रिया कलापों के आधार
पर परम पद को पाने के बारे में अपेक्षित मन - आत्मस्थ होने
के बारे में भी मान्यता व्यक्त करते हैं जबकि मनुष्य का
निरीक्षण-परीक्षण से यह पता लगता है कि
मनुष्य कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत कारित व अनुमोदित
भेदों से नौ प्रकार से कर्म करना पाया जाता है। इन्हीं नौ
प्रकार के कर्म प्रत्येक मनुष्य में अविभाज्य रूप में वर्तमान है।
इस प्रकार कर्म योग का सामान्य स्वरूप समझ में आता है। कर्म
योग के अर्थ में ये भी माना गया है जो-२ निज कर्मों को (आजीविका के
लिए) वो करते रहे और उनको ज्ञान अथवा भक्ति का लक्ष्य देखते
हो मिल जाये उसको भी कर्म योग माना गया। ऐसे लोगों भी बहुत सारे
मनुष्य के द्वारा पहचाने गये। जिनका यश प्रकारान्तर से गाया भी गया।

भक्ति योग — भक्ति मूलतः भजन और सेवा के योग फल में मानी गयी
और भजन का भाग है कोई ईश्वर देव होना जरूरी है अथवा देवी होना
आवश्यक है उनके लिए सम्पूर्ण सेवाएं अर्पित करते हुए उन्हीं का
चिन्तन, स्मरण, सम्भाषण, कीर्तन, आदि कार्य कलापों में मग्न
रहना ही भक्ति का लक्ष्य माने गये। ऐसी तन्मयता ही आनन्द
का स्वरूप कृत-कृत्यता का स्वरूप माने गये। ऐसे भक्त
मरणोपरान्त उन-उन देवी देवताओं का सालोक्य सामीप्य सायुज्य
सारूप्य रूपी मोक्ष को प्राप्त पाकर परम कल्याण पद को पाने की
आश्वासन दी गयी है। भक्ति का स्वरूप नौ पादों में
अथवा सीढ़ियों में बताया गया है। इसमें बहुत सारे मेधावी लोग
स्वयं को अर्पित कर स्वीकृत होने का दावा भी करते रहे हैं। अभी
भक्ति को ही सर्वाधिक सरल यात्रा माना गया है। अथवा सरल
कल्याण पन्था माना गया है।

सालोक्य (उनके लोक में) समीप (उनके आसपास में) सायुज (साथ-२) सारूप्य (उनमें
केवल में अथवा उनके रूप में हो जायेंगे)

अन्तरंग वृत्तिया तदाकार होना बताया जाता है। और ऐसे तद्रूप ध्यान मूर्ति से वरदान मिलने की बात कहते हैं। इसी को परम प्रसाद माना जाता है। जिससे साधक नित्य सुख को अनुभव करने, इष्टदेव के लोक में, इष्ट देव के समीप में, इष्ट देव के साथ में अथवा इष्ट देव के रूप में ही अपने को अर्पित हो जाना यानि सायुज्य मोक्ष माना गया है। यह ध्यानयोग का एक भाग है। और मन्त्र के साथ जुड़ी हुई ध्यानयोग पद्धति प्रधानतः किसी देवी देवताओं को सृष्टि स्थिति, लय का आधार मानकर उन्हीं की कृपा से साधक अपने को कृतकृत्य होने के लिए आश्वासनों के आधार पर निष्ठा की प्रक्रिया को बताया। इसमें अधिकतर साधक अवमूल्यित होता है तथा इष्टदेव अधिमूल्यित होता है, जबकि सभी प्रकार के इष्ट देव रहस्य में समाये रहते हैं।

ध्यान योग का दूसरा भाग – चक्र वेधन विधि → यह मानसिकता और शक्ति का संयोग में होने वाली मान्यता है। शरीर में ही छः चक्रों की कोई-२ आठ चक्रों की बात करते हैं। यह चक्रवेधन विधि को क्रमशः मूलाधार से सहस्रार तक बताया जाता है। सहस्रार में ध्यान स्थित हो जाना ही परम उपलब्धि मानते हैं। उसी स्थिति में मन तर जाता है, का मान्यता है। सभी योग वाले मन को बन्धन और मोक्ष का कारण मानते हैं। अथवा बन्धन का कारण तो सभी मानते हैं। मोक्ष का कारण मन तो है। कुछ योगी न मानें हों।

[हाशिये पर: चक्रवेधन]
[हाशिये पर: मन बन्धन और मोक्ष का कारण]

इस प्रकार ध्यान योग का दो भाग अभ्यास परम्पराओं में गण्य होता पाया जाता है। इस को ही निराकार मोक्ष भी मानते हैं। इस विधि में (दूसरा ध्यानविधि) बुद्धि और चित्त अथवा अहंकार के विरोध में अवमूल्यन और शरीर का अधिमूल्यन होना पाया जाता है।

कर्म, भक्ति और ज्ञान योग

इनकी विशेषता यह है कि कर्म योग से शुरू करें तो भक्ति और ज्ञान क्रम से सम्बन्ध रहते ही हैं। इसी प्रकार अन्य दोनों एक दूसरे के साथ पूरक रूप में रहते ही हैं। आज तक इस धरती पर विशुद्ध रूप में ज्ञान, विशुद्ध रूप में भक्ति, विशुद्ध रूप में कर्म सम्पन्न होता हुआ कोई साक्षी नहीं है। इसका तात्पर्य यह हुआ ज्ञान, कर्म भक्ति अविभाज्य रूप में ही होते हैं। जबकि कर्मयोगी अपने को विशुद्ध कर्मवादी मानते हैं। फलतः भक्ति और ज्ञान का अवमूल्यन होना शुरू हो जाता है। यही उसके पराभव का कारण हो पाता है। किसी

ज्ञानयोग – मूलतः ज्ञान को ही सत्य, ब्रह्म माने गये हैं। इसे अस्ति, भाति, प्रिय और व्यापक शब्दों से इंगित कराया। ज्ञानी ज्ञान में विलय हो जाता है बताया। ज्ञान में सभी कर्म और संस्कार विलय होने की बात कही। जब संसार संस्कार और कर्म का धारक वाहक कौन है पूछा तो उसको जीव सत्ता बताया। जीव क्या है पूछने पर मन बुद्धि चित्त अहंकार का गठित अपना रूप बताया। जीव कहाँ से आया पूछे तो ब्रह्म का परछाई माया पर पड़ने से जीव जगत की निर्मिति होने की बात कही। जीव ~~का~~ कारुण्यवश (जीवों के प्रति करुणावश) ब्रह्म ही आत्मा के रूप सारे जीवों के हृदय में विराजमान हो गये। इसी आधार पर बहुत सारे चर्चे हुए। अन्ततोगत्वा ~~सब~~ शंकाएँ शंकाओं के स्थान पर रह गया और मान्यताएँ अपनी स्थान पर रह आयी। ऐसे ज्ञान योग को सप्त सोपान (भूमिका) के रूप में बताया गया। इसे पूर्व भूमि पर भूमि के रूप में स्पष्ट किये। पूर्व भूमि में साधन चतुष्टय को बतायी गयी। (i) शम दमादि षट् सम्पत्ति (ii) विवेक और वैराग्य (iii) तितिक्षा (iv) मुमुक्षुता। इस स्वरूप में आचरण सम्पूर्ण विरक्ति के रूप में पात्रता गढ़ जाने की आश्वासन दी है। इसी के साथ प्रणव आदि मन्त्रों का भी सेवन करने की बात समावेश की है। इस सबके फलस्वरूप में वेदान्त श्रवण करने का अधिकार अथवा पात्रता पहचान यह विरक्ति वाही शास्त्र का अभ्यास करने को माना गया है जब ब्रह्म ज्ञान की पात्रता होते ही चार महावाक्य में से किसी को भी अथवा श्रवण से सबको ~~भी~~ ~~श्रवण~~ श्रवण करने मात्र से ही मनन और निदिध्यासन ~~सिद्ध होने की बात कही है।~~ ~~निदिध्यासन~~ ~~सिद्ध~~ निदिध्यासन से ब्रह्म ज्ञान का साक्षात्कार माने गये हैं। इस परम्परा में बहुत सारे शंकाएँ – शंकाओं के रूप में रहते हुए मान्यताएँ अपने द्वारा काम करते ही रहे। इसका साक्ष्य अनेकानेक विभूतियों पुरस्कारों ~~किसी न किसी योग में अर्पित होते भी रहे। उनकी भी बात में है~~ जिसका प्रयोजन शिक्षा में और राज्य व्यवस्था में सूचित नहीं हो पाया। शिक्षा को हर योग को प्रमाणित करने की बात कहते हैं। शिक्षा, जगत अपनाई गई कसौटी से वे कोई योग प्रमाणित नहीं हो पाते हैं अथवा वे सभी योग के धारक वाहक अपनी ~~भी~~ कोई ऐसी कसौटी ~~प्रमाण~~ या प्रमाणों को प्रस्तुत नहीं कर पाते। शिक्षा व योगाभ्यासों की दूरी बनी ही रही, फलतः है कहीं योग अथवा कहीं योगी व विद्वान

इस दूरी को मिटाने की आवश्यकता को महसूस किया है।

पूर्व भूमि

साधन चतुष्टय

शिक्षा व्यवस्था – अनुभव व शिक्षा में दूरी का पैमाना

इसी प्रकार भक्ति योग का भी हालत रहा। यह भी उल्लेखनीय बात है कि कभी तक आदेश व निर्देश [illegible] वादी [illegible] को आदर्श मानते ही हैं इसी के [illegible] अवतारणाओं को भी आदर्श माना गया है उपासना का भी [illegible] रूप [illegible] व [illegible] माना जाता है। इस प्रकार भक्ति वादी व विरक्ति वादी चरित्र ही साक्षात रूप में अथवा सभी योग के साक्षात रूप में मान्यता में आता है। लोक में इसका सम्मान भी है। यही प्रकारान्तर से सभी पन्थ परम्परा, धर्म, सम्प्रदायों के साथ भी आवर्तित हो जाता है। अन्ततोगत्वा विकलता अथवा अनमेल वाली बात यही है कि [illegible] राज्य व्यवस्था के साथ इसका कोई सूत्र जुड़ नहीं पाता या सृजित नहीं हो पाता है जो धार्मिक राजनीति को मानते हैं अथवा धर्म संविधान के आधार पर राज्य को मानते हैं इनमें भी वर्तमान में प्रचलित सर्वाधिक प्रभाव वाले [illegible] के साथ धर्म सूत्रों का तालमेल नहीं बन पाया, न ही बनने का आसार रहा। इस प्रकार सभी योग मन को आलम्बन, अथवा मन को [illegible] में अथवा प्रज्ञा को प्रखर [illegible] प्रज्ञा, समाधि [illegible] प्रज्ञा, ब्रह्म वेद, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरियान, ब्रह्मविद्वरिष्ठ आदि परम अभीष्टों को इंगित कराते हुए कितने भी प्रकार से इस धरती पर [illegible] सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र नहीं बन पाया/ [illegible] परिणाम [illegible] और मतभेदों का आधार बन कर [illegible] सामुदायिक चेतना तक के लिये सभी अभ्यास का परिणाम [illegible] हो गई, अथवा समुदाय चेतना तक ही रह गई।

(1) शम दमादि षट सम्पत्ति - शम (मनुष्य के सम्पूर्ण संवेगों जैसा खाना पीना [illegible] रखना [illegible] से सम्बन्धित सभी संवेगों को सहना उसको कार्य रूप में आने नहीं देना)

दम (दम का तात्पर्य यह होता है कि षड विकारों (छः विकारों जैसा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य को मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार में नहीं स्वीकारना।))

शौच (शौच का तात्पर्य शरीर की पवित्रता, काम करने वाली जगह की पवित्रता, जल, वायु की पवित्रता और वातावरण की पवित्रता को बनाए रखना और मानसिक पवित्रता को बनाए रखने के लिए निष्ठान्वित हो)

सन्तोष (जो निर्वाह साधन [illegible] है उसके प्रति सम्पूर्ण सम्मान, उसमें दृढ़ता और निष्ठा का होना)

स्वाध्याय (आप्त पुरुषों की वाणी, उपदेश और उपनिषदों का अध्ययन व वेदान्त ग्रन्थों तथा [illegible] पहले कभी [illegible] ऋषियों मुनियों का चिन्तन स्वयं में

ईश्वर प्रणिधान :- ज्ञान को ही ईश्वर मानते हुए सर्वस्व/परम सत्य मानते हुए उसके प्रति गौरव व्यक्त करते के लिए प्रणव रूपी स्मरण करना।

विवेक और वैराग्य — विवेक का तात्पर्य आत्मा का अमरत्व तथा शरीर के नश्वरत्व के प्रति दृढ़ निश्चय बनाये रखना। वैराग्य — असंग्रही बना रहना, असंग्रह में विश्वास रखना, संग्रह के लिए प्राप्त प्रेरणाओं को निराकरण करते रहना अर्थात और भोगों से प्रभावित नहीं होना। इसका प्रमाण स्वयं होना।

तितिक्षा :- लाभ हानि, मान, अपमान गर्मी ठण्डी आदि सभी आपत्तियों से विचलित नहीं होना। भाव और अभाव दोनों स्थितियों में समता को स्थापित करना।

मुमुक्षुता :- जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त होने के लिए तीव्र संवेगी होना। मोक्ष के सिवा बाकी सब स्वर्ग निरर्थक मानना। इसमें इच्छा को स्थापित किये रहना।

निदिध्यासन :- ब्रह्म ज्ञान की स्थिति का नाम है।

(i) ब्रह्मविद → ब्रह्म को जान लिया हो।
(ii) ब्रह्मविदवर → ब्रह्म ज्ञान की गहराई को जानने वाला / ब्राह्मी ब्रह्म आदि
(iv) ब्रह्मविदवरिष्ठ :- गम्भीरता और गहराई पूर्ण ब्रह्म ज्ञानी
(iii) ब्रह्मविदवरीयान → ब्रह्म ज्ञान के भले प्रकार से अथवा पूर्णतया आत्मा का विलीनीकरण स्थिति।

विकार, शोक, सन्ताप, दुःख, अज्ञान, अंधकार, असत्य, भाग्य एवं प्रारब्ध क्या है? रणसिंह आर्य

1. विकार :- विकार मानव परम्परा में सभी समुदायों में प्रचलित भाषा है। इस भाषा से जो इंगित होता है वह सब द्वन्द्व, अपराध, गलतियों के रूप में परिणत हो जाते हैं। जबकि अस्तित्व में द्वन्द्व के स्थान पर समाधान, अपराध के स्थान पर न्याय, गलती के स्थान पर सही, विकास और पूरकता विधि के रूप में नित्य वर्तमान है। अब यह द्वन्द्व मानव समुदायों में क्यों पनपा?

(i) मनुष्य मनुष्य को पूर्णतया नहीं समझ पाता।
(ii) मनुष्य मानवीयता को पूर्णतया " " ।
(iii) मनुष्य अखण्ड समाज को नहीं समझ पाता।
(iv) मनुष्य सार्वभौम व्यवस्था को नहीं समझ पाता।

इत्यादि कारणों से मानव - मानव के साथ नित्य सम्बन्ध और मूल्यों को पहचानने निर्वाह करने में जो उपेक्षायें हुए, अनसुनी हुई, अनदेखी हुई यही सम्पूर्ण द्वन्द्व का कारण है। मनुष्यों में जो कुछ भी द्वन्द्व के रूप में देखने को मिलता है वह सब षड् विकारों का ही प्रकाशन है। निषेधात्मक मनःप्रवृत्तियां निषेधपूर्वक पाये जाने वाली मनःप्रवृत्तियों का परिणाम है। मनःप्रवृत्तियां मानवीयतावादी और अमानवीयतावादी रूप में मनुष्य के द्वारा प्रकाशित होता पाया जाता है। जिसमें से मानवीयता पूर्ण प्रवृत्तियां अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था के सूत्रों से सूत्रित रहते हैं। जबकि अमानवीयतावादी प्रवृत्तियां अव्यवस्था और असामाजिकता के द्योतक हैं जैसा - संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान, और भय इसी ने पंतजलि ने पंच क्लेश के रूप में कहा है। उनका भाषा रागद्वेषा अविद्या अस्मिता अभिनिवेशा पंच क्लेशाः है। किन्तु उसमें पंच हर्षवादी मूल प्रवृत्तियों को स्पष्ट नहीं किया। वह मूल प्रवृत्तियां अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान और मध्यस्थ दर्शन सह अस्तित्ववाद के प्रणाली से

मनःप्रवृत्तियां (margin note)
पंचक्लेश (margin note)

में स्पष्ट हो जाता है। इसमें जितना भी सकारात्मक पक्ष प्रस्तुत है वह सब मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद की महिमा का प्रसाद है।

मानवीय मूल प्रवृत्तियां असंग्रह, स्नेह, विद्या (जीवन विद्या), सरलता और अभय (वर्तमान में विश्वास) है। प्रयोग के रूप में प्रत्येक व्यक्ति इसको प्रयोग कर सकता है कि संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान और भय से त्रस्त, ग्रस्त मानसिकता के कितने भी सोचे वह सिवाय लम्बी सांस और भारी परेशानी के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं पड़ती। अर्थात अमानवीय मूल प्रवृत्तियों से मनुष्य स्वयं प्रताड़ित, आवेशित होता है। फलस्वरूप सभी विकार कार्यों और व्यवहारों में प्रकाशित हो जाता है। वह विकार काम, क्रोध, मद लोभ, मोह, मद, मात्सर्य के रूप में गण्य होते हैं। कामावेश, मोहावेश, और लोभावेश सम्मोहन आत्मक अर्थात स्वयं से स्वीकृत आवेश। आवेशों के रूप में कार्यरत होना पाया जाता है। क्रोध, मद, मात्सर्य यह तीन प्रकार के आवेश विरोधात्मक आवेश के रूप में अर्थात स्वयं से अस्वीकृत आवेशों के रूप में कार्यरत होना पाया जाता है। इससे यह स्पष्ट हो गया अमानवीय प्रवृत्ति ही सम्पूर्ण विकार का आधार और स्रोत है यह भ्रमित मनुष्य की मानसिकता का द्योतक है। उल्लेखनीय बात यह है कि प्रत्येक मनुष्य भ्रम को वरता नहीं है। भ्रम को स्वीकार करता नहीं है तो यह भ्रमजाल कहां से आया?

यह अहम प्रश्न है। इसका उत्तर अध्ययन में मानव परम्परा भ्रमित है। इसलिए व्यक्ति अपने प्रवृत्तियों के रूप में भ्रमित रहना पाया जाता है। इसका तात्पर्य ये हुआ मानव, मानवीयता पूर्ण परम्परा को स्थापित नहीं कर पाया इसका प्रमाण परस्पर समुदायों में टकराव, द्रोह, विद्रोह शोषण और युद्ध के रूप में होते ही आया। इन सबही के साथ मानव विविध अथवा अनेक समुदायगत चेतना में, चेतना सहित कार्य व्यवहारों में अमानवीयता को प्रमाणित ही प्रमाणित करता है। इसका कसौटी यही है

[Margin notes:]
लम्बी सांस एवं परेशानी का कारण
स्वयं से स्वीकृत या सम्मोहनात्मक आवेश
स्वयं से अस्वीकृत या विरोधात्मक आवेश
अमानवीय प्रवृत्ति ही सम्पूर्ण विकार का आधार और स्रोत यह भ्रमित मानसिकता का द्योतक। भ्रम मनुष्य का वरण नहीं
इसका मूल कारण मानव परम्परा भ्रमित है

विकासपर्यन्त अमानवीयता का लक्षण प्रकाशित रहता ही है। इसका निराकरण मानवीयता ही है। क्योंकि अमानवीयता प्रत्येक मनावस्था और उसके समग्र के समान में अव्यवस्था की पीड़ा प्रत्येक मनुष्य में न्यूनाधिक रूप में सर्वक्षण से प्रभावित होते इसलिए मानवीयतापूर्ण परम्परा ही मानवीय मूलप्रवृत्तियों को सुदृढ़ बनाने में समर्थ होता है। मानवीय परम्परा - मानवीयता पूर्ण शिक्षा, संस्कार, संविधान और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में वैभव है। इन चारों आयामों में प्रत्येक व्यक्ति भागीदार होना, पारंगत होना, फलस्वरूप अखण्ड समाज की भागीदारी और सार्वभौम व्यवस्था की भागीदारी मानव सहज हो जाता है। विश्व परिवार स्वराज्य व्यवस्था समीचीन होती है। फलस्वरूप निरन्तर वर्तमान में विश्वास उसकी आवर्तनशीलता मानव परम्परा का वैभव के रूप में साबित हो पाता है।

मानवीय परम्परा की आवश्यकता

शिक्षा को मानवीयकरण करने के लिए = शिक्षा योजना, संस्कारों को मानवीयकरण करने के लिए - मानवीय संस्कार योजना, संविधान को मानवीयकरण करने के लिए मानवीयता पूर्ण मनुष्य आचार संहिता रूपी संविधान योजना और परिवार मूलक स्वराज्य योजना - ग्राम से विश्व परिवार सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के प्रसाद के रूप में अर्थात विकल्प रूपी विश्व दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत है।

योजनाएं

इस प्रकार से सम्पूर्ण दुःख मानव परम्परा ही भ्रमित होने के परिणाम में होते रहे। इसके प्रभाव-शील अर्थात मानव परम्परा का गुणात्मक प्रभावशील रहते हुए जीवन सहज रूप में सहज आदर्श व्यवहार का धारक होते जाये। ऐसे व्यक्तियों को आज भी आदर्श माना जाता है। ऐसे आदर्शों को कुछ-2 लोग मानने के आधार पर वह भी पुनः राजु दोनों के रूप में सिमटते जाये, ऐसे सिमटा हुआ समुदाय पुनः स्वराज के लिए तैयार होता है। इसको परम्परा से संगठन कहा जाता रहा

भ्रमित परम्परा

जीवन सहज रूप में अर्थ व्यक्ति होते जाये उन्हें आदर्श माना जाता है। उन्हीं की दरकार

संगठन

आज तक सभी संगठन मिलकर अथवा किसी एक संगठन इस धरती पर सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज सूत्रों से, आचरण से, कार्यक्रमों से, लेश होकर प्रस्तुत नहीं हो पाया।

आश्वासन भ्रमाकांक्षाएं

प्रयोगवादी विधि से अनेकानेक उपायों को कार्य रूप देने की प्रयास सदा ही रहा, अभी भी है। इसमें कोई ऐसी नहीं है जो सार्वभौम व्यवस्था को अध्ययन गम्य करा सके और अखण्ड समाज सूत्रों को अध्ययन करा सके। इसी आकांक्षा सदैव ही प्रकारान्तर से प्रत्येक संगठनों, संविधानों, शिक्षा संस्कारों और व्यवस्था प्रबन्धनों में झलकती रही। यह सब केवल आश्वासन तक ही पहुँच पायी। इतना ही नहीं सभी धर्म संविधानों की विश्व कल्याण की आकांक्षाएं अथवा मानव कल्याण की आकांक्षाएं आश्वासन तक ही अटक गया बल्कि सब अटक गये।

विकार पूर्णतया मानव परम्परागत दोष या अपराध है

इस प्रकार विकार की बात स्पष्ट होगयी यह पूर्णतया मानव परम्परागत दोष या अपराध है ना कि व्यक्ति का।

वियोग एवं भय की पीड़ा

2. शोक :→ शोक मनुष्य में वियोगों के आधार पर होने वाली प्रतिक्रियाओं के रूप में देखने को मिलता है। जैसा किसी का राज्य छीन लिया गया हो, किसी का धन लूट गया हो, किसी बन्धु-बान्धवों, परिवार जनों का निधन हो गया हो। ऐसी स्थितियों में शोक सन्तप्त होना पाया जाता है। यह वियोग मूलतः मृत्यु भय से पीड़ित होकर, पद भय से पीड़ित होकर, धन भय से पीड़ित होकर, सम्बन्धों व मूल्यों के भय से पीड़ित होकर होने वाली पीड़ा कारण है। विषय से भ्रांतिग्रस्त सुविधा उन्नताकांक्षाओं का अंकुश लग जाने के आधार पर शोक सन्तप्त होता है। कोई किसी आक्रमण पूर्वक सम्बन्धों व मूल्यों को हस्तक्षेप करने की स्थिति में अवस्था में आक्रोश, प्रतिकार, पराभवित अवस्था में शोक सन्ताप होता आया है। हर आक्रमण अपराध का क्रिया प्रवर्तन, उसका प्रतिकार में प्रतिरोधक प्रवर्तन उसका अन्तिम चरम सीमा भी हिंसा के रूप में होता पाया जाता है।

हिंसा

हिंसा का प्रति हिंसा भी हिंसा ही है किसी अपराध की

प्रतिकार का मापदण्ड नहीं होने के कारण अपराध प्रतिकार भी हिंसा में परिवर्तित होना पाये गया। प्रकृति नियम के अनुसार होते ही है। क्योंकि विकास भी नियम से होता है [नियम और प्राकृतिक नियम] जो विकास पूरकता, उदात्तीकरण नियमों से सम्पन्न होते हैं जब कि अपराध का प्रतिकार भारत नियम के आधार पर होती है। [अपराध का प्रतिकार भी नियम से] इसका तात्पर्य पूरकता के स्थान पर घातकता, विकास के स्थान पर ह्रास और उदात्तीकरण (उत्थान) के स्थान पर पतन नियमों के आधार पर प्रतिकार सम्पन्न होती है। अपराध स्वयं अमानवीयता का प्रकाशन है। उसका प्रतिरोध इसलिए सहज है कि मानव अपराध को करना नहीं, गलती को करता नहीं, असत्य भाषण को करता नहीं। [अपराध का प्रतिकार स्वीकृत नहीं] इन तीनों आकांक्षाएं रहते उसमें अधिकार सम्पन्नता अथवा सहजता सर्व सुलभता न होने के कारण निषेधात्मक आकांक्षा से विधि मानकर [प्रतिकार] अपराधों का प्रतिकार होना पाया जाता है। प्रतिकार भी अन्ततोगत्वा हिंसा का ही रूप धारण करता है। इस प्रकार [अपराध] हिंसा का कुचक्र बन कर इतिहास का स्मृतियों के आधार पर बारम्बार पुनरावृत्ति होने की परम्परा को बनाए रखने की तैयारियां करता रहता है। यही द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध के रूप में पहचानने में आती है। यह क्रम अनेक राग-द्वेष चेतना वाली कार्य-व्यवहार संस्कार संविधान व्यवस्था रहते मानव कुल इससे ग्रसित रहे हैं। ऊपर कहे अमानवीय आचरण जो नाम द्रोहकार से कहे गए जो द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध का रूप है इसका मूल प्रवृत्तियां पूर्णतया अमानवीय प्रवृत्ति और षड् विकारों से ग्रसित होने के कारण राग-द्वेष चेतना सार्वभौमता को पहचानने में असमर्थ रही आयी। इसका निराकरण पहले नहीं हुई चार कारणों में इंगित लक्ष्यों को हृदयंगम करना और तदनुसार मानवीय कार्यक्रमों को सामुदायिक कार्यक्रमों के स्थान पर स्वीकारना और इसमें पारंगत होना और मानवीयता पूर्ण मानव परम्परा का धारक वाहक होना ही अमानवीयता का निराकरण है।

[शरीर होने की मान्यता के कारण अपराध] अमानवीय प्रवृत्तियों एवं विकारों के चलते जीवन को शरीर मानना और उसी अपराध के फलस्वरूप शरीर के साथ तद्रूप होकर पाँच ज्ञानेन्द्रियों के क्रिया कलापों में

जीवन प्रसिद्ध हो जाता है। जीवन सहज रूप में मानव शरीर यात्रा समय में कर्म स्वतन्त्रता व कल्पनाशीलता के कारण आशान्वित को वर नहीं पाता यही अन्तर्विरोध का प्रधान कारण है। इन अन्तर्विरोध के कारण मनुष्य बार-२ परिवर्तन के लिए तैयार होता है। किन्तु समुदाय चेतना के चलते अखण्डता, सार्वभौमता आयुक्त व्याख्या अनेक समुदायों को मिलाकर भी, घटाकर भी निकल नहीं पाती। फलस्वरूप बार-२ शरीर को जीवन समझकर, जीवन सफलता से वंचित रहना और संकटग्रस्त होना देखा जा रहा है।

समुदाय चेतना में बाधा

प्रवृत्ति भ्रमसे छुटना सहज

इस प्रकार मानव परम्परा का ~~मौलिक~~ घोर भ्रम से प्रताड़ित होकर प्रत्येक मनुष्य दुःख का भाजन जाता है। इससे छूटना प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। यह अति सुलभ और सहज है।

मानवीय परम्परा में शोक का स्वरूप

मानवीय परम्परा में अश्रुपात न हो ऐसी बात नहीं है यदि मानवीय परम्परा स्थापित होने के पश्चात भी कहीं न कहीं आकस्मिक घटना से क्षतिग्रस्त होना सम्भव है। अकाल निधन ~~व निधन का होना स्वाभाविक है~~ होना सम्भव है, व निधन निश्चित भावी है। क्योंकि मानवीय परम्परा में आ जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व और मानव के नियम सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रकार के नियम-न्याय, समाधान हृदयंगम हुआ रहता है। फलस्वरूप ~~निधन~~ सहज निधन क्रिया को नियतिक्रम के अनुरूप स्वीकारने योग्य योग्यता से सम्पन्न रहता है। फलस्वरूप इसमें विशेष शोक पीड़ा का होना न्यूनतम हो पाता है। इसके चलते भी मनुष्य में अश्रुपात होना मानव सहज क्रिया है। यह उनके मौलिकता के आधार पर है। मानव संवेदना जो जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में वर्तमान है उसका घटनानुरूप अभिव्यक्ति क्रमों में अश्रुपात भी एक, अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्तियाँ अर्थात मानवीयता पूर्ण जीवनीय क्रम में हर वियोगों के साथ अभ्युदय सम्बन्ध पहले से बना रहना पाया जाता है। शरीर रूप में सम्बन्ध का वियोग हुआ उसका दो प्रकार से मूल्यांकन होता है एक सफलतापूर्वक शरीर यात्रा का समापन जिसके हर्षोत्कर्ष में अश्रुपात दूसरा असफलता पूर्वक शरीर यात्रा का समापन के फलस्वरूप विषाद के उत्कर्ष में अश्रुपात ~~पाया~~ होना पाया जाता है। विषादग्रस्त

अश्रुपात

शरीरयात्रा का समापन व दो प्रकार के अश्रुपात

(66)

अश्रुपात मानवीयता पूर्ण परम्परा में सम्भव समान है दुर्घटनाग्रस्त
आकस्मिक घटनाएं नीति नियम के आधार पर है।

अकाल मृत्यु → मानव शरीर रचना निश्चित व्यवस्था
सम्पन्न विधि रचना सम्पन्न होने के उपरान्त यह
शरीर निश्चित आयु चलने की सम्भावना उत्पन्न होती है यह
परम्परा में सम्पूर्ण शिक्षा
स्वरूप शरीर सहज आयु पर्यन्त है। सहज सुलभ होते हुए
संस्कार, व्यवस्था और समाज न्याय सहज रखते हुए शरीर के साथ
मानसिक स्वस्थता अनुकूल वातावरण रखते हुए वातावरण और आहार के संयोग
आक्रमणात्मक, संक्रमणात्मक वातावरण स्थिति में चिरस्थायी
रोग उत्पन्न होने की स्थिति में चिरस्थायी
रोग उत्पन्न रोग हटाने निवारण का उपाय (अकाल मृत्यु का सम्भावी) स्वास्थ्य संयम व्यवस्था
हो सकती है इसके निवारण के लिए स्वास्थ्य संयम व्यवस्था कोई अपवाद रूप में
प्रत्येक गांव में सक्रिय रहना सहज रहते हुए कोई अपवाद रूप में
निश्चय हो सकता है यह विधान व्यवस्था जीवन ज्ञान प्रतिलक्षण
स्थिति में वो पूरा करने के पहले यदि ऐसी घटना होती है
संवेदना का शोकात्मक, रुदनात्मक होना स्वाभाविक है क्योंकि
किसी का पराभव मनुष्य का हर्ष का कारण नहीं हो पाता है।
इसी प्रकार से दुर्घटनाग्रस्त स्थिति भी हो सकती है क्योंकि
आवश्यकता से अधिक गतिशीलता को मानव गति में अवश्य ही
चूंकि इसका सामान्य कारण, निवारण अवश्य ही उद्भूत होता ही रहेगा।

अकाल मृत्यु में कमी

मानवीयता पूर्ण परम्परा में और यान्त्रिक प्रक्रिया
इस सब के चलते यान्त्रिक संसार और यान्त्रिक होने के कारण
अपने आप में संज्ञानशीलता संवेदनशीलता ना होने के कारण
सहज ही कोई न कोई दुर्घटना घटने की सम्भावना बनी ही
रहती है। चूंकि मनुष्य पैरों से चलते भी गिर पड़ता है उससे भी मृत्यु
हो सकती है। उन सब विधाओं में जागृति पूर्वक विधियों को
अपनाना होगा। इससे सब रहते हुए दुर्घटनाओं समानता
उन्मूलन होगी ऐसा निश्चित भविष्य में नहीं है। आगे दुर्घटना
ना होने के लिए जागृत विधियों को अपनाते रहेंगे। इससे
अशुभ घटनाओं का न्यूनता हो पाती है।

सन्ताप और दुःख :- सन्ताप मूलतः अव्यवस्था की समझ और उसकी
अभिव्यक्ति है जैसा रोग होने से सन्ताप, शरीर की
अव्यवस्था प्रकारान्तर से रोग के रूप में प्रगट होता है। रोग का समझ बराबर
अव्यवस्था का समझ बराबर पीड़ा बराबर सन्ताप है। इसी प्रकार
पैर में कांटा लगने से अथवा घाव होने से, फोड़ा होने से चोट लगने से
कुपथ्य होने से शरीर में अव्यवस्था की पीड़ा सन्ताप और दुःख प्रकट होता है
समाधान = सुख समस्या = दुःख व सन्ताप। इस प्रकार व्यवस्था

मानवीय परम्परा की प्रेरणा

के रूप में प्रत्येक मनुष्य को सन्तुलित रहने के लिए प्रेरणा इंगित होती है और अपेक्षाएं जीवन सहज रूप में सन्तुलन और समाधान के लिए सम्मत रहता ही है। यह प्रत्येक मनुष्य में दिखने वाली साक्षी है। इसका निराकरण स्वयं मनुष्य व्यवस्था होना और समग्र व्यवस्था में भागीदार होना ही है। यह मानवीयता पूर्ण परम्परा में सर्व सुलभ होता है। भ्रमित परम्पराओं में यह बारम्बार दोहराता ही रहेगा।

कुछ साधना पद्धतियों में सन्ताप व दुःख में तितिक्षा

सन्ताप और दुःख के क्रम में कुछ साधना पद्धतियों में यह भी माना जाता है कि तितिक्षा अर्थात सहनशीलता को विकसित करते जाने पर ऐसा एक स्थिति आती है जिस स्थिति में हाथ पैर कट जाने पर भी सन्ताप शोक नहीं होती है इसको एक उपलब्धि माना जाता रही। इसी बात को समाधि की अवस्था में शामिल किया गया हिंसा उनको हिंसा के रूप में बोध नहीं होती। ये सब जीवन सहज रूप में शरीर को जीवन्तता प्रदान किये रखने की जो क्रम है उसका विपरीत स्थिति अर्थात जीवन्त नाश होने का क्रम को अपनाने की विधि से है। इससे

हिंसा और साधना

जीवन का अवमूल्यन, हिंसा का प्रोत्साहन अनुमोदित रूप में होता पाया जाता है। साधना का परम सौभाग्य निष्पाप, निर्विकार और निःसंस्कार होने के क्रम में है। इसी को पुण्य और चरम पुण्य माने जाते है। हिंसा का स्वीकृति स्वयं अपने आप में स्पष्ट है कि हिंसा का स्वीकृति अनुमोदन स्पष्ट हो जाती है। इस विधि से परम पुण्य का भागीदार सौभाग्य शाली नहीं हो पायेगा। अस्तु किसी भी स्थिति में अपराध अन्याय, कुकृत्यों को मन वा रूप में अमानवीयता से सम्भावित अन्याय का अनुमोदन करना भी अमानवीयता का प्रदर्शन करना ही है इसलिए अमानवीयता को मानवीयता में परिवर्तित करना है

मानवीयता ही पवित्र कार्यक्रम है

करने का कार्यक्रम ही पावन विधि है। मानवीयता ही पवित्र कार्यक्रम है। मानवीयता पूर्वक ही मानव निष्पाप होने अर्थात अपराध अन्याय से मुक्त होने और न्याय सुलभ सही कार्य, आचरण, व्यवहार सुलभ होना ही पावन कार्य का फलन है। यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र भी है। अस्तु मानवीय परम्परा अमानवीयता को मानवीयता में सार्थक संक्रमित होने, करने, कराने का एक मात्र सहज मार्ग है। इस प्रकार सन्ताप और दुःख का अवधारणा

काफी समझ और पीड़ा है। अस्तित्व में इसका सत्ता ही है।

अज्ञान, अन्धकार और असत्य

अस्तित्व में अज्ञान, अन्धकार एवं असत्य अस्तित्व नहीं — अस्तित्व में इन तीनों नामों से इंगित वस्तुओं की सत्ता नहीं है। भ्रमवश मनुष्य अज्ञान की पीड़ा से पीड़ित होता है। अपारदर्शी इकाई के एक ओर प्रकाश होने पर उसके दूसरी ओर उसकी परछाई पड़ती है। उसी का नाम अन्धकार है। जो अस्तित्व में सत्ता के रूप में नहीं पाया जाता है। जिस वस्तु का परछाई ही अन्धकार के रूप में गण्य होती है। तीसरा भ्रमवश मनुष्य असत्य भाषण करता है अथवा असत्य के रूप में मान्यताओं को बना लेता है। जैसा रज्जु सर्प और मृग तृष्णा के रूप में देखा जाता है। जिसका परिणाम और मान्यता का शुरुवात दोनों असत्य होते हैं। फिर भी मनुष्य असत्य की पीड़ा से पीड़ित होता है। इसका मतलब ये हुआ कि मनुष्य का भ्रम ही अन्धकार, असत्य और अज्ञान के रूप में पीड़ा का स्रोत बनता है। भ्रमवश अव्यवस्था को व्यवस्था मान लेता है फलस्वरूप उसके परिणाम से पीड़ित होना भावी हो जाता है।

प्रतिबिंब अव्यवस्था (व्यवस्था मानना) को भ्रम सुनता है

प्रत्येक एक अस्तित्व में प्रकाशमान है। प्रत्येक प्रकाशन में प्रकाश सहज वैभव है। इसलिए अन्धकार अस्तित्व में होना सम्भव नहीं होती है, अतः अस्तित्व में अन्धकार नहीं है। अस्तित्व में अज्ञान भी नहीं होती। क्योंकि, अस्तित्व पूर्ण साम्य ऊर्जा में पदार्थावस्था में प्रत्येक परमाणु में बल सम्पन्नता के रूप में, प्राणावस्था में स्पन्दन के रूप में, जीवावस्था में वंशानुषंगीयता और आशा के रूप में, ज्ञानावस्था में अर्थात मानव में संस्कारानुसंगी प्रणाली से सुख, सन्तोष, शान्ति, सन्तोष और आनन्द के रूप में ज्ञान प्राप्त है। मूलतः ~~सर्वविदित~~ के सत्ता में सम्पृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति में, से, के लिए साम्य ऊर्जा समान रूप में प्राप्त रहता है।

30-4-92

भाग्य और प्रारब्ध

भाग्य यह है जिसको भाग भोगने में उपयोग में देखा जा सकता है अथवा उपयोग में आने वाला है। मनुष्य में ऐसा भाग्य को देखें जायेंगे तो यह दिखाई पड़ती है कि प्रत्येक मनुष्य में संस्कार राशियों का होना पाया जाता है। संस्कार अपने में पूर्णता के अर्थ में किये जाने वाले, कराये जाने वाले, करने के लिए सम्मति देने वाली स्वीकृतियाँ हैं। यही बोलने वाली, बुलवाने वाली, बोलने ... सोचने वाले, सुनवाने वाले, सोचने ...

संस्कार राशियाँ

संस्कार प्रमाणों मान्यताओं कल्पना-परिकल्पना के रूप में माना हुआ

सम्मानित देने वाली वस्तुएं हैं। यही सम्पूर्ण मानव में कर्म के रूप में प्रतिपादित होने वाली वस्तु है। यह अर्थात संस्कार प्रमाणों के रूप में माना हुआ, मान्यताओं के रूप में माना हुआ, कल्पना परिकल्पनाओं के आधार पर माना हुआ के रूप में देखने को मिलता है। ऐसा कोई स्वस्थ आदमी नहीं जिसमें मान्यताएं न हो। ये जीवन सहज (जन्म से पूर्व लब्ध होता) रूप में संस्कारों का होना सहज है। क्योंकि शैशवावस्था से ही मान्यता

मान्यताएं

सम्पन्न प्रवृत्तियों का होना देखा जाता है। अन्य सभी अवस्थाओं में स्पष्ट है ही। इसका पहला प्रमाण जिस परिवार में जो शिशु अर्पित रहता है वह पहली मान्यता का प्रमाण है। प्रत्येक जीवन किसी शरीर के द्वारा ही प्रमाणित होना मानव परम्परा सहज प्रवर्तन है। जिस जीवन को ~~मानवीय~~ मानव परम्परा में प्रमाणित होना है वह जीवन सहज स्फूर्ति है। जीवन में स्फुरण (अभिप्राय प्रमाण, प्रकटन, कल्पना, चित्र) सहज है। क्योंकि

जीवन स्फूर्तियां

प्रत्येक जीवन अक्षय शक्ति अक्षय बल सम्पन्न ~~रहता~~ है। जीवन में ही आशा, विचार, इच्छा, संकल्प अनुभव जैसी क्रिया कलाप प्रमाणित होते हैं। इसी क्रम में जीवन सहज स्फूर्तियां उदय शील है। यह तब तक भावी है जब तक जीवन ~~*~~ तृप्ति न हो जाये। ऐसी तृप्ति जीवन जागृति और उसकी निरन्तरता में वैभव है जो स्वयं प्रमाणिकता, प्रमाण और स्वानुशासन के रूप में मानव परम्परा में अथवा मानव कुल में प्रकाशित होने का सहज व्यवस्था है। सहजतायें अस्तित्व सहज, विकास सहज, जीवन सहज, जीवन जागृति ~~सहज~~ सहज भेदों से होना पाया जाता है।

चार सहजतायें

मानव का स्वरूप, कार्य और वैभव प्रमाण

पूर्णतया इन्हीं चारों सहजता के आधार पर अवस्थित व्यवस्थित वर्तमान है। ~~अब~~ उल्लेखनीय बात के यो है सम्पूर्ण विज्ञान और

अभी तक होने के कारण महत्ता (विज्ञानियों का)

विज्ञानी रासायनिक भौतिक रचना विरचनाओं के शब्दों में नर तत्व (मानव तत्व) को खोज कर न मिलने पर भी ~~धन्य~~ अपने को धन्य मानते रहते हैं। कोई सामान्य व्यक्ति भी जहाँ जिसको खोजता है वहाँ वह न मिलने की स्थिति में कुछ बार प्रयत्न करने के उपरान्त न मिलने की स्थिति में खोज कार्य से उपरत हो जाता है। जबकि मानव तत्व को शब्दों में खोजना एक ऐसा अरण्य रोदन है जो स्वयं की सन्तुष्टि का स्रोत तो है नहीं अन्य का उपकारी भी नहीं। दिशा दर्शन का सूत्र नहीं। उक्त स्थिति में यह अथवा ऐसे सभी

कार्य मानव परम्परा में समाविष्ट नहीं ~~है कोई~~ अपराधी के हो नहीं है। अपराध करने पर मानव को स्वयं समझ आता है कि मानव परम्परा को गुणित करने के लिए अन अपराध परम्परा है।

गुणित प्रयास से अपराध

इसी प्रकार जितने भी मानव परम्परा को शिक्षा, संस्कार, संविधान राज्य व्यवस्था पूर्वक गुणित करने वाले समग्र प्रयास चाहे वह वैज्ञानिक हो, अवैज्ञानिक हो, आदर्शवादी मार्गों से क्यों न हो वो सब अपराध प्रवृत्तियाँ हैं। परम्परा को गुणित करने से अधिक कोई अपराध होता नहीं है। अपराध और गलती का सुधार भावी है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य बेहोशी से गलती अथवा अज्ञानता से गलती और अपराध करता है। थोड़ा सा भी जागृत रहेगा अथवा जितना ध्यान रहेगा तब तक मनुष्य अपराध और गलती को कर नहीं पाता। साहस नहीं कर पाता। इसलिए गलती और अपराध का सुधार भावी है।

हर अपराध व गलती का सुधार भावी है

सत्यपूर्ण दृष्टि मानवीयता

मानव तत्व मानवीयता के रूप में प्रतिष्ठित है। मानवीयता सत्य पूर्ण दृष्टि का प्रयोग से क्रिया-कलाप से, व्यवहार-कलाप से मानव परम्परा में प्रमाणित हो पाता है। सत्य पूर्ण दृष्टि का प्रयोग मानव ही कर पाता है। सत्यपूर्ण दृष्टि में यथार्थता (जैसा जिसका अर्थ है), वास्तविकता (जैसा जो वस्तु है), सत्यता (जैसा जिसका पद और धर्म है) स्पष्ट हो जाता है। यही सत्य दृष्टि का महिमा है। ऐसी सत्य दृष्टि जीवन सहज अधिकार वर्तमान है। उसका प्रयोग करना ही जागृति है। सत्य दृष्टि से ही मानव का परिभाषा प्रत्येक मनुष्य में विश्वास है। मानवीयता का आशय प्रत्येक मनुष्य मानवत्व सहित एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होने का सम्पूर्ण स्वरूप, कार्य और उसकी निरन्तरता स्पष्ट हो जाती है। फलस्वरूप मानव परम्परा मानवीयता से सम्पन्न होना भावी स्पष्ट होता है।

दृष्टियाँ

जीवन प्रभाव क्षेत्र

सत्य दृष्टि जीवन शक्तियों का प्रभाव क्षेत्र में स्पष्ट होने वाली प्रक्रिया है अथवा जीवन प्रक्रिया है। इसी भाँति धर्म, न्याय, लाभ हित, प्रिय दृष्टियाँ भी जीवन्त जीवन गत क्रिया कलाप है। इन्हीं जीवन गत शक्तियों का प्रभाव क्षेत्र कारण गुण गणित अस्तित्व सहज वस्तुओं के रूप में पहचानता है, जानता है, मानता है और निर्वाह करता है।

शेष जीव अवस्था में — ये ही जीवन, जीवन प्रभाव क्षेत्र में सम्पन्न होने वाली कार्यकलाप है यह अन्य जीवों में न्यूनतम है। वनस्पतियों प्राणियों में सुप्त है अथवा सोया हुआ है। भ्रूण रूप में विद्यमान है। रचना और उसकी स्पष्टता मानव जीवन में सहज कार्य के रूप में ये सब आंकलित होते हैं। अध्ययन गम्य है।

अव्यवस्था से व्यवस्था भावी है — इस आधार पर (उक्त) पर जीवन प्रकाश में पहचानने में आने वाली प्रिय, हित, ~~लाभकारी वस्तुएं~~ लाभकारी वस्तुएं और इनके संयोग से उत्पन्न होने वाली जितने भी परिणामों को मानव ने भोग लिया है वह सब अमानवीयता और अव्यवस्था की व्याख्या में स्पष्ट हो जाती है। अव्यवस्था की पीड़ा मानव सहज अथवा मानव जीवन सहज होने के कारण अव्यवस्था से व्यवस्था की मानव परम्परा को संक्रमित होना भावी है। यह जीवन प्रकाश सहज सत्य, धर्म, न्याय दृष्टियों से सफल हो जाता है। ऐसी सफलता सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज के रूप में स्पष्ट हो जाती है।

मानवीय परम्परा अभीष्ट धार्मिक रही है — उक्त सभी विश्लेषण व्याख्या से यह स्पष्ट हुआ कि मानव भटका हुआ मानव परम्परा ही मानव ~~में~~ भ्रमित संस्कारों को स्थापित करता है। अभी तक मानव परम्परा का सुव्यवस्थित नहीं हो पाई अब मानवीयता को पहचानने की ~~आवश्यक~~ अपरिहार्यता हो चुकी है। मानवीयता पूर्ण परम्परा के मूल में मानव का अध्ययन प्रधान है।

निर्भ्रम संस्कार परम्परा — फलत मानव संस्कार सहज है। इस प्रकार निर्भ्रम संस्कार परम्परा में सम्पूर्ण भाग्य, सौभाग्य के रूप में अर्पित, न्यायपूर्ण सफलता के रूप में अनेक भ्रमित सभी संस्कार; व्यक्तिगत रूप में प्रलोभनवश कभी-२ सफलता का, सर्वाधिक विफलता का रूप में परिणत होता है। इससे स्पष्ट हुआ कि सत्य

मानवीय भाग्य — पूर्ण न्यायिक संस्कार परम्परा ही मानवीय भाग्य है। अमानवीयता ही अथवा अमानवीय संस्कार ही दुर्भाग्य है। प्रत्येक मनुष्य सौभाग्य को वरता है न कि दुर्भाग्य को। इसलिए परम्परा को सौभाग्यशाली बनाना ही इसका एक मात्र उपाय है।

मानवीय परम्परा बनाना ही सौभाग्य

प्र०- मानव सहज रूप में आदर्शगामी होने की बात और परम्परा में मानवीयता का अभाव ये दोनों कैसे?

उ०- मनुष्य सहज रूप में ही अच्छा लगने और अच्छा होने के पक्षधर हैं। इसी क्रम में बहुत सारे लोग अच्छे लगे भी, अच्छे हुए भी। परम्परा जहाँ तक है सभी समुदाय परम्पराएं आदर्शवादी चिन्तन के अनुसार शिक्षा, संस्कार, संविधान, राज्य व्यवस्था, धर्म व्यवस्था को जन

ईश्वरवाद, वस्तुवाद में प्रवृत्ति

ईश्वरवाद

गुलाम करते आये। आदर्शवादी लोगों ने ईश्वर (को) महिमा, ईश्वर से ही सम्पूर्ण कल्याण, अकल्याण, सुख, दुःख, कोप, विक्षोभ, बन्धन, मोक्ष सब ईश्वर के हाथ में होना मानकर धर्म शास्त्रों का रचना हुई। इसके अनुसार मनुष्य का अवमूल्यन हुआ। ईश्वर एक रहस्यमयी वस्तु होने के कारण रहस्य का अधिमूल्यन हुआ। यह तथ्य शास्त्र से साहित्य तक, साहित्य से प्रचार तक, प्रचार से लोगों में फैला तथा संस्कारित होता गया। कालान्तर में इससे उत्पन्न कष्ट, समस्याएँ, कार्य कलापों का परिणाम में मानव सहज चिन्तन धारा इसका विपरीत अथवा विरोधी

वस्तुवाद

चिन्तन के रूप में वस्तु केन्द्रित चिन्तन सामने लाये। यह सुविधा भोग केन्द्रित, स्रोत होने के कारण मनुष्य को भी सुविधा भोग मिलने के आश्वासन पहले से अधिक आदर्शवाद से मिलते रहने के आधार पर सुविधा भोग को जन मानस ने अपना लिया। इस प्रकार ईश्वर केन्द्रित और दूसरा वस्तु केन्द्रित में दोनों एक ही बात

दोनों से समाधान नहीं

कहते कि ईश्वर से ही सब कुछ होता है, वस्तु से ही सब कुछ होता है अब तक दोनों विधियों से अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था नहीं मिला। न ही मिलने की सम्भावना। जबकि व्यापक चाहिए प्रत्येक मनुष्य इसके इच्छुक है। इसी सत्यता वश मानव केन्द्रित चिन्तन सामने आया।

जीने की विधा

इसके रोशनी में सहज ही मानव ही कर्ता, मानव ही दृष्टा, मानव ही भोक्ता होने की बात स्पष्ट हो जाता है। फलस्वरूप मानव दृष्टा पद सत्य दृष्टि व्यापी न्याय दृष्टियों का प्रयोग करने योग्य होता है। फलस्वरूप अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था भावी होती है।

आदर्शवाद ने सम्पूर्ण श्रेष्ठता को शामिल

इससे बुद्धनाबदी

उपरोक्त दोनों दृष्टिकोणों को हृदयगम करने पर पता लगता है कि आदर्शवाद, सम्पूर्ण श्रेष्ठता, प्रामाणिकता को शामिल बनाये रखा। जबकि रखने का तात्पर्य सत्य और श्रेष्ठता को स्वत्व के रूप में कोई घोषणा करता है उसको दम्भी, पाखण्डी और हेय दृष्टियों से देखने की आदत डाली। फलस्वरूप ऐसे अधिकार शर्मा में एक प्रतीक रहे क्योंकि व्यक्तिगत रूप में ही श्रेष्ठता और सत्य समझ में आता रहा। परम्परा ने इसकी घोषणा को विरोध विषय की थी। इसी आधार पर यह घटना घट गयी। इसके विपरीत वस्तु

वस्तुवाद से अपराध

केन्द्रित भोगवादी चरित्र में सारे दुष्टता आश्रित राष्ट्रनीति अपराध छल, बल, लूट, खसोट आदि सब चलाने लगे। इसी का प्रशिक्षण सारा प्रचार तन्त्र देने लगा। इसी का प्रदर्शन कार्य सर्वाधिक हुई। इसी का प्रकाशन कार्य भी होते आये। शिल्प, चित्र, कविता, कार्यों में भी इसी का जोर रहा। इसलिए मानव

जीवन ज्ञान से भटकाव से मुक्ति

मानवीयता के विपरीत गति में गतिशील होता गया ~~होता गया~~। यही आज की अव्यवस्था का स्रोत और उसकी पीड़ा है। पीड़ा से मुक्त होना मानव चाहता है। इस प्रकार से मानव परम्परा भटका कैसे। ये सुलझाना कैसे इसका पता लगा लेना आज का काम है। इसके लिए मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद अपने को मानव कुल के लिए अपने को अर्पित किए हैं। इसमें मानव केन्द्रित होता है। मानव सहज द्रष्टापद प्रतिष्ठा, जागृति की महिमा को विवेक और विज्ञान सम्मत प्रणाली से अध्ययन गम्य होना ~~सम्भ~~ सम्भव हो गया है अथवा सहज हो गया है। इन तीनों विधाओं का सामान्य ज्ञान से ही पता लगता है कि जीवन अस्तित्व सहज, विकास सहज प्रकाशन है। जीवन सहज रूप में जागृति एक आकांक्षा रहता है। इसी क्रम में अवश्य मानव इस धरती पर होना सम्भव हुआ। परम्पराएं पहले कहे हुए ईश्वर केन्द्रित और वस्तु केन्द्रित विधियों ~~को अब~~ से भटकाव को पैदा किया अथवा परम्पराओं ने पैदा किया। इसी क्रम में जीवन सहज जागृति के आधार पर मानव केन्द्रित चिन्तन ~~विधि~~ निश्चित हुई। यह एक आवश्यकता रही। इस प्रकार परम्परा सुधरने की बात स्पष्ट हो गई। इस प्रकार परम्पराओं प्रति बद्धताओं के आधार पर शोधित होना और जीवन सहज रूप अथवा जीवन जागृति सहज रूप में अवश्य व्यक्तियों का होना अस्तित्व में पाया जाता है।

1-5-98

अस्तित्व में ईश्वर, देवी, देवता और मन्त्र, पूजा, प्रार्थना, अभ्यास दान, यज्ञ का क्या व्यावहारिक प्रयोजन है?

ईश्वर :→ ईश्वर अस्तित्व में सर्व सहज, सर्वत्र सहज, सर्व सुलभ वर्तमान है। जैसा एक दूसरे के मध्य में जो ~~सर्व~~

सत्ता — स्थली होती है वह स्वयं ऊर्जा स्वरूप है। सत्ता मूलरूप में ऊर्जा ही है। ऊर्जा में ही सम्पूर्ण जड़ चैतन्यात्मक प्रकृति वर्तमान है इसलिए प्रकृति अनन्त इकाईयों का समूह है, वह सत्ता में सम्पृक्त, बल सम्पन्न क्रिया शील है। क्रिया ~~के फलन ही~~

क्रियाशीलता — मूलतः श्रम, गति, परिणाम के रूप में दृष्टव्य है। परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम गति का गन्तव्य ही सम्पूर्ण विकास का ऊंचाई है। सम्पूर्ण भौतिक और रासायनिकता का ऊंचाई सम्पूर्ण रचना है। अस्तित्व स्वयं सह अस्तित्व होने के कारण सम्पूर्ण रचना और जीवन का सह अस्तित्व सहज है। इसी क्रम में जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में मानव परम्परा स्पष्ट है। मानव परम्परा में ही जीवन गठनपूर्णता पद में परिणाम का अमरत्व सहित विद्यमान होते हुए गति का ~~...~~ गन्तव्य तक विकसित होने का अर्थात जागृत होने की आवश्यकता बना ही रहती है। इसी आवश्यकता वश मानव परम्परा क्रिया पूर्णता अर्थात श्रम का विश्राम और गति का गन्तव्य अर्थात जीवन जागृति को प्रमाणित करने के लिए ही बाध्य है। ~~इसी~~ बाध्यता वश चिन्तनशील मानव सहज रूप में व्यक्त हुआ। ~~इसी ...~~ मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान है। इसके

मानव केन्द्रित ज्ञान — अनुसार मानव परम्परा मानवीयता सहित श्रम का विश्राम को, अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था के सन्तुलन और उसकी निरन्तरता के रूप में प्रमाणित होने का योजना सम्मुख हुई है। वस्तुकेन्द्रित चिन्तन ज्ञान के अनुसार वर्गसंघर्ष

वर्गसंघर्ष- भौतिकवाद का भ्रम — को एक अनिवार्य स्थिति मान ली गयी। और विकास कोई भी लक्ष्य रही है। इन्हीं आधारों पर बलात हृदयहीनता भी मान्यता स्पष्ट हो चुकी है। यही सब भौतिकता या प्रभावात्मक होना स्पष्ट हो चुकी है।

ईश्वरवाद का रहस्य — इसके विपरित ईश्वर केन्द्रित चिन्तन ज्ञान के अनुसार ईश्वर ही सृष्टि, स्थिति, लय का उपादान कारण मानकर सभी मान्यताओं को स्थापित किया। ~~इसके~~ इन आधारों पर

~~किया गया था~~

स्वीकार की गयी मान्यताएं रहस्यसे मुक्त नहीं हो पाई। इन्हीं कारणोंसे यह अपने आप सिमटता गया।

अस्तित्व का वर्णन

अस्तु मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञानके अनुसार मानव ही अस्तित्व में दृष्टा पद प्रतिष्ठामें वैभवित होने के कारण मनुष्य के समझ में अस्तित्व आता है। अस्तित्व जैसा है यह बात पूर्णतया स्पष्ट होती है। जितना है उतना आवश्यकता के अनुसार मिलता जाता है। इस प्रकार अस्तित्व स्वयं सत्ता में सम्पृक्त जड चैतन्यात्मक प्रकृति होना - चैतन्य प्रकृति जीवन के रूप में और जड प्रकृति मानव शरीर, जीव शरीर, वनस्पति और खनिज रचनाओं के रूप में। यह तरल, विरल व ठोस के रूप में दृष्टव्य है। यही सत्यता वश मानव परम्परा में मानव जीवन जागृत का साक्षी प्रदान करता है। इन्हीं के आधार पर प्रत्येक मनुष्य में निहित जागृति की आकांक्षाएं, उसका समर्थन, स्वीकार और निष्ठान्वित होने के लिए तत्पर है।

जागृत विधि को मानव स्वीकारेगा

इस विधि से भ्रमित परम्परा को जैसा जनमानस स्वीकारा है उसी प्रकार जागृत विधि को जनमानस स्वीकारेगा। सभी सही न्याय, समाधान और सत्य के सम्मुख सभी गलती, अन्याय, समस्या और असत्य निरस्त हो जाते हैं क्योंकि पहले वाला निर्भ्रमता का,

निर्भ्रमता में समाधान

दूसरा भ्रम का द्योतक है। निर्भ्रम के सम्मुख भ्रम विलय हो जाता है। इससे और भी ज्ञान स्पष्ट हो गया कि निर्भ्रमपूर्वक ही मानव सम्पूर्ण भ्रम पर विजय पाता है।

ज्ञान का स्वरूप

अभी तक कहे हुए अनुसार केवल ही मनुष्य में ज्ञान के रूप में प्रकाशित है। अस्तित्व में साम्य ऊर्जा ही पदार्थावस्था में सम्पूर्ण वस्तुएं बल सम्पन्नता के रूप में प्रमाणित हैं और मानव ज्ञान सम्पन्नता के रूप में ही वर्तमान है। जीवन प्रकाश में ज्ञान निरन्तर समझ में आता है। ऐसा ज्ञान, वस्तु स्थिति गत ज्ञान, वस्तुगत ज्ञान के

वस्तुस्थिति गतसत्य

रूप में स्पष्ट हो जाती है। अस्तित्व ~~के रूप में~~ स्थिति सत्य के रूप में, प्रत्येक वस्तु वर्तमान में प्रमाणित होते हैं। स्थिति सत्य - सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में है।

वस्तुगतसत्य

वस्तुगत सत्य रूप, गुण स्वभाव व धर्म के रूप में वर्तमान है। वस्तु स्थिति सत्य पद और अवस्था के रूप में स्पष्ट है। ~~क्योंकि~~

पद

पदों का स्वरूप प्राणपद, जो पदार्थावस्था और प्राणावस्था का परस्पर
पूरकता के रूप में है। भ्रान्ति पद: जीवावस्था और भ्रांत मानव के परस्परता
में है। अधिकांशत: इसी भ्रमित के रूप में है। देवपद जो मानवीयता
में है। अधिकांशत: जागृत के रूप में है। देव पद जो मानवीयता
पूर्ण मनुष्य और देव मानव के परस्पर में पूरकता लोगों से स्पष्ट है।
दिव्य पद जो देव मानव और दिव्य मानव के परस्परता में
पूरकता विधि से सार्थक है। ये पद का तात्पर्य है।

अवस्था — अवस्था का स्वरूप - पदार्थावस्था, प्राणावस्था
जीवावस्था और ज्ञानावस्था के रूप में सम्पूर्ण
प्रकृति है। इन्हीं चार संख्या पदों के रूप में वैभवित होते हैं।
पद वैभव होते हुए, अपेक्षा सहित अवस्था है और समस्त
अवस्था में भागीदारी है।

अवस्थाएं पदों के रूप में वैभवित हैं।

अस्तित्व मू.गं. के नीचे ज्ञान की रोशनी में यह बात स्पष्ट हो
जाती है सत्ता में ही सम्पूर्ण प्रकृति सम्पृक्त है। सत्ता को ईश्वर,
ज्ञान, परमात्मा, ~~साम्य~~ साम्य ऊर्जा चेतना, ज्ञान, निरपेक्ष ऊर्जा,
शक्ति के नामों से जाना जा सकता है। ये जितने भी नाम
बताये गये इनमें से अधिकांश आदि काल से वाङ्मय में भी
प्रयोग किया है। इसे सत्य के नाम से भी पुकारा जा सकता है।
यद्यपि सत्य का स्वरूप स्पष्ट रूप में अस्तित्व है। अस्तित्व
सत्ता में प्रकृति के रूप में आवेगमय है। इस प्रकार यदि इसी
प्रकार सत्ता को ब्रह्म, ये भी एक नाम हो सकता है। अस्तित्व
को जो नहीं उसका कोई नाम करण सम्भव नहीं अथवा उसकी
पहचान भी सम्भव नहीं। अस्तित्व जैसा यह समझ में आने के
कारण, अस्तित्व में जो कुछ भी वैभव है उसी के लिए नाम-
करण का प्रयास अनादि काल से ही सभी देशों में
प्रयास किया गया है। इसमें से चेतना, परमात्मा, सत्य, ईश्वर,
ब्रह्म, ज्ञान आदि सभी नाम सत्तापरक ही है। जैसा प्रकृति
का अनन्त नाम है उसी क्रम में सत्ता को अनेक नाम स्वरूप
अथवा नाम से जानने का प्रयास करना यह मानव सहज क्रियाकलाप
रहा है। क्योंकि मानव में कल्पनाशीलता, कर्मस्वतन्त्रता आदि
काल से अथवा अनादि काल से ही कार्यरत रहा है। सम्पूर्ण
कल्पनाशीलता अस्तित्व में, से, के लिए ही हो पाता है।
इस लिए इसको इसी अर्थ में स्वीकारना उचित होगा। ऐसी
परमात्मा को दयालु, कृपालु, करुणामय, करुणासमुद्र, आदि महिमा
ओं को गाया गया है। इसमें सत्यता को पहचान जाये तब ऐसा
एक प्रमाण मिलता है कि परमात्मा में ही जडजंगम संसार अथवा
जड चैतन्य प्रकृति समाहित हुई वर्तमान में प्रमाणित है।

इसलिए इन्हीं में समायी हुई मानव प्रकृति जो जागृतावस्था में है, इन्हीं में मानवीयता पूर्ण मनुष्य, देव मनुष्य और दिव्य मनुष्य के रूप में पहिचाना जाता है। ऐसी देव मनुष्य और दिव्य मनुष्य में दया, कृपा, करुणा स्वभाव के रूप में अथवा मौलिकता के रूप में प्रमाणित होती है। ~~इसलिए~~ ऐसी दया, कृपा, करुणा जीवन वैभव का ही प्रमाण है अथवा जीवन जागृति का प्रमाण है। जागृति निर्भ्रमता के रूप में और निर्भ्रमता जो जैसा है उसको वैसे ही जानने, मानने पहचानने, निर्वाह करने के रूप में है। जीवन अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान है इस प्रकार में जो कुछ भी अभिव्यक्ति है वह अस्तित्व में थी ही इस प्रकार सत्ता के प्रति जो दया, कृपा, करुणा की बात कही जाती है सम्बोधन की जाती है उसमें सार्थकता को कई ढंग प्रकार से पहचाना जा सकता है। पुनः अस्तित्व में जो थी नहीं वह होती नहीं, इस आधार पर जीवन में अथवा मानव जो कुछ भी प्रमाणित होती है वो सब अस्तित्व में था ही। जैसा अमानवीयता, हिंसक और अहिंसक पशुओं के सदृश, मानवीयता ~~स्वत्व~~ मानव के स्वत्व के रूप में और देव मानवीयता, दिव्यमानवीयता जागृति के रूप में प्रमाणित होती है। जागृति जो कुछ भी, कितना भी वह सब अस्तित्व में से, के लिए ही है। ~~ईश्वर~~ इस प्रकार ईश्वर (व्यापक) स्वयं को स्वत्व के रूप में पाने के अर्थ अथवा जागृत होने के अर्थ में सार्थक है। ~~अब ईश्वर मुक~~

क्या ईश्वर सुनता है!
सत्तामयता ~~[illegible]~~ ~~[illegible]~~ की व्यापकता को देखते हुए यह शंका होती है कि ईश्वर आपने से कुछ सुनते है या नहीं सुनते है। वास्तविक रूप में सत्ता स्थितिपूर्ण है, सत्ता में प्रकृति पूर्णता के लिए स्थिति शील है ~~[illegible]~~ स्थिति पूर्ण सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति पूर्णता के लिए आगा गमित होना अस्तित्व सहज है ये ही निबारा का मूल, जागृति का मूल के रूप सब में विद्यमान है। ~~[illegible]~~ इस सत्य देखने के उपरान्त जितने भी सुनने वाले, सुनते है ऐसा मानते है वे सब तो सुनेंगे ही, सुनने के लिए जहां-२ शून्य वह भी किसी अंश में सुना ही है। इस सब के उपरान्त जितना भी मनुष्य बोलता है शून्य में प्रति ध्वनित हो जाता है। इस प्रकार सुना नहीं तो कहां सिद्ध होगा। तो अवश्य है कि व्यापक इकाई नहीं होती। इकाई किया व्यापक नहीं होती है तो अस्तित्व में

प्रार्थना की सार्थकता

जो कुछ भी वैभव है अर्थात अभिव्यक्तियां वह सब सम्भावित
अस्तित्व का ही विभव है। इस प्रकार जो कुछ भी हम प्रार्थनाएं
करते हैं उन प्रार्थना के अनुरूप स्वयं में गुणों को विकसित
करने की प्रणाली से वह सब प्रार्थनाएं सार्थक हो जाते हैं।
यदि इसके विपरित प्राप्याय, प्रार्थना से इंगित गुण केवल
ईश्वर और देवताओं में ही होते हैं इस प्रकार की भ्रम से
किया हुआ प्रार्थना सार्थक नहीं हो पाते हैं। इस आधार पर
सम्पूर्ण प्रार्थनाओं का अर्थ स्वयं मानव ही धारक वाहक
होना एक अनिवार्य स्थिति है। इसकी उपेक्षा, अनसुनी
मनुष्य को दासता की ओर विवश करता है। फलत
मनुष्य अवमूल्यन स्वाभाविक है।

देवी-देवता :→ आदि काल से देवी देवताओं का नाम प्रचलित है।
इन नाम से इंगित देवताओं के लीला, महिमा, पराक्रम
और उन-२ का धाम के सम्बन्ध में भी बहुत सारी चर्चाएं हुई हैं।

इन सारी चर्चाओं में प्रधान मुद्दा —

देवताओं के प्रति मान्यताएं

① मनुष्य अपने को अत्यन्त दुर्बल मानकर कितना बलवान देवता
हो सकता उसकी परिकल्पना की। इन परिकल्पनाओं को कथा-
परिकल्पित करने के लिए अनेक सन्दर्भों, पात्रों, सन्निवेशों (किसी
एक निश्चित घटना घटने के लिए आवश्यकीय एक से अधिक परिस्थितियां) एक से अधिक परिस्थितियों) बहुत
और मान्य धर्मशास्त्रों के अनुकूल प्रयोजनों को स्थापनों रखकर बहुत
सारा कथा, काव्य, महाकाव्य को रचा गया। ऐसी कथाओं को
पावन कथा, पुण्य कथाओं के नाम से माना गया। इन कथाओं
में दुष्टों का दमन एक प्रधान भाग माना जाता रहा। ऐसे दमन कार्यों को सर्वाधिक
रोमांचक रूप में चित्रित करने के लिए सम्पूर्ण मानव मानस का
प्रयोग किया। जिससे अनेक-२ कथाएं प्रत्येक धर्मानुयायी
के लिए उन-२ के अनुकूल प्रसंगों के साथ कथाएं उपलब्ध हैं
जिसको आज भी लोग श्रवण कर कृत-कृत्य मानते हैं।

उदारता कथा

② दूसरा ऐसी देवी देवताओं में वीरता के अतिरिक्त उदारता की
बात भी कही गयी है। अनायास ही अहेतु के रूप में बहुत विविध
और लोगों पर उदारता पूर्ण विधि से अनेक धन सम्पत्ति, भरकर्पीं
को प्रदान करने का भी कथा बताई गयी है। इसी के तहत दया,
कृपा, करुणा पूर्वक अनेक भक्तों को उन-उन की कामना अनुसार
उसकी पूर्ति और परम शान्ति, कैवल्य पद मोक्ष को
उपलब्ध कराने का अनेक कथाएं सुनने को मिलती हैं। इन
देवी देवताओं का मूल रूप के सम्बन्ध में सब अपने में

सत्ता में देवी देवता की उत्पत्ति एवं विलय

स्वम्भू है। ऐसा कहते हैं। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि ब्रह्म से इन सभी देवी देवताओं का उत्पत्ति है। ये सभी देवी, देवताएं ब्रह्म में विलय हो जायेंगे अथवा सत्य / चेतना में विलय हो जायेंगे। इसी प्रकार जीव जगत के सम्बन्ध में भी परिकल्पना दिया गया है कि ब्रह्म से ही अथवा चेतना से ही सभी जीव जगत उत्पन्न हुई है। उसी से पालन होगी और उसी की इच्छा अनुसार इन सब का प्रलय होगी। इस प्रकार बताया करते हैं। जबकि वास्तविकताएं भिन्न हैं।

पूजा, प्रार्थना, आराधना का स्वरूप

अस्तित्व के स्वयं सहअस्तित्व होने, अस्तित्व में विकास, जीवन, जीवन जागृति का अध्ययन करने पर पता चलता है कि जीवन जागृति क्रम में मानवीयता पूर्वक देव मानव, दिव्य पदों में प्रकाशित होता पाया जाता है। इसी देव जीवन और दिव्य जीवन शरीर के अन्तर भी देव और दिव्य के रूप में प्रकाशित रहते हैं। इन्हीं ~~देवी देवताओं~~ देवताएं मनुष्य से सम्पन्न किया गया सभी पूजा, प्रार्थना, आराधनाओं के फल स्वरूप साधकों में उचित प्रेरणा प्रदान करने और उचित घटनाओं के लिए प्रेरक होने के रूप में अपेक्षा, कृपा, करुणा को प्रयोग करते हैं। इसका सिद्धान्त यही है कि जो जिसके पास रहता है उसे वह वितरण किया करता है। देव मानव का अथवा देवताओं का स्वभाव / मौलिकता - धीरता, उदारता दया है। दिव्य मानव दिव्य जीवन का मौलिकता जागृति सहज रूप में दया, कृपा, करुणा है। यह देव मानव और दिव्य मानव में भी यथावत प्रमाणित होती है। ~~ऐसी~~ ऐसे मनुष्य शरीर को त्यागने के उपरान्त देव जीवन तथा ~~[illegible]~~ दिव्य जीवन के रूप में अस्तित्व में होना सहज है। इस प्रकार, देवी देवताओं का प्रयोजन मानव के रूप में प्रमाणित होने के उपरान्त ही प्रमाणित होता पाया जाता है। अस्तित्व स्वयं व्यवस्था, विकास होने के कारण और विकास स्वयं निश्चित क्रम होने के कारण अस्तित्व में सम्पूर्ण अभिव्यक्तियां योग, संयोग पूरकता विकास, उदात्तीकरण, संक्रमण यह सब विधिवत, निश्चित कार्य है। इसमें पारंगत होना ही विद्वता का तात्पर्य है।

मन्त्र :→ आर्ष ऋषियों आर्ष मनीषियों का मन्तव्य है कि मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। ऐसी बन्धन से अपना अवस्था रूपी मन को मुक्त करना ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होना मानते हैं। ~~मन का तरंग अथवा मन का तरंग~~ मन का तरंग अपने आप एक दुरूह, जटिल मानते हुए उसके योग्य शब्द तरंग संयोजना करते रहे। ऐसी उपायों को मन्त्र का नाम दिया है। ऐसे मन्त्रों में प्रणव

मन्त्र का प्रभाव

को सर्वोपरि माना गया है। आदि ब्रह्मवादियों के अनुसार ये प्रणव
सर्वोपरि मन्त्र मान लिया गया। इसी का मानसिक रूप में उच्चारण करते
अथवा स्मरण करते रहने से ज्ञानोदय का आश्वासन दिया गया। इसका
प्रचलित अभ्यास भी हुआ है। उसके परिणामों में व्यक्ति का सदाचार
प्रमाणित सदाचार, सादगी, अपरिग्रह और अहिंसक प्रवृत्तियां प्रमाणित
हुआ है। इन्हीं आचरणों को प्रधानतः आदर्श मानकर सम्मान भी
हुआ है। इसी के साथ जीवन सहज रूप में जो आश्वासन ऐसे
व्यक्ति आश्वासन देने उसके सफलताओं के आधार पर बहुत सारे
लोगों को सिद्ध पुरुष माने गया। और उनका सम्मान भी किये गये।
ये सब होने के उपरान्त भी ऐसे महापुरुषों का आचरण सर्वजन
सुलभ नहीं हो पाया। उसका कारण एक ही रहा, उनका आजीविका
जैसा चल सकता था और चलता रहा वैसा आजीविका चल नहीं
सकता था। इसलिए जो आचरण लोक गम्य नहीं हुआ। दूसरा ऐसे
आचरण के मूल में जो स्वीकृतियां थी स्व कल्याण, स्वान्तः सुख नाम से
जाना जाता था वो स्वान्तः सुख सूत्र अथवा स्व कल्याण का सूत्र शिक्षा और
व्यवस्था, संविधान, और संस्कार गम्य नहीं हो पाया। यहाँ आदर्श चरित्र
व्यवस्था, शिक्षा संस्कार, संविधान के बीच दूरी रह गयी।
इस प्रकार आदर्शवादी सूत्र व्यक्तिगत रूप में पनपता आया
ना तो उसका कोई समाज बन नहीं पाया। यदि कोई एक समुदाय के
रूप दिया पड़ता भी है वह भी अन्य संगठनों के रूप में जो
परिणाम है वही वहाँ भी प्रमाणित होता है। अभी तक जितने भी
सामुदायिक संगठन हुई है यह सब संघर्ष के लिए तैयारी और संघर्ष
में ही ओर्लिमाल होने का उदाहरण देखने को मिलती है। उल्लेखनीय
बात यहाँ पर संघर्ष युद्ध शोषण, द्रोह विद्रोह, हिंसा साम दाम
दण्ड, भेद ये सब अविश्वास और उसकी परम्परा का द्योतक है।
अविश्वास में मनुष्य ना तो कोई व्यवस्था पा सकता और व्यवहार
में सामाजिकता को नहीं पा सकता है। क्योंकि एक परिवार में अविश्वास
ही परिवार को विराम कर देता है अथवा खण्ड खण्ड कर देता है।
मानव परम्परा में व्यवहारिक त्राण और प्राण
न्याय में विश्वास और समाधान में विश्वास है। न्याय में विश्वास
पूर्वक ही परिवार और विश्व परिवार अखण्ड समाज का रूप लेकर
बनी हुई है और समाधान पूर्वक ही सार्वभौम व्यवस्था सर्व-
सुलभ होने का मार्ग स्पष्ट हुई है।
अस्तु संदिग्धता इस बात पर जमती है कि मन्त्रों
को लेकर स्व कल्याण, स्वान्तः सुखाय भी और दौड़ने वाली

(हाशिये पर: शिक्षा और व्यवस्था सर्वजन गामी)

(हाशिये पर: न्याय, समाधान में विश्वास)

शब्द तरंग चिकित्सा
एवं मन्त्र जाप के लाभ

सभी प्रकार के साधना का फल न समाज को मुक्त से नहीं जोड़
पायी तब मन्त्रों के बारे में भी शंकाएं होना स्वाभाविक है।
इसमें निरीक्षण, परीक्षण करने पर पता चलता है कि शब्द तरंग
का स्वास्थ्य पर, मन पर प्रभाव पड़ता है। ऐसे प्रभाव मानसिक विकारों
असन्तुलनों को शमन करने में सार्थक होता है। इसको उन-२
प्रकार के मानसिक असन्तुलन और विकार को परीक्षण कर उसकी
प्रजातियों को समझते हुए अर्थात संग्रह, द्वेष, अविद्या
अभिमान और भय के आधारों पर उत्पन्न विकारों को पहचानने
पर उसके योग्य अर्थात उन-२ विकारों को शमन करने योग्य
और ~~विकृति~~ विकृत प्रवृत्तियों को सार्थक प्रवृत्तियों
में बदलने के प्रयास सहित शब्द, तरंग चिकित्सा को
समायोजित करने पर लाभ होना पाया जाता है। इसी के साथ
स्वास्थ्य सन्तुलन भी ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिए
निश्चित आहार पद्धतियों को पहचानना आवश्यक रहेगा।

मन्त्र स्मरण विधि

मन्त्र व तदुपरान्त पहला किसी मन्त्र को मन से स्मरण
करो। मन्त्र के अक्षरों को सफेद पृष्ठ भूमि पर नीले रंग से लिखा हुआ
स्मरण करो और मन्त्रों को स्वयं सुनता हुआ स्मरण करो।
इन तीनों प्रकार के स्मरण साधना संयुक्त रूप से होने पर मनोगतियां
इन्द्रियों और लोक व्यापार से विरत होते हैं। मन की दृढ़ता बढ़ता
हुआ प्रमाण मिलता है। मन्त्र को देखना, सुनना और बोलना (मन से)

सभी को ईश्वर प्राप्त है

ईश्वर प्राप्त वस्तु है (वास्तविकता जिसकी ~~होना~~ वस्तु है)
ईश्वरीय ईश्वर (सत्ता व्यापक) निष्क्रिय नित्य वर्तमान अखण्ड निरपेक्ष
विधि से भाग विभाग न होने वाला सम्पूर्ण तरंग, दबाव, प्रभाव
अस्तित्व है। ऐसे ईश्वर सबको प्राप्त है। सबको समान रूप से
प्राप्त है। सर्व देश, सर्व काल में प्राप्त है। प्राप्त वस्तु को अप्राप्त
प्रसिद्ध। राजि के नाम, दिव्यात्मा और मानव ~~उनको~~ इसके
लिए प्राप्य है। नैसर्गिकता भी प्राप्त वस्तु है। इस प्रकार से
ईश्वर को भी नैसर्गिक (बिना निरक्रिया के प्रयोजन के प्राप्त)
कह सकते हैं। अधिकतर नैसर्गिकता में धरती, जलवायु,
वनस्पति, जीव इनको नैसर्गिक माना करते हैं। इनमें से
वन और जीव भी प्राप्य वस्तु हैं (जिसको प्राप्त करना है)
जबकि धरती, जलवायु प्राप्त रहता ही है) जबकि ईश्वर

ईश्वर प्राप्ती का स्वरूप एवं फल

सदा सब को समाधान में नियन्त्रित रहते हैं। ये केवल ईश्वरीय
ऐश्वर्य में ही पाया जाता है। क्योंकि अन्य तीनों से सार्थ वस्तुएं हैं।
वह व्यक्ति के साथ न्यूनाधिक रूप में अथवा समय के साथ
न्यूनाधिक रूप में व स्थान देश के साथ न्यूनाधिक रूप में होता पाया
जाता है। इसी प्रकार से सार्थकता में वर्तमान, तापमान और शक्तिमान
भी मान्य होते हैं। उनके संतुलन के लिए मानव प्रयत्नशील मान्य
हो पाता है। अस्तु इन सब सम्बन्ध अध्ययन से ये साफ-२ दिखाई
पड़ता है ईश्वर ही सब को अर्थात जड़ और चैतन्य प्रकृति को समाधान रूप
से सर्वदेशकाल में प्राप्त वस्तु है। अस्तु अस्तित्व के मूल में सत्ता
का होना, सत्ता में ~~सम्पूर्णता~~ ही-२ में सम्पूर्ण प्रकृति का होना ही सम्पूर्ण
प्रकृति को समाधान रूप में प्राप्त होने का स्वरूप है। अस्तित्व में
जीवन जागृति पूर्वक सत्ता में अनुभूत होने का सौभाग्य है।
इसी को परम सौभाग्य, कैवल्य और दृष्टापद गति का गन्तव्य,
जो आचरण पूर्णता के नामों से इंगित कराया गया है। इस प्रकार
ईश्वर के लिए, ईश्वर के नाम से किया गया सम्पूर्ण स्वस्थ प्रार्थना,
उसमें ~~श्रेय~~ औपचारिक प्रार्थनाएं सार्थक होने के क्रम में भिन्न और
देव जीवन सतत सहायक होता पाया जाता है। क्योंकि विकसित
अविकसित को सहायक होना ही उनके विचार का प्रमाण है।

संस्कार

2-5-92- पत्र धरसाहब को।

3-5-92 यज्ञ और दान, दक्षिणा व प्रायश्चित:-

यह शिक्षा गद्दियां राज गद्दियां

दान

दान के सम्बन्ध में विविध समुदाय धर्म गद्दियां शिक्षा गद्दियां राज
गद्दियां इस धरती पर सम्पूर्ण देश काल में सोचता आया। कुछ
दान के सन्दर्भ में कुछ लोगों का कहना है कि योग्य पात्र
को देना चाहिए। योग्य पात्र के बारे में चर्चा करने के उपरान्त ये मान्यता
बना लिया जो कोई भी दान करता है उनसे अच्छे आदमी को योग्य पात्र
माना जाय और कुछ लोग प्रत्येक समुदायों में धर्मशास्त्र, कर्मशास्त्र होते
हैं उसके पीछे रहस्यमयी कुछ परिकल्पनायें होते हैं जिसको ज्ञान कह लेते हैं।
ऐसे रहस्यमय ज्ञान को जो ज्यादा से ज्यादा बना पाता है पर यथार्थ वह
रहस्य में ही रह जाता है बोलने और सुनने वाले दोनों के लिए। इसके बावजूद
सुनने वाले सुनाने वाले को ज्ञानी मानते ही रहे। उसके पश्चात बताने वाली भी ना सम
कर अपने मूल्यांकन करने वाले अथवा मानने वाले अपने को ज्ञानी मानने
लग गया। ये कुछ भी भाषा ~~बोलु~~ बोलते जाते हैं उसी बात को हम
विविध सम्प्रदाय ईश्वर वाणी मान लेते हैं। जिन-२ मुद्दे को हम
समझ नहीं पाते हैं वह सब ईश्वर है, एक भाषा मानव क्रम से
जितना-२ नहीं समझा वह सब ईश्वर है। ईश्वर का कार्य है
जैसा-२ जितना-२ समझा वह सब प्रकृति का कार्य है।

जो नहीं समझे वह सब ईश्वर
जो समझे वह प्रकृति कार्य

ईश्वर ज्ञान
पदार्थ ज्ञान

इस क्रम में ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् ईश्वर रूपी ज्ञान, पदार्थ रूपी ज्ञान। ईश्वर रूपी ज्ञान आज भी एक रहस्य है। पदार्थ ज्ञान आज भी एक अस्थिर और अनिश्चय है। ज्यादा लोग ज्ञानी जैन-२ को कहते हैं, ईश्वर को ज्यादा बताने वालों को ही कहते हैं। जब बताने वाला ज्ञानी है सुनने वाला अज्ञानी होगा ही। 'ज्ञान को कौन सुनेगा?' पूछा जाए तो 'अज्ञानी सुनेगा?'। इस प्रकार से अज्ञानियों का भी बढ़ता गया। ऐसा ईश्वर ज्ञानियों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी। ऐसा ईश्वर जो रहस्यमय ईश्वर है को दिखाने के क्रम में दान भी एक भूमिका है। इस भूमिका में सुपात्र को खोजते-२ तो ऐसी रहस्यमय ज्ञान को बताने वाले सर्वश्रेष्ठ पात्र मान लिया गया। फलस्वरूप कार्य आरम्भ हुआ। फलस्वरूप उसका विस्तार भी हुआ।

ज्ञानी
अज्ञानी

दान के पात्र
दान का स्वरूप

कुछ लोग जो शास्त्र रहे हैं। जो कर्म शास्त्र, धर्मशास्त्र प्रत्येक सम्प्रदायों के और पारंगत हैं। कर्मशास्त्र और धर्मशास्त्र प्रत्येक सम्प्रदायों के मान्यताओं के भिन्न-२ रूपों में बनी हुई हैं। जिसको संस्कारों का आधार माना जाता है। ऐसे शास्त्र वेत्ताओं को सुपात्र माना गया। कुछ लोग यह भी सोचते रहे जो पुजारी हो और कर्मकाण्डों को कराता हो उसके प्रतिफल के रूप में दान देने के लिए ऐसे व्यक्तियों को सुपात्र माना गया। उसके बाद कुछ लोग ऐसा भी बात सोचा धर्म परिवर्तन कार्य के लिए दान देना महत्वपूर्ण उपकार कार्य माना। यह कार्य किसी न किसी धर्म संस्थाओं से सम्बद्ध रहना देखने को मिल रहा है। इसके बाद कुछ लोग ऐसा भी सोचा कि विभिन्न निर्धन विद्यार्थियों या विद्यार्थियों के लिए शिक्षा सुलभ कराने के लिए दान देना उत्तम मान लिया। इसके अनन्तर और भी बातें सोची गयी। मन्दिर, मठ, गिरजाघर, मस्जिद, गुरुद्वारा जैसी विभिन्न सम्प्रदायों को सम्मान स्पर्धा माना जाता है इस सम्पदा स्कूल, कालेज, धर्मशाला जो भी व्यवस्था में अपंग अस्पताल, के निर्माणों में कुआं तालाब आदि पेयजल व्यवस्था के निमित्त / पीड़ित व लोगों को अन्न वस्त्र आदि देने के निमित्त, अकाल ग्रस्त, अनाथ बच्चों का पालन पोषण प्राकृतिक प्रकोप ग्रस्त सभी विपदाओं के समय में दान देना श्रेष्ठ कार्य समझा गया। इनमें से जिसको जो अच्छा लगता है उसमें वह अपना दान प्रकट रूप में अथवा गुप्त रूप दिया जाना प्रचलित है।

प्रायश्चित दान (कष्टछु दान)

प्रायश्चित दान गलती या अपराध की स्वीकृति के उपरान्त किये जाने वाला दान है। इस दान को ~~कष्टछु~~ कष्टछु दान भी कहते हैं। कुल मिलाकर गलती और अपराध का निष्कृति के लिए जो दान किया गया है प्रायश्चित दान है। ऐसे दान द्रव्य को सिद्ध रखी हुई किसी स्वेच्छिक आशय के अनुसार दान किया जाता है। विभिन्न मान्यताओं

मरणोपरान्त कर्म में दान

मरणोपरान्त कर्म जो करते हैं विभिन्न समुदाय, प्राय: सभी समुदाय प्रकारान्तर से मरणोपरान्त कर्म को पालते हुए मनाया करते हैं। इसमें भी दान की बात आती है। और दान को मृतक आदमी के अपने जीवित काल में जैसा-2 अपेक्षा रखा हो वैसा-2 उपयोग में उनके बन्धुओं ने, सन्तानों ने देकर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। इस प्रकार से दान देने के लिए इच्छाएं जागृत करते वो काम और उसका विवरण विधियां आज भी तक जो प्रचलित है वह सर्वविदित है ही। अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित

संस्कार :- अ०मू०मा०के०चि० ज्ञान (जी० वि०) की रोशनी में जो सभी दान सभी दान जिसको हम समझ रहे हैं या मान रहे हैं नियोजित हो पाता है। सभी उपकार प्रकार से उपकार विधि में नियोजित होने आवश्यक है तब दूसरे के विकास के लिए सहायक प्रमाणित हो जाती है। साथ ही यही कर्त्तव्य या दायित्व के रूप में मानवीयतापूर्ण मनुष्य परिवार अपने परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करता ही है। मानवीयतापूर्ण जीने की कला का आधार स्वरूप में वर्तमान रहता ही है। फलस्वरूप मूल और व्याख्या के स्वरूप में प्रधानत: जन्म संस्कार, नाम संस्कार, लोक संस्कार घटना में (स्वयं व्यवस्था और समग्र व्यवस्था मानवीयतापूर्ण धर्म कर्म ~~संस्कार~~ न्यायपूर्ण व्यवहार में पारंगत में भागीदारी और विधिपूर्ण आचरण); विवाह संस्कार (मानव जाति में विश्वास) जाति संस्कार (मानव जाति में प्रामाणिकता और इसमें निरन्तर विश्वास) संस्कार, (मानव की परिभाषा, मानवीयता की व्याख्या में प्रामाणिकता और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में पारंगत और विस्तार); विचार शैली और कार्य विश्वास, और विवाह सम्बन्ध को सार्थक बनाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध प्रणाली से उभय सम्मति सहित गतिशील होने के लिए शरीर और मन के रूप में गतिशील होना आवश्यक है यही है दो शरीर और मन के रूप में अस्तित्व में निर्भ्रम होने का सूत्र है; शिक्षा ~~स्तर~~ दीक्षा संस्कार में समझदारी से परिपूर्ण होना आवश्यक है। ~~समझदारी~~ सम्पन्न होना आवश्यक अथवा समझदारी के बिना ईमानदारी की कल्पना किया नहीं जा सकता। इसलिए समझदारी के लिए सम्पूर्ण शिक्षा, दिशा आधार पर अभी तक दोनों विधा से पाये गये योजना दुष्कर है। संस्कार के आधार पर समाज द्वारा व्यक्ति को

शिक्षादीक्षा संस्कार

यदि कोई व्यक्ति अपनी समझदारी ईमानदारी के साथ संगीत
बना लिया वह उनके जीवन सहज श्रेय है ताकि आदर्श
वादी और भौतिकवादी परम्परा का दिया हुआ शिक्षा दीक्षा।
अतः शिक्षा, दिशा का महत्व मानव में ही प्रमाणित होता है।
इसलिए अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन बनाम
समझदारी से प्रत्येक विद्यार्थी को सम्पन्न करना शिक्षा
परम्परा का कर्तव्य है। दीक्षा परम्परा मानवीयता के निश्चय
और निष्ठा को स्थापित करना देव मानव और दिव्य मानव होने
में जो सहज मार्ग है उसके प्रति सतर्क और सजग करना
दीक्षा संस्कार सार्थक स्वरूप होगा।

संस्कारों से खुशहालियों का अम्बार

उक्त प्रकार से किया गया सफल संस्कार से मानव
सहज, जीवन सहज और विकास सहज, सह अस्तित्व सहज,
कर्तव्य और दायित्व सहज सन्तुष्टियों का अम्बार होना
स्वाभाविक है। खुशहालियों से अपने आप का सौभाग्य में
भागीदार बनने का इच्छा रहता ही है। ऐसी स्थितियों

धन की सार्थकता (गति)

में किया गया दान तत्कालीन उपकार कार्यों में क्रम से क्रम
परिवार ग्राम का उपकार, अथवा विश्व मानव परिवार का उपकार में अर्पित
होना सहज इस प्रकार मानवीयता पूर्ण जीने की कला
परम्परा में सम्पूर्ण दान परोपकार विधि से सार्थक होना सहज है।
गुप्तदान के रूप में यश प्रतिष्ठा का अपेक्षा व प्रदर्शन

गुप्तदान

मानवीय मानसिकता में परोपकार की
अभाव हो जाती है। कई ऐसे
त्याग: आज भी देखने को मिलता है।

दान में यश और स्थान पर मानव परम्परा में कर्तव्य व दायित्व

फलस्वरूप यश प्रतिष्ठा का कसौटी में मूल्यांकित होता
परोपकार में छिपी हुई आदर्श वादिकता की मानव परम्परा में दायित्व
है न कि यश की विधि। क्योंकि परोपकार
और कर्तव्य के रूप में स्वीकृत होता पाया जाता है इसको यही कहना
सकता है या कहा जाना चाहिए कि परोपकार मानव व्यवस्था
का एक आयाम है। इन आयामों को किसी खुशहाली के दिनों
में अथवा किसी वियोग के घटना को सामान्य बनाने के क्षणों
में अपने आप उत्पन्न होने वाले उदारता का सदुपयोग ही
परोपकार है।

मानवीय परम्परा

मानव परम्परा में अथवा मानवीयता पूर्ण मानव
परम्परा में आ समाज और सार्वभौम व्यवस्था का गति निरन्तर
बना ही रहना सहज है। ऐसी स्थिति में परोपकार किसके साथ
किया जाए यह सोचना पड़ेगा। ऐसी मानव परम्परा में दुर्घटनाएं
न्यून होने, रोग सन्ताप, अपंग सन्तानों का जन्म का निराकरण

स्वास्थ्य संयम व्यवस्था के आधार पर सन्तुलित होने से एक दूसरे के साथ परोपकार ही एक मात्र उत्साह के लिए सर्वश्रेष्ठ स्रोत होने के आधार पर जन्म सन्तानसंख्याओं (जनसंख्या) पर नियंत्रण होने की पूर्ण व्यवस्था है।

मानवीय परम्परा में

मानव जब सम्पन्नता सहित परोपकारी होता है उसी समय से उसके की आवश्यकता घटती जाती है। और परोपकारवादी प्रवृत्ति से अथवा पुण्यशील प्रवृत्ति से इसको और कहें तो मानवीयतापूर्ण प्रवृत्ति से सुखकारी कार्य क्रिया परिणाम पुनः क्रिया प्रसवित होना और उसकी निरन्तरता होना सहज है। यही सम्पूर्ण विकारी चक्र भी समाधान है। जब मनुष्य अखण्ड (आवर्तनशील अर्थव्यवस्था) स्नेह, विद्या, सरलता और अभयवादी जितने भी विचार आयेंगे वे सब प्रवर्तनपूर्वक विवेकपूर्ण आचरण, न्यायपूर्ण व्यवहार, समाधानपूर्ण व्यवस्था में भागीदारी की मांग प्रस्तुत करता है। इन तीनों [illegible], परिणाम सहर्ष परिपाकी प्रवृत्तियों का होना पाया जाता है। क्योंकि अमानवीय

मानवीय परम्परा मानी अमानवीय

प्रवर्तनों ने अव्यवस्था, अन्याय और गलती के साथ ही अपने शक्तियों को छोड़ा था। जिसका इतिहास साक्षी है। व्यक्ति-व्यक्ति में, परिवार-परिवार में, समुदाय-समुदाय में कटुतापूर्वक सभी प्रकार से कुकर्मों को कर बैठा, इसी को हम स्वरूप परम्परा मान बैठे। जितने भी इस धरती पर इस समय समुदाय परम्परायें हैं अथवा समुदाय चेतना से प्रभावित परम्परायें हैं वे सब सामाजिक होने योग्य नहीं। इसलिए एक से अधिक मान्यताओं को मिलाकर एक सार्वभौम किया जाना सम्भव नहीं हो पाया। इस प्रकार का प्रयास कई महात्माओं मनीषियों ने किया,

मानवीय परम्परा सार्थक

सभी ढंग से असफलता ही हाथ लगी। दूसरी ओर भी स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि मानव अपने सहज प्रवृत्ति में जीता है तब विकल्प की ओर ध्यान देना ही होगा। मानवीय प्रवृत्तियाँ मानव के लिए सहज इसलिए प्रमाणित होती हैं कि मानवीय प्रवृत्तियों के आधार पर मानव सहज रूप में अपेक्षित अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था सहज रूप में सम्भावित है। जिससे ही मानव परम्परायें शोषण, द्रोह, विद्रोह और युद्ध से मुक्ति, युद्ध प्रयोजन के लिए नियोजित अपार अकल्पनीय मानव तथा धन शक्तियों का बचत होना, साथ ही समाधान, समृद्धि, अभय सहअस्तित्व के लिए सुलभ होना पाया जाता है।

इसी कसौटी में मानवीयता को पहचानने का बोध अध्ययनगम्य होता है। ~~अस्तित्व स्वरूप पर~~

अस्तित्व में कोई रहस्य नहीं — भ्रमित मानसिकता

अस्तित्व स्वरूप कोई रहस्य नहीं। रहस्य केवल मानव कल्पना समझी है। ऐसी सम्बन्धी केवल भ्रमित मानसिकता का द्योतक है। ऐसी भ्रमित मानसिकता का धारक मानव इकाइयां राष्ट्र संस्था, धर्म संस्था, शिक्षा संस्था और संविधान संस्थायें हैं। यही जब तक भ्रमित रहेंगी तब तक अपवाद रूप में कोई-२ इसके चंगुल से छूट पायेगा।

संस्थाओं में — पूर्वोक्त विविध शिक्षा संस्कार, संविधान एवं व्यवस्था की पीड़ा

अर्थ विविध / सार्वभौमिक अथवा प्रयोजन विहीन शिक्षा का दासता, रहस्यमय गम्य स्थली के लिये पाये जानेवाले संस्कार दासता, दिशा विहीन आशावाद वादी वह भी प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, ~~...~~ व्यवहार और न्याय, धर्म और सत्य विहीन शिक्षा दासता न्याय सुलभता विहीन संविधान दासता। व्यवस्था और अव्यवस्था वादी राज्य शासन व्यवस्थाओं परम्परा में पनपती आयी। उन्हीं से जकड़ कर अथवा ग्रसित होकर प्रताड़नाओं से पीड़ित होते ही आए। / धर्म धातीय नहीं बना

4-5-92 मानवीय परम्परा

इस धरती पर मानव के लिए ज्ञान विकसित हो नहीं पाया। अभी इसी की आवश्यकता और अपरिहार्यता अपने आप समीचीन है। इसका तात्पर्य अ० भू० मा० के० चि० ज्ञान, उसपर आधारित विचारधारा और तर्क शैली, शास्त्र, जो शिक्षा के रूप में अनिवार्य होता है। शिक्षा संस्कार आदि के लिए अनिवार्य होता है। ऐसा न उपलब्ध हो गया है इन बोध से विद्या (जीवनविद्या) सहज रूप में समझने आदि। जीवन विद्या की रोशनी में सभी तृष्णा मानव के लिए जो आवश्यक है और आवश्यक रूप में है। विगत की समीक्षा में जो प्रस्तुत है वह सब अज्ञानवश भ्रम परम्परा वश आजीविका के चक्कर में फंसकर दिखाना और इस चंगुल में फंसा गये। चूंकि स्वयं ~~...~~ विरताम होलिए कोई स्रोत नहीं रहा

आदर्शवाद वस्तुवाद

आदर्शवाद के अनुसार ईश्वर के प्रति विश्वास स्थापित होता रहा। साथ ही जीव जगत के साथ अविश्वास करना आरंभ रहा। क्योंकि जीव जगत को माया (माया = दीखता है वैसा रहता नहीं) मानलिया। इस विधि से मनुष्य से मनुष्य के बीच का नाता भी समाप्त हो गया। दूसरे विधि से वस्तु पर विश्वास करना आरंभ हो गया। ये दोनों प्रकार का चक्कर मनुष्य ने ही किया। (किसी जानवर ने नहीं किया) अपने आप से बनाई हुई आज तक जो परम्परा के रूप में फैला हुआ है उसमें मानव सन्तान पीढ़ी से पीढ़ी ~~करता~~ ही गया। इसी विवशता में जीने सहज रूप में कोई-२ ही घटनायें रहा। ऐसा कुछ भागों ने और तल कुछ जागरण प्राप्त भरोसा करता

अद्दे व्यक्ति की अमानवीयता में स्थिति

इसलिए इससे कोई रास्ता निकल जायेगा। एक घटना ही है कि रास्ता बनाने के लिए और बताने के लिए इच्छा रखता हुआ प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो जीवन सहज रूप में छुटकारा पाया। लोग भी विश्वास किये और अपेक्षा भी किये। कोई उज्ज्वल सार्थक रास्ता मिलेगा। ऐसी स्थिति में वे साधक, तपस्वी, ज्ञानी, सिद्ध, अवतारी, देवदूत कहलाने वाले ये सब उसी मार्ग को बताया। पहले से ही रहस्य में डूबते रहे। इस प्रकार की घटनाओं का सिलसिला इस धरती पर बारम्बार होते आया। जितना समुदाय जिससे जितना विश्वास किया वह अपने-अपने ढंग की एक परम्परा बनाता रहा। परम्पराओं का रहस्य (अनेक समुदाय परम्पराओं) बढ़ने के क्रम स्पष्ट हुआ। जब कि ये ज्ञानी, सिद्ध, अवतारी, देवदूत समुदायों के घाटे के उद्देश्य से शुरू करता रहा। यह अवस्था कोई बंद नहीं हो जाता रहा। इस क्रम में सामान्य रूप में एक ही बात छूट रही वह है मनुष्य। मनुष्य में भी जीना। जीवन विद्या के क्रम में जीवन पर विश्वास ही प्रधान होने से ही जीवन प्रकाश में ही ईश्वर, सत्य, ज्ञान स्पष्ट हो जाता है और प्रत्येक मनुष्य प्रमाणित होने का सहज मार्ग प्रशस्त हो जाता है जो स्वयं प्रमाणिकता का स्वरूप है। यही परम सामरस्य का अभिव्यक्ति है। यही मध्यस्थ क्रिया, मध्यस्थ बल और मध्यस्थ शक्ति का प्रकाशन, सम्प्रेषणा और अभिव्यक्ति है। यही परम जागृति का द्योतक है।

व्यवस्था सहज है

इसी के आधार पर अपेक्षित जीवन जागृति के आधार पर ही सार्वभौम व्यवस्था सहज सुलभ होता है। सहज सुलभता इसलिए है कि हर व्यक्ति व्यवस्था को चाहता है, अपनाता है और निर्वाह करने के लिए इच्छुक है। इसलिए इसके लिए सहज मार्ग की आवश्यकता रही। वह जीवन विद्या विधि से करतल गत होता है।

दान लेनेवाला नहीं मिलेगा

इस प्रकार, सम्पूर्ण दान अथवा सम्पूर्ण प्रकार से किये जाने वाले दान का प्रयोजन मानवीयता, देव मानवीयता और दिव्य मानवीयता के अर्थ में सार्थक हो पाता है। जीवन विद्या सहज रूप में मानवीयता से परिपूर्ण देखने पर पता लगता है कि सम्पूर्ण मानव मानवीयता से परिपूर्ण होने पर्यन्त दान की सम्भावना बनी रहती है। मानवीयता से परिश्रम से खोजना पड़ेगा, सम्पन्न होने के उपरान्त दान लेने वालों को किसी न किसी अर्थ में क्यों कि मानवीयता के उपरान्त प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार मानवीयता पूर्ण सन्देश प्राप्त हो ही जाता है। मानव परम्परा में दान सार्थक होने की सम्भावना केवल संतस्व अथवा संक्रमण

घटना ग्रस्त विपन्न, अपंग और प्राकृतिक प्रकोप आक्रमणात्मक रोग से पीड़ित व्यक्तियों के ही के लिए होगी।

यज्ञ :→ भारत में उद्गमित आध्यात्म चिन्तन स्वरूप अध्यात्म ही
अर्थात ऐसा ही सम्पूर्ण जीव जगत को देवताओं का उपादान कारण
माना गया है। जानने की प्रयास यहाँ ही कुण्ठित होता दिखा।
वेद की मान्यता के अनुसार उपर कही हुई बात ज्ञानपक्ष का
समीक्षा है। वेदों में जो भी दो पक्ष है वह उपासना और कर्म।
कर्म की मान्यता में यज्ञ देवों को मिलता है पुण्य अर्जित करना एक उद्देश्य
है। परम उद्देश्य में यज्ञ से मोक्ष को प्राप्त करना है। कर्म का प्रधान
स्वरूप यज्ञ ही माना है। वास्तव ऐसा भी वेद का मानना है यज्ञ से ही
जीव जगत पैदा हुआ। सम्पूर्ण वस्तुएं पैदा हुआ। इस कर्म में जो यज्ञ
का दो भाग है। उसमें से पुण्य अर्जित करने वाले भाग में
जो प्रयोजन कहा गया है वह स्वर्ग आदि भोग मिलेंगे [illegible] कहे।
स्वर्गादि भोग शरीर के माध्यम से प्राप्त होते पाई मिलता है तब जीव
स्वर्ग आदि लोकों में पहुँच कर अनेकानेक सुख भोगों को
यज्ञ से पुण्य भोगता है। सम्पूर्ण कर्म में जैसे स्वीकारी है अथवा मान्यता है
कि यज्ञ, दान, तप ये पुण्य कर्म है। जिसमें से दान व तप के बारे में पहले
समीक्षा किया जा चुका है। यज्ञ का जहाँ तक पुण्य अर्जित की बात है।
उसमें देवी देवताओं को, विशेषकर देवताओं को सन्तुष्ट करने की
बात कही। देवता पुनः वे अपने-2 लोकों में अनेकानेक
सुख भोग सहित (मनुष्य की परिकल्पना सुख भोग की तरफ
जितना जा सकता है उससे अधिक) सम्पन्न रहने की मान्यताओं
को कहा है। उसी आधार पर उन्हीं-2 देवताओं को यज्ञ के द्वारा
विविध सामग्रीयों, समिधाओं के साथ प्रार्थना की इस यज्ञ
द्रव्य को स्वीकारने के लिए अथवा स्वीकारने के अर्थ में कुछ
मन्त्रोच्चारण किया जाता है। इसको नाम कार्य माना जाता है। इसमें

से अलग औषधि यज्ञ के रूप में आदि काल से भी कुछ
मान्यताएं रहे हैं। उसके आधार पर कुछ प्रयोग हुआ भी है।
ऐसे औषधि यज्ञों के बारे में सामान्य रूप में ये कहा जा सकता है
कि विशिष्ट औषधियां जो रोगों को दूर करते हैं जिनके साथ
गाय का घी अथवा तिल का घी समिधाओं के विभिन्न प्रकार के
संयोग से उससे जो धुंआ उत्पन्न होगी उसको [illegible] के रूप
में पहचानने की कोशिश की। जैसा
चिकित्सा यज्ञ :- बिल्व समिधा, बिल्व पत्र घी के संयोग ऐसा जलाने की
विधि व्यवस्था दे कि धुंआ होकर जल सके। उसकी व्यवस्था ये रहेगी कि
निर्धूम अग्नि में कच्चा बिल्वपत्र को घी में डुबो कर रख दे
[illegible] देना और वह जल भी जाता है। इसी विधि से

लाभ — 15 मिनट से 1 घंटे तक आवश्यकता अनुसार धूम सेवन करने से जितने भी पित्त जन्य कफ व्याधि में सहायता मिलती है। पित्त जन्य

लक्षण — कफ में अधिकतर रक्तता का होना पाया जाता है यह स्वरग्रन्थि और गलग्रन्थि के बीच विकार का स्थान बनाता है। गले में सदा ही एक रुक्षता सहित असुविधा बना रहता है। खांसने पर कफ नहीं निकलता। हाँफ-हाँफ बढ़ती है। ऐसे कफ विकारों में इसका धूम अमृत जैसा काम करता है। इसमें स्थूलता यदि शरीर में हो और इसी प्रकार के दोष से पीड़ित हो ऐसी स्थिति में घी में थोड़ा सा हल्दी मिलाकर यथावत धूम सेवन करने से लाभ होता है।

लक्षण व विधि — वात जन्य कफ व्याधियों में केले का लकड़ी और मन्दार (आक) का लकड़ी और पलाश का लकड़ी का निर्धूम अग्नि में घनूरे की पत्तियों को हवन करने से (बिना घी के भी) वातजन्य कफ में लाभ होता है। वात जन्य कफ में छाती के ऊपर के हिस्से में दर्द खांसने पर मूलाधार में दर्द, कई बार खांसने के बाद कफ निकलता था। सांस लेने व छोड़ने समय में कफ का घड़घड़ाहट

तेल विधि — आवाज होना इसका प्रधान लक्षण है। ऐसे लक्षणों में छाती और गले में शुद्ध गाय की कपूर मिला हुआ लेप किया जाता है अथवा रेंडी (अरंडी) के तेल में अजवायन को जलाकर अर्थात 250 ml. तेल + 50 gm. अजवायन अच्छा धोकर तेल में डाल देवें। उसको आग पर चढ़ाकर पकावें। जब अजवायन भले प्रकार से जल जाती / काला पड़ जाता है तब तेल नीचे उतार देवें। नहीं तो तेल में आग लग जायेगी। जब तेल ठंडा हो जाये तब उसको छानकर बोतल में रखें। अथवा नारायण तेल को गर्म करके छाती में लगायें। हवन धूम का सेवन करें इससे लाभ होता है।

कफजव्याधि — कफज जो व्याधि होती है इसके सामान्य लक्षण श्वास नली, श्वास नली और गले में कफ सदा ही बना रहेगा। यह अधिकतर जुकाम, नजला

लक्षण — (संस्कृत में इसका [illegible] नाम है) के रूप में होता है। इसमें भी खांसी कफ आवश्यकता से अधिक आती है। कफ साधारण रूप से निकल जाती है। दूसरा भाग घ्राण तंत्र में गन्ध ग्रहण क्षमता (निकलता नहीं है) भी होता। दूसरा भाग घ्राण तन्त्र में गन्ध ग्राही ग्रन्थि पर आक्रमणात्मक दोष स्थापित होता है जिसमें गन्ध क्षमता घट जाती है और नाक में पानी और छींक आती है। इस प्रकार नजला और कफ दोष स्थापित होता है जो दूसरों धक्का भी [illegible] जिसमें गन्ध ग्रहण क्षमता घट जाती है उसमें बार-बार सांस से आक्रमणात्मक [illegible] बनती है। ऐसे व्याधि में

विधि — पीपल का लकड़ी, पलाश का लकड़ी और चिरचिटा की लकड़ी (अपामार्ग) चिरचिटा की लकड़ी बारम्बार डालते रहना चाहिये उसमें हल्दी मिला हुआ घी टपकाकर डालना चाहिये। मेरे

दीर्घरोग इससे ठीक होगा। इस धूम से आक्रामक व्याधि दूर होती है। ये धूम सेवन करते समय में और बाद में गाय का घी नाक में सुड़कना चाहिए।

मन्त्रों का प्रयोग (कामना, मनोकामना) ऐसे यज्ञकर्मों में मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है साथ ही अपने कामना; मनोकामनाओं को व्यक्त करने के भाषा वाक्य और कविता रचना के रूप में होते हैं। कामना मनुष्य में सहज है। यदि रोग से छुटकारा पाने की कामना मन में रहती है। इस स्थिति में उसकी दवाई की भी कामना।

मन्त्र का उच्चारण

इस प्रकार आवश्यक कामनाओं और शुभ कामनाओं को व्यक्त करना भाषा विन्यासों के रूप में जैसा स्वास्थ्य रक्षा के लिए अन्न ग्रहण करूंगा। स्वास्थ्य रक्षा के लिए औषधि ग्रहण करूंगा। स्वास्थ्य रक्षा के लिए स्वाभाविक रोशनी का सेवन करूंगा। स्वास्थ्य रक्षा के लिए मिट्टी का प्रयोग करूंगा। ये सब चीजें मानव के लिए अत्यावश्यकीय कामनाएं हैं। इन कामनाओं के साथ स्वास्थ्य रक्षा की विधियों को भी समझ रखना उतना ही अनिवार्य है या उससे अधिक अनिवार्य जो कामना करने की आवश्यकता होती है। कामना को भाषा और क्रियाओं से ही व्यक्त किया जाता है। इस क्रम में भाषा के द्वारा हमारे कामनाओं को व्यक्त करना भी एक ईमानदारी का भाग है। ऐसे भाषा के द्वारा ऐसी निश्चित कामनाओं को व्यक्त करते हैं यह सब मन्त्र के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि मन्त्र मन को उतारने के रूप में प्रचलित है। कामनाओं को व्यक्त करते समय में भी इन्हें मन्त्र की संज्ञा भी दिया गया है।

अस्तु कामना और मन्त्र सहित मन्त्रसह औषधि प्रयोग सफल होना प्रयोग सिद्ध है। विश्वास है इस बात पर किसी न किसी अंश में प्रमाणित किया ही होगा। अन्यथा करने में कोई परेशानियां नहीं है।

त्रिदोषजन्य कफरोग यज्ञचिकित्सा

विधि– इसमें पीपल, पलाश, गूलर, आम और बट वृक्षों की समिधाओं को निर्धूम अग्नि बनाये। आम, बेल, अपामार्ग का पत्ता कच्चा तथा अपमार्ग कच्चा (पूरा भाग) इन सबको चूरा करा लें। उसमें चूरे के आधा के बराबर धुला सुखाया अजवायन को मिलाय। अजवायन के चतुर्थांश हल्दी, हल्दी के आधा गो घृत मिलाकर सामग्री को तैयार किये रहे। इस धूम सेवन त्रिदोषजन्य कफ रोगों में लाभ होता है।

त्रिदोष जन्य कफरोग – श्वास, और फेफड़े की व्याधियां, अफारा (T.B.) तक होते हैं इनको इन धूम यज्ञ में जिस रोगी को बैठक देना है वे धूम सेवन करने से पूर्व वरियारी का जड़ (बलामूल) पांच ग्राम, 11 काली मिर्च,

काढ़ा – 11 लौंग में पकाकर डाक गिलास पानी (पाव भर) कढ़ जाये उतार कर गुन गुना रहते पिलाये। उसके बाद धूम सेवन कराये। जो काढ़ा बनाया गया है उसमें अमृता (गिलोय बेल) बीता भर का टुकड़ा अथवा इच्छानुसार काढ़ा में डालकर साथ ही पकाने से गुण बढ़ता है।

लक्षण– खाँसी बहुत आये, कोई ध्वनी मोड़ धातु रूकराने जैसा हो, छाती में दर्द हो, कफ सदा सताता हो। धूप सहन नहीं होता हो। धूप सहन नहीं होता हो। रक्त क्षीणता बढ़ता जाता हो, दुर्बलता से पीड़ित हो। ये सामान्य लक्षण हैं। मुंह में खून सा स्वाद आता हो।

यज्ञचिकित्सा अनुसंधान का क्षेत्र – कफजन्य रोगों में धूम चिकित्सा अद्भुत उपलब्धि है। इसके व्यापक अनुसन्धान को सफल होने की सम्भावना बनी हुई है। उपरोक्त कहे हुए धूम विधि सर्वाधिक (महाराज जी द्वारा) प्रयोग सिद्ध है।

अभी तक विविध प्रकार की समिधाओं का अग्नि और उस अग्नि में धूम के लिए डालने वाली कंदुओं के बारे में संकेत किया है। इसी प्रकार अन्य यज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, ग्रामयज्ञ आदि यज्ञों के बारे में चर्चा किया गया है। तो उसमें प्रमाणिक तथ्यों को प्रमाणिक करना शेष है। इस बीच जो अ.भु.म.के.चि.ज्ञ है उसकी रोशनी में मानव – देवमानव, दिव्यमानव होना दिखाई पड़ता है। देव मानव और दिव्य मानव मानवीयता को सुरक्षित करने और मानव अथवा मानवीयता पूर्ण मानव देव मानव, दिव्य मानव के रूप में प्रमाणित होने के लिए प्रेरणा स्रोत है। क्योंकि विकसित अविकसित का विकास में सहायक होना, अथवा प्रेरक होना उनके विकास अर्थात विकसित का विकास का प्रमाण है। यह विकास सहज, सह अस्तित्व सहज, अस्तित्व सहज और जीवन जागृति सहज तथ्य है। इनमें से प्राप्ति पूर्वक अथवा यज्ञपूर्वक इन का कृपा प्राप्त करने के लिए कामनाओं के अर्थ में मानवीयता की सीमा में जो कामनाएं

होते हैं जिसको शुभ कामना कहा जाता है। उसके लिए उन देवताओं में चाहे शक्ति मात्राओं हो या चाहे उनका सहभागिता प्रेरणा रहेगा ही।

अभ्यास और मोक्ष ~~(निर्वाण, बोध, नि~~

050592

आदर्शवाद के अनुसार मोक्ष

आदर्शवादी विचार के अनुसार मोक्ष के बारे में सर्वोपरि उपलब्धि माना है। इसमें संदिग्धता अभी भी बनी है। जीव को मुक्ति मिलती है या आत्मा को मुक्ति मिलती है उस पर भी काफी विचार हुआ। आदर्शवाद ने एक वस्तु को अपरिणामी मानता है इसके को परिणामकारी मानता है। अपरिणामी वस्तु को कुछ लोग स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते हैं। कुछ लोग मानते भी हैं। ऐसे अपरिणामी वस्तु परिपूर्ण, अखण्ड, व्यापक, आदि सर्वोपरि वैभव को बताने का प्रयत्न किया। ऐसी महिमा सम्पन्न वस्तु को ईश्वर अथवा ब्रह्म नाम दिया। जीव को परिणामी मान लिया। जीव के हृदय में अपरिणामी वस्तु आत्मा के रूप में होना मान लिया। जीवों के हृदय में स्थित आत्मा ~~ब्रह्म~~ या ब्रह्म परमात्मा, ईश्वर का ही अंश माना गया है। इस आधार पर मोक्ष के बारे में मान्यता ये है जन्म-मृत्यु और स्वर्ग-नरक को भोगने वाला जीव के हृदय में ~~वस्तु~~ स्थित आत्मा परमात्मा में विलय हो जाय। और जीव माया में विलय हो जाय। इस प्रकार मोक्ष के प्रति मान्यताओं को स्थापित किया।

भौतिकवादी दृष्टिकोण

भौतिकवाद के अनुसार मोक्ष का कोई स्थान नहीं है। भौतिकवाद के अनुसार शरीर ही जीवन है। शरीर से ही सम्पूर्ण कार्य करता है। इस प्रकार मोक्ष से कहीं दूर-दूर से भी ~~का~~ इसका ~~सम्बन्ध~~ सम्बन्ध नहीं रहता।

संचेतना जीवन का कार्य

ए.म.मु.म.केन्द्रित से के आधार पर जीवन विद्या स्पष्ट हो गया। जीवन क्रिया का अलग से अस्तित्व भी परमाणु में विकास क्रम में अध्ययन के लिए प्रस्तुत है। फिर भी यहां संचेतना जीवन का कार्य है। शरीर का कार्य नहीं है। इसे अध्ययन गम्य कराते हुए संचेतना में ही न्याय और अन्याय का परिशीलन, स्पष्टीकरण, प्रमाणीकरण संचेतना ही करता है। शरीर की पांचों कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां सभी मिलकर अथवा अकेले-2 न्याय और अन्याय को परिशीलन नहीं कर पाते हैं अथवा इन्द्रियों के आधार पर परिशीलन (परिशीलन का तात्पर्य परिष्कृत पूर्वक वर्तमान) नहीं हो पाता। संचेतना के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति न्याय चाहता ही है। साधारण रूप में संचेतना जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने के

जीवन कार्य (संचेतना)

रूपमें प्रत्येक व्यक्ति में कार्यरत है। संचेतना में ही न्याय की अपेक्षा सहज है। न्याय का परिशीलन, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह के रूप में वर्तमान है। इन यथार्थता को हर एक व्यक्ति समझ पाता है। इसी क्रम के आधार पर अर्थात जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने के आधार पर इसी के मूल में 10 क्रियायें स्पष्ट हो जाती हैं वो हैं चयन, आस्वादन, विश्लेषण, तुलन, चित्रण, चिन्तन, ~~संकल्प~~ संकल्प, बोध, प्रामाणिकता और अनुभव ये दस क्रियायें क्रम से दो-दो क्रियाओं का एक-एक नाम ~~नाम रहे~~ - मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा है

इन दस क्रिया और संचेतना का रूप रूप स्वयं में, सो के लिए समझ में आता है। ये ही जीवन प्रकाश है, ये ही जीवन प्रकाश शरीर को भी जीवंत रखता है। इस प्रकार मनुष्य शरीर और जीवन का संयुक्त साकार रूप है। आत्मा जीवन का अविभाज्य वर्तमान है। जीवन का तात्विक रूप गठनपूर्ण परमाणु है। अस्तित्व में सम्पूर्ण प्रकृति साम्य ऊर्जा में सम्पृक्त रहना नित्य वर्तमान है। यही अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व होने का साक्षी है। हर एक प्रकृति की सत्ता में स्पष्ट है। जीवन भी मूल में गठनपूर्ण है। चैतन्य पद में संक्रमित परमाणु जीवन के स्वरूप में प्रतिष्ठित है। प्रतिष्ठित रहने का तात्पर्य अस्तित्व में वर्तमान से है। जीवन शरीर के साथ सहअस्तित्व विधि से है। चैतन्य प्रकृति रूपी जीवन में अथवा जीवन प्रकाश में शरीर समाया रहता है। फलस्वरूप सम्पूर्ण शरीर जीवन्त दिखाई पड़ती है। शरीर के साथ जीवन का प्रभाव भी मेधस के साथ निरन्तर बना रहता है। मेधस पर जीवन संकेतों का प्रसारण होना और जीवन का परावर्तन पूर्वक प्राप्त सभी सूचनाओं को पुनः मेधस द्वारा जीवन के लिए अर्पित होना पाया जाता है। यही प्रत्यावर्तन क्रिया का आशय है

अभ्यास का क्रम

पथ

जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना में संगीतीकरण

जीवन स्वयं अपने की विविध क्रिया कलापों को जो पहले दस क्रिया और चार क्रिया के रूप में बताया गया है, इसका परस्पर जैसा पहचानने निर्वाह करने की क्रिया को जानने, मानने की क्रिया की परस्परता में संगीतीकरण स्वयं समाधान और प्रामाणिकता के रूप गण्य होता है दूसरा जानने, मानने में संगीतीकरण और मानने, जानने में संगीतीकरण स्वयं प्रामाणिकता का प्रकाशन है। इसी प्रकार पहचान में [illegible] निर्वाह करना, निर्वाह करने का पहचानने के क्रिया कलाप में

समाधान, न्याय

[illegible] और मानवीय आचरण प्रमाणित हो जाती है। ये जीवन सहज और मानव सहज है क्योंकि इसकी आवश्यकता

प्रत्येक मनुष्य को अभ्यास का पहला पक्ष है। दूसरा पक्ष

अभ्यास का दूसरा पक्ष — जीवन की दस क्रियाओं के आधार पर होना पाया जाता है। जैसा चयन और आस्वादन को विश्लेषण और तुलन से परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक संगीतीकरण। दूसरा विश्लेषण और तुलन को चित्रण और चिन्तन से परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक संगीतीकरण। तीसरा चित्रण और चिन्तन को संकल्प और बोध क्रिया से परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक संगीतीकरण। चौथा बोध और संकल्प को प्रामाणिकता और अनुभव क्रिया से अथवा प्रकाश से परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक संगीतीकरण क्रिया कलाप। यह साधना का दूसरा स्वरूप है। यह जागृति विधि, विशाल प्रयोजन के अर्थ को प्रमाणित करता है। इसके

अभ्यास की तीसरी स्थिति — प्रामाणिकता के क्रम में विशालता को परीक्षण निरीक्षण करने के लिए अभ्यास की तीसरी स्थिति स्पष्ट होता है कि प्रामाणिकता और अनुभव की रोशनी में अस्तित्व को परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक प्रमाणित करने की क्रिया सम्पन्न होती है। यह भी संगीतीकरण क्रिया का अनुभव और अस्तित्व के परस्परता में अभ्यास विधि फलन है। इस प्रकार यह अभ्यास होना प्रमाणित है उपलब्धि सहित अभ्यास। उपलब्धि सहित अभ्यास क्रम में जागृति पर्यन्त है। इस उपलब्धि सहित समीचीन रहता है। इसका सिद्धान्त है कि भावी के रूप में समीचीन रहता है। इसका उदय शील अनुमान के अनन्तर, अनुभव की सम्भावना मानव के लिए जो परम आवश्यक रहता है। इससे दो प्रकार से प्रयोजन है यह सफल हो जाता है।

पहला अनुभव की निरन्तरता के रूप में

जागृत विधि से सफल प्रयोजन — समीचीन रहना। दूसरा आवश्यकता के आधार पर विशालता का उदय समीचीन है। इसे भले प्रकार से देखा गया है। इससे प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक शरीर काल में देख सकता है। यह व्यक्ति की जागृति के प्रति इच्छा, संकल्प और दृढ़ता पर आधारित रहता है। अन्ततोगत्वा जीवन में उपलब्धि केवल जागृति है। इसीलिए इसे उपलब्धि सहित [illegible] अभ्यास कहा गया है।

जीवन क्रिया के क्रम में मोक्ष का अवधारण — अभ्यास पद्धति को उपलब्धि उपर उपलब्धि सहित अभ्यास क्रम में जीवन जागृति को सम्भावना की संगीत में इंगित कराया। जिससे स्पष्ट अवधारणा जागृति मोक्ष, कल्याण और कैवल्य को पाने सर्व सुलभ हो सके।

आवर्तनशील क्रियाकलाप

नियोजन, बोध का भी आवरण न होना स्पष्ट हो जाता है।
सहज रूप में जीवन जागृति ही इन सभी शब्दों से इंगित हो पाता है।
जागृति ही सर्व मानव का अभीष्ट है। यह अनुभव से विचार, विचार से
व्यवहार, व्यवहार से व्यवस्था, व्यवस्था से आचरण, आचरण से
व्यवसाय, व्यवसाय से उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजन पूर्वक प्रयोजन से
पुनः अनुभव जागृति रहते आवर्तनशील [illegible] क्रिया कलाप है।

मानव परम्परा में ही आवर्तनशीलता — इससे पता चलता है कि मानव परम्परा में ऐसी आवर्तनशीलता
ही सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज एवं भागीदारी में सार्थक होना
सहज है। ऐसी जागृति प्रयोग व्यवहार में [illegible] सुलभ होना ही प्रधानतः
सहज है। ऐसी जागृति प्रयोग व्यवहार में [illegible] उसका उपयोग, सदुपयोग और
मानव परम्परा का गौरव साथ है। उसका उपयोग, सदुपयोग और
प्रयोजन का [illegible] आधार है। इस प्रकार सर्व मानव परम्परा का
सुरक्षा और सदुपयोग का आधार है। इसके व्याख्याओं में [illegible] ही
मानव जीने की कला को विकसित करते होना और उसकी
निरन्तरता को बनाये रखना ही है। [illegible]

अनुभव में सभी आयामों की परस्परता — जागृति सहित अनुभव परम्परा में और एक महत्वपूर्ण
तथ्य स्पष्ट होता है कि अनुभव का व्यवसाय प्रयोग, व्यवहार
आचरण, विचार, चिन्तन अनुभव प्रमाण के लिए अविभाज्य रूप में
अभ्यास अर्पित होता है। इसमें किसी एक आयाम के अनुभव में
अन्य तीनों आयाम जुड़े रहना पाया जाता है।
जैसा अनुभव धारा में शेष तीनों, इसी प्रकार
प्रत्येक एक अनुभव धारा में अन्य तीनों इसके फल पूर्वक तथ्यों
के रूप में वर्तमान रहते हैं। इससे स्पष्ट हो गया कि जागृति
सहज अनुभव की उपलब्धि सहित अनुभव ही अनुभव है।
इसी के साथ यह भी स्पष्ट हुआ मानव परम्परा ही एक मात्र इस
पूर्ण परम्परा है जो जागृति पूर्ण परम्परा अथवा अनुभव

जीवन का अस्तित्व में परम्परा — पूर्ण परम्परा के रूप में प्रमाणित होने योग्य इकाई है।

इकाई तात्विक रूप — मानव अस्तित्व में अविभाज्य इकाई है। मानव, जीवन और शरीर का
संयुक्त साकार रूप है। जीवन अपने में विकास परम्परा में संक्रमित, स्थापित
स्वरूप है। परिणाम का अमरत्व, संक्रमण का बिन्दु भी है।
परमाणुओं में क्रिया शीलता, गति परिणाम के रूप में स्पष्ट होती है।
परिणाम का अमरत्व गठन पूर्णता में स्पष्ट होता है। ऐसे गठन पूर्णता को
भी मानव अपने जीवन प्रकाश में देखने के लिए सामर्थ्य रखता है।
प्रत्येक जीवन का सामर्थ्य अक्षय बल, अक्षय शक्ति के रूप में
समाया है। उपलब्धि सहित साधना क्रम में अस्तित्व और अनुभव के
मध्य संगीतीकरण विधि से अस्तित्व, अस्तित्व में सह अस्तित्व

दृश्य, द्रष्टा
जागृति साधना सीढ़ियाँ
महिमा

विकास अर्थात परमाणु में विकास, जीवन अर्थात गठन पूर्णता पूर्वक संक्रमित पद, जीवन जागृति (जीवन के सभी क्रियाकलापों और उसके प्रयोजनों और तदनुसार कार्यक्रमों के प्रति निष्ठा पूर्वक निष्ठान्वित दायित्व और कर्तव्य को निर्वाह करता हुआ देखने को मिलता है। ऐसे जीवन जागृति का प्रकाशन में अस्तित्व ही दृश्य के रूप में प्रस्तुत है। आवश्यकतानुसार यह दिखता भी है। इसी क्रम में अस्तित्व में जीवन पद का स्वरूप अविभाज्य वर्तमान है। इसी क्रम में अस्तित्व में जीवन पद को जीवन रोशनी ~~देखना~~ सहज है। इस मुद्दे पर जीवन रोशनी में आने वाला दूसरा जीवन, पहले जीवन के लिए दृश्य हो गया।

जीवन प्रकाश में सत्य दृष्टि पूर्णतया ~~क~~ क्रिया शीलता की स्थिति ~~क~~ में अस्तित्व और अस्तित्व में प्रत्येक एक दृश्य के रूप में प्रस्तुत होता है। इस प्रकार एक जीवन द्रष्टा होने के फलस्वरूप अनेक जीवन को देखने योग्य लगता, देखने योग्य योग्यता स्पष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जो जीवन पहले द्रष्टा था वह दूसरे के लिए दृश्य के रूप में हो जाना ~~सहज~~ अस्तित्व सहज है। इस प्रकार जीवन सहज द्रष्टा पद प्रतिष्ठा के लिए एक दूसरे जीवन के लिए दृश्य होना स्पष्ट होता है। जैसा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को समझता है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिए दृश्य है। इसी प्रकार सम्पूर्ण मानव एक दूसरे के लिए दृश्य द्रष्टा होना सम्भव है। यह जागृति क्रम में जागृत परम्परा में होने वाला सहअस्तित्व प्रमाण है। सम्पूर्ण प्रमाण प्रयोग, व्यवहार और अनुभव है। मानव परम्परा में अनुभव ही प्रमाण परम है। अनुभव ज्ञान क्रम अर्थात अस्तित्व में विकास, अस्तित्व में जीवन, अ. में जीवन जागृति, अ. में रासायनिक भौतिक रचना व विरचना ओं ~~क~~ आंशिक क्रम में प्राप्त जागृति अर्थात जैसा जो है, जैसा जिसका अर्थ है, सम्पूर्ण के साथ वर्तमान जैसा है ~~??~~ इस रूप में मुद्दों पर जागृत हो जाना ही अनुक्रम से प्राप्त जागृति है। जागृति जीवन सहज ऐश्वर्य होने से, कारण जीवन प्रकाश में अस्तित्व में क्रम अर्थात विकास क्रम और रचना क्रम सहज ही स्पष्ट हो जाता है अर्थात स्पष्टतया समझ में आती है। फलस्वरूप ~~अस्तित्व~~ अस्तित्व स्वयं समग्र व्यवस्था होने का प्रमाण अनुक्रम विधि से प्रमाणित हो जाता है। ये विधियाँ विकास, पूरकता, उदात्तीकरण और जागृति है। जागृति

विकास, स्वत्व, उदात्तीकरण, जागृति

(३०.१.९४)

बोध से दूसरा पक्ष प्रमाणित होता है। स्पष्टता। लोकेषणा-पाप और समाधान प्रमाणित हो जाता है। इससे जो स्थान रचना पद भौतिक रचना से रासायनिक रचना की रूप में, रासायनिक रचना जो अणु, अणुरचना, अणुबंधन, अणुवंश रूपों में प्राणावस्था की रचनायें, जीवावस्था की शरीर रचनायें और ज्ञानावस्था के शरीर रचनायें, इकाईयों का साथ में है में ही स्पष्ट होती है। जीवन्त ज्ञानावस्था स्वयं में मानव शरीर और जागृत मानव शील जीवन के मध्यस्थ मत में निरंतर सहज मानव परंपरा का सौभाग्य रहा है। इसका उद्देश्य को समझे, अधिकार को समझे।

सहअस्तित्व (मनुष्य-२४)

सहअस्तित्व सहज रूप में जीवन और शरीर के संयुक्त साकार रूप में जो मानव अनेक मनुष्य के समान रूप में प्रमाणित होना चाहता है यह प्रत्येक जीवन के रूप में अक्षय शक्ति अक्षय बल के रूप में समान है। शरीर के रूप में विविधता देखने को मिलती है। आचरण के रूप में जब तक मानवीयता परिपूर्ण नहीं हो पाते हैं तब तक आचरण व्यवहार में अपना पराया का परिकल्पना और लुका छुपा दिखावा प्रकार की आचरणों को अधिकांश पाया जाता है। यह अमानवीयता का द्योतक है। मानवीयता पूर्ण संस्कार मानव में आत्मीयता और विश्वास को समानता के आधार पर आचरण व्यवहार होना पाया जाता है। यह किसी-२ व्यक्ति में और किसी परिवार में आज भी प्रमाणित होता है। इससे यह ज्ञान अथवा समझदारी स्पष्ट होती है जीवन सहज रूप में ये सब और मनुष्य अखण्ड है। इसका मूल्यांकन विवेचन ना होने के कारण अर्थात मूल्यों के आधार पर मूल्यांकन न होने के कारण भय और प्रलोभन से ग्रस्त, त्रस्त परम्परा मूल्यों और स्वस्थ सदाचारिता को अवमूल्यन करता ही रहा। यह भी प्रमाणित होता रहा कि विद्रोह आत्मक घटनाओं से। इसका तात्पर्य ये हुआ भय और प्रलोभन के चक्कर में फंसने के फलस्वरूप मूल्य और मूल्यांकन की ओर जाना संभव नहीं हुआ। इस धरती की सम्पूर्ण राजगद्दी और राज्य गद्दी भय और प्रलोभन के आधार पर आधारित है इसको छोड़कर मूल्य और मूल्यांकन की ओर संकेत होता आगे तक किसी समुदाय धर्म और राज्य गद्दियों गद्दियों का तात्कालिक प्रमाणित

जीवन सहज रूप में अखण्ड व्यक्तित्व का विचार में; मूल्यांकन नहीं हुआ

अमानवीय परम्परा का बीज

उन्मादत्रय

भय और प्रलोभन एवं मान्यता के रूप में तथ्यों पर आधारित न होकर विकारों पर आधारित होना पाया जाता है। मनुष्य में भ्रमात्मक स्थिति वश विकारों का प्रताड़न देखने को मिलता है। कामावेश लोभावेश और मोहावेश प्रवृत्तियां मानव में विकारों के रूप में गण्य होती हैं। जिसमें से लाभोन्मादी प्रवृत्तियों को आदिकाल से ही मानव मानस में भ्रमित धर्म संस्कार परम्परायें, विविध प्रकार से बढ़ावा देता रहा। इसके विपरीत भय का उत्तरोत्तर मात्रा में होना देखा गया (भय क्रोध, मद, मात्सर्य के रूप में मनुष्य में स्पष्ट हुआ)

आदर्शवादी लोभोन्माद

भौतिकवाद ने भोगोन्माद लाभोन्माद कामोन्माद को जन्म कराया लोभोन्माद प्रयोग किया

जबसे भौतिकवादी चिन्तन आया वह लाभोन्माद के कामोन्माद और भोगोन्माद को जैसा पहले से लाभोन्मादी पाठ ~~अथवा~~ शिक्षा गत रहा उसी प्रकार भोगोन्माद और कामोन्माद को भी शिक्षा गत किया गया। उसको ~~सम्म~~ मानव समुदायों ने अथवा सभी समुदायों ने स्वीकार कर लिया। आगे भी इसके उपलब्धि हुए और विशेषज्ञता का प्रबन्ध उसका मूल्यांकन और सम्मान नमन और पैसे के रूप में किया जाता। शिक्षा संस्थाओं का गौरव माना जाता है ये तीनों उन्माद अपने पराकाष्ठा की ओर गतिशील होने के अधिकांश प्रजातन्त्र एकदेशीय तन्त्र और धर्मशासन तन्त्र लोकमांग के नाम से काम करता ही आया। अर्थात तीनों उन्मादों को जो इन तन्त्रों में कार्यरत व्यक्ति अपने इच्छाओं को पूरा करने के लिए भरसक प्रयास किया और करने के लिए दिन-2 उन्माद बढ़ाने की तरीकों को खोज ~~निकाला जाता~~ जाता है। और उसको जन सुलभ करने का प्रयास किया जाता है।

विकार निवृत्ति के केन्द्रों से विपरीत प्रेरणा

धर्मतन्त्र विकारों से मुक्ति की बात तो करता है। वह भी विशेषकर आध्यात्म साधना के क्रम में देखा जाता है। यौगिक की बात यही है सबसे ज्यादा से ज्यादा आध्यात्म साधना धर्मगद्दियों में भी सम्पन्न होते पाया इसके आधार पर जो उन्माद त्रय के बारे अथवा विकार निवृत्ति के बारे में सोचा गया होगा क्योंकि इन सब अर्थात धर्म गद्दियों विरक्त मठ धर्म प्रचार गद्दियों में सम्भावित सुविधा साधन एकत्रित हुआ देखा गया विकार निवृत्ति की बात कहने वाले ये सब साधन सुलभ हो सकता है उस स्थिति में उन्हीं के लिए आसक्ति होना। जो विकार निवृत्ति के लिए गया हुआ व्यक्ति के लिए यह भाव सहित प्रवर्तन हो। विशेषकर यही परिणाम आजकी स्थिति में देखने को मिलता है।

राजनीति के चेहरे

आजकी स्थिति में सफल राजनेताओं का स्वरूप इस प्रकार उभरा और कीर्तिमान हुआ जैसा अखबारों में चेहरे और खबरों के रूप में वे सब जो सफल हुए उनकी सफलता का राज सफलता के लिए बड़ी मेहनत और ईमानदारी को पाठ पढ़ाया अथवा नारा देना

वर्तमान सफल धार्मिकता व राजनीति कार्यकलाप

अपने कोश संग्रह को मंदिरों के, बैंक गोदामों में संग्रह करने के रूप में प्रचलित रहे। सफलता कामी ऐसा स्वरूप शरीर को त्यागकर वैराग्य का पाठ पढ़ाया और अपने कोश संग्रह को राजकोष के रूप में [illegible] प्रचलित हुई। इससे अधिक धर्म के मठाधीशों और मठाधीशों से मानव को और क्या मिल सकता है। इसी तरह [illegible] ये सब प्रश्न [illegible] लग जाते हैं।

जागृति और मौन एवं विशाल बोध

060592

जीवन जागृति विशाल बोध में प्रमाणित होता है। जो प्रखरता और प्रजीतता की निरन्तरता के अर्थ में सार्थक होता है। जागृत बोध ही नियमित मानवीय आचरण, व्यवहार और व्यवस्था एवं अनुशासन के रूप में प्रमाणित होता है। जबकि मौन बोध साधना (समाधि और समाधान लक्षित साधना) क्रम में मनुष्य को स्वान्तःसुखित होता हुआ देखने को मिलता है। अन्य जो आयाम है जैसे (समग्र आचरण) आचरण, व्यवहार और सार्वभौम व्यवस्था का जो प्रेरक, धारक वाहक होने के स्थान पर इससे विरक्त होने की बात प्रमाणित है। इसके विपरीत परम्परा साम्प्रदायिक रहस्यवादी सामाजिक। समुदाय श्रेष्ठता के मूल में विचार शैली और दर्शन प्रभावित करता ही रहा। यही प्रत्येक समुदाय के साथ बनी हुई गति रही। इस क्रम में प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी सामुदायिक परम्पराओं की अवधारणा के साथ प्रौढ़ होता पाया जाता है। अभी तक विभिन्न देशकाल समुदायों में संस्कारित शिक्षित मानव विवेक विचार और ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति के रूप में स्वीकारना कठिन सा है। देश काल में समुदाय से प्रभावित व्यक्ति जब साधना रत होता है तब समाधि सम्पन्न व्यक्ति अधिकतर उन-उन परम्परा के मूल में दर्शन और शास्त्रों का समर्थन करता हुआ प्रमाणों में मिला (उससे लिखी हुई अथवा कहे गये वांग्मय के रूप में) इससे पता चलता है कि प्रत्येक समुदाय चेतना से प्रेरित समाधि सम्पन्न व्यक्ति आप, समुदायों को जो व्यक्त करता वे वह समुदाय परक हो जाता है अथवा उन्हें प्रेरित समुदाय अपनी ही बात कह रहा है ऐसा मान लेना है। फलस्वरूप समाधिस्थ व्यक्ति की सार्वभौमता अथवा उनके द्वारा कहे गये वांग्मय का सार्वभौमता अर्थात सर्व मानव स्वीकार्य स्वीकारयोग्य हुआ नहीं। अथवा स्वीकारा नहीं। ना स्वीकारा तो क्या मानव अथवा समुदाय चेतना पर निर्भर हुआ। [illegible]

सार्वभौमिक मानवीय परम्परा नहीं बना सकी

समाज में स्थापित समुदाय चेतना है

समाधिस्थ या सिद्ध व्यक्ति की स्थिति एवं जनसाधारण का स्थान

व्यक्ति ने होना वाङ्गमय में कुण्ठा, शंका या शेष रह जाने के रूप में और विचलनों में पहचाना जाता है। हर समुदाय अपने दर्शन और शास्त्र के मूल में किसी महापुरुष को ईश्वरीय महिमा को देखा अथवा वाणी को सुना हुआ मान लिया है। समाधिस्थ व्यक्ति जो कुछ भी व्यक्त करता है स्वयं के मन विचार संकल्पों के मौन होने का बखान करता है। जो कुछ भी सकारात्मक बात कह पाता है ईश्वरीय महिमा को ही एक सन्देश के रूप में कहना चाहा है। यह स्वाभाविक रूप में सभी देशकाल समुदाय सम्बन्धी साधकों का वक्तव्य से प्रमाणित हो जाता है। जब कि ईश्वर रहस्यमय में रह जाता है। और उसकी महिमा एक चमत्कार के रूप में इंगित हो पाता है। इसलिए ईश्वर और ईश्वरीय महिमा व्यवस्था और शिक्षा गम्य नहीं हो पायी। ऐसे महापुरुष जो समाधि सम्पन्न हैं ऐसे लोगों के आचरणों में ईश्वरीय महिमा को मानने की प्रवृत्ति सभी समुदायों में आदर्श भी देखने को मिलता है। इसके साथ यह भी मान्यता चल कर आती है कि सभी महापुरुष नहीं हो सकते हैं। इसलिए महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, आस्था, पूजा प्रार्थना अथवा ईश्वर के प्रति श्रद्धा, आस्था, पूजा प्रार्थना में विश्वास करने के लिए बाध्य हुआ। इसी को प्रकारान्तर से धार्मिक प्रतिबद्धता कहलाता है।

धार्मिक प्रतिबद्धता वादविवाद

प्रत्येक समुदाय देश काल में ऐसे श्रद्धा आस्था पूजा प्रार्थना का आधार वाङ्गमय के रूप में, उसके मान्य अर्थ के रूप में और उसकी महिमा के रूप में विविधता होने के कारण यह दूसरे के साथ तालमेल न होना फलस्वरूप वादविवाद मतभेदों का दीवाल बनना, वह कटु द्वन्द्व या कटुता का रूप धारण करना। फलस्वरूप द्रोह विद्रोह, शोषण और युद्ध का जुड़ हो जाना इतिहास के अनुसार देखा गया।

मौन विधि से ईश्वर एवं उसकी महिमा में सार्वभौमता नहीं

मौन साधना अथवा निर्विकल्प साधनाएं मौन पद्धति से चलकर परमगति स्थिति को समाधि और उसकी अभिव्यक्ति में ईश्वरीय महिमा और उसके अर्थ को बताने के क्रम में कोई सार्वभौमता तो अभी तक नजर नहीं आया। इस साधना क्रम में मन की चंचलता विचारों का वेग, संकल्पों का प्रभाव, ये सब को बाधा माना गया (समाधि के लिए) जबकि जागृति क्रम में भिन्न परिस्थितियाँ बनती हैं और प्रमाणित होती हैं।

मानवीयता ही आधार

सम्पूर्ण मानव में मानवीयता ही व्यवस्था का आधार है। मानवीयता मानव का स्वत्व है। मानव मानवीयता को स्वत्व के रूप में पहचानना ही मानवीय आचरण, व्यवहार और व्यवस्था का आधार है।

मानवीयताओं से मानवीय आचरण, व्यवहार एवं व्यवस्था का आधार

मानवीयता विचार एवं व्यवहार होने के लिए आवश्यकीय तत्वों को अनुसंधानित कर जांचा गया है। मानवीयता को पहचाना हुआ मानस, विचार, और संकल्प के योगफल में मानवीय आचरण और व्यवहार व्यक्त होता है। मानवीय आचरण में मानवीय मूल्य, मानवीय चरित्र मानवीयता एवं नैतिकता का संयुक्त रूप आचरण में स्थापित होता है। मानव मूल्य धीरता वीरता उदारता के रूप में पहचानने को मिलता है। मानवीय चरित्र सम्पूर्ण आहार, विहार पद्धति, प्रणाली नीतियों के रूप में व्यवस्थापित होता है। साथ ही उत्पादन कार्यों के रूप में भी स्पष्ट होता है। नीति. नैतिकता प्रत्येक मनुष्य परिवार में प्राप्त होने वाली तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग (मानवीयता में अर्पण, समर्पण सेवा के रूप में) सुरक्षा (सम्पूर्ण उदारता के परिप्रेक्ष्य में) जैसा किसी के लिए उदारता पूर्वक औषधि सेवा अर्पित हुई यह सदुपयोग के रूप में उस व्यक्ति का स्वास्थ्य हुआ। ऐसे अर्पित समर्पित किया। जिससे किसी के तन अर्पण, समर्पण को प्राप्त किया उसका सरक्षण हुआ।

जागृत विधि से समुदाय से विलय चेतना मानवीय चेतना विशालता की ओर जागृति विधि से मन वृत्ति चित्त बुद्धि और आत्मा का अध्ययन सहज शक्ति उपयोगिता सदुपयोगिता, और प्रयोजनीयता विधि से विशालता और जागृति प्रमाणित हो जाती है। चरित्र, व्यवहार, व्यवस्था, विचार और अनुभूतियों में परस्पर सामरस्यता प्रमाणित होती है। फलतः सार्वभौम होना और अखण्ड समाज, सार्वभौम का होना समीचीन है। अस्तु जागृति विधि से चलकर अभ्यास पूर्वक प्रत्येक व्यक्ति अपने उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनीयता को प्रमाणित कर सकता है। सार्वभौम एक ही शरीर यात्रा में परम प्रयोजन रूपी अथवा जागृति प्रमाणित होना समीचीन है। जिससे जितने भी समुदाय चेतनाएं इस धरती पर हैं वह सभी मानवीय चेतना में विलय होने का व्यवस्था है।

व्यवस्था ही बदले हैं व्यक्ति जैसा सोच को बदलता है वैसे ही समुदाय भी सोच को बदलता है। प्रत्येक परिवार समुदाय व्यवस्था को बदलता है। व्यवस्था जागृति पूर्वक ही अथवा जागृति क्रम में ही सार्वभौम होने की व्यवस्था

व्यवस्था एक व्यक्ति या परिवार की नहीं व्यवस्था एक व्यक्ति के अधिकार में अथवा एक परिवार के अधिकार में नहीं होती। ये प्रत्येक व्यक्ति अपने में एक व्यवस्था। (मानवीय आचरण एवं व्यवहार) और समग्र व्यवस्था (परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था) में भागीदार होने के रूप में सार्वभौम होता है। यह जागृति क्रम व्यापकता में, जागृति पूर्णता से सम्पन्न होने वाली कार्य है

जागृति को पूर्णतया अनुभव करने के बाद ही व्यवस्था सर्व सुलभ

इसके लिए मूल प्रमाण की आवश्यकता रहती। यह पूर्णतया अर्थात जागृति को पूर्णतया अनुभव करने के उपरान्त ही सर्वमानव सुलभ होने के समीचीन होने के फलस्वरूप यह सम्पूर्ण सूत्र और व्याख्या मानवीयता और मानवीय परम्परा के अर्थ में समर्पित हुआ है।

जागृति विधि से मानवीय परम्परा

जागृति परम्परा में प्रत्येक मनुष्य सहज ही भागीदार है। फलतः कर्तव्य दायित्व वाद प्रत्येक व्यक्ति में प्रमाणित हो पाता है। इसी क्रम में मनुष्य अपने में एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होने की स्थिति समीचीन हो जाती है। इसी तथ्य पर आधारित होकर परिवार मूलक स्वराज्य योजना और मानवीय शिक्षा संस्कार योजना मानव के लिए अर्पित किया गया है। अस्तु जागृति क्रम विशालता विधि सम्पन्न सम्पाद्य विधि से सहज ही मानव सामाजिक हो जाता है। सामाजिकता का तात्पर्य मानवीयता पूर्ण परम्परा से है। इसी भाषा में वर्ग और समुदाय विहीन मानव परम्परा से है।

08-06-92

साधक समस्या और समाधान

साधक का सहज स्वरूप है सुधरने की तीव्र इच्छा रखने वाला व्यक्ति। सुधरने का ज्वलन्त स्वरूप प्रश्नों का उत्तर पाना, विकारों का निराकरण पाने में ध्रुवीकृत है। इन दोनों पक्षों से जो सम्पन्न है वही साधु कहलाते हैं। साधुता ऊपर कहे हुए तथ्यों से स्पष्ट गयी। इस प्रकार साधक अपने में साधक गुणों से सम्पन्न होता है तब उसके लिए साध्य सर्वतो मुखी समाधान और उसी में विकार मुक्ति भी समा जाती है। इस प्रकार साध्य का पहचान सुस्पष्ट रूप में सर्वतोमुखी समाधान ही है। जो अस्तित्व सहज, सहअस्तित्व और विकास सहज रूप में सुस्पष्ट है।

अस्तित्व अपने में नित्य वर्तमान होना प्रमाणित है। क्योंकि वर्तमान का अभाव मनुष्य की कल्पना में नहीं आती। स्थिति में नहीं पायी जाती। इसलिए वर्तमान को नित्य सत्य के रूप में दृष्टि गोचर कर लेना ही दृष्यपद प्रतिष्ठा सहज प्रयोजन है। ऐसे प्रयोजन सम्पन्न अर्हता प्रत्येक व्यक्ति में जीवन सहज रूप में समाहित है। प्रत्येक मनुष्य जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में वर्तमान होने के फलस्वरूप

यह जीवन सहज और शरीर सहज क्रिया कलापों का पहचानने के लिए स्वाभाविक रूपमें प्रश्नों का उदय होना पाया जाता है। इसी क्रम में समग्र शरीर और सम्पूर्ण जीवन सम्बन्धी तथ्यों को निर्भ्रम रूप में पहचानना जीवन सहज / मानव सहज कार्य है। मनुष्य में ही कर्म स्वतंत्रता और कल्पना शीलता नित्य प्रभावी होने के कारण इसमें निरन्तर भ्रम होने की सम्भावना समीचीन है। इसी स्पष्टतावश प्रत्येक मनुष्य सम्पूर्ण प्रश्नों का उत्तर, विकारों का निराकरण चाहता है। ये दोनों उपलब्ध होने के क्रम में विद्या, विद्वता, और विद्वान होने का क्रम मानव सहज है।

सम्पूर्ण समस्या विद्या, विद्वता और विद्वान होने में अथवा इनमें संगीतीकरण होने में जितना अन्तर्विरोध रह जाती है यही सम्पूर्ण समस्या का कारण है। समस्या का समग्र स्वरूप अव्यवस्था का समग्र है। अव्यवस्था को मनुष्य नहीं वरता। व्यवस्था को ही वरता है। व्यवस्था सर्व सुलभ होने के लिए मानवीयता पूर्ण परम्परा ही एक मात्र उपाय है। जिससे सर्वतोमुखी समाधान सबको सुलभ होना सहज है।

मूलतः अपने में अर्थात जीवन सहज वैभव के रूपमें सुधरने को अर्थात सम्पूर्ण प्रश्नों एवं विकारों मुक्ति के लिए जो साधना अपेक्षित है और प्रत्येक व्यक्ति उसके लिए अधिकारी है वह ऐसी साधना अभी तक नीति विधि पूर्वक सम्पन्न करने की विधियों को अपना लिया। यही अनेक साधना परम्पराओं के रूप में विद्यमान हैं। जो सर्व विदित है। जीवन विद्या (ज्ञान/विद्या) के आधार पर साधना क्रम जागृति विधि सम्पन्न होना पाया जाता है उसका सामान्य स्वरूप भिन्न नहीं है।

ईमानदारी से कार्य करने पर कठिनाई स्वयं ध्वस्त होती जाती है। समझदारी से ईमानदारी की सार्थकता है। अपना न्याय जगन्नाथ।

① चयन और आस्वादन पर न्याय की किरण डाली।

② सभी कल्पनाओं के ऊपर (सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक, धार्मिक सभी दिशाओं में) न्याय की किरण डाली। विश्लेषण के एक प्रकाशन को ही कल्पना कहते हैं।

③ चिन्तन तो बहुत विस्तृत है। उन चिन्तनों को जैसे हम चाहते हैं उसका नाम है इच्छा। इच्छाओं पर न्याय की किरण डालते हैं। संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था ये चिन्तन का प्रधान भाग है। चिन्तन में भौतिक रासायनिक चिन्तन भी समाहित रहती है (पहाड़, समुद्र नदी, पृथ्वी ग्रह गोल आदि की रचना स्वरूपों के सन्दर्भ में जिज्ञासायें। रासायनिक में सम्पूर्ण वनस्पति और शरीरों का रचना अंडज, पिण्डज आता है। मनुष्य अभी रासायनिक रचनाओं को नहीं बना पाया।)

④ प्रयोजनों की रोशनी में चित्रण, तुलन, विश्लेषण, आस्वादन और चयन की एकरूपता को पा लेना है। विज्ञान और विवेक का संयोजीकरण आर्थिक साधना थी। अब योजना बन गयी। योजना के आधार (क्रियान्वयन)।

⑤ जितना बोध हुआ है (अस्तित्व, अ॰ में सहअस्तित्व, अ॰ में विकास, अ॰ में जीवन, अ॰ में जीवन जागृति, अ॰ में रासायनिक-भौतिक रचना विरचना ये बोध का सम्पूर्ण वस्तु है) इसमें क्या बोध हुआ, क्या नहीं हुआ इसको प्रयोजन (सर्वतोमुखी समाधान) के प्रकाश और अनुभव के प्रकाश (प्रमाणिकता) में परीक्षण करते है।

अब दोनों तरफ से किरणों का उपयोग किया। जीवन शक्तियों का प्रयोग किया। सम्पूर्ण योजनाओं के प्रति निर्भ्रम होता गया या विश्वास पाने लगे। साथ ही ज्ञान व विद्वता के प्रति दृढ़ता बढ़ने लगी। जैसे-२ योजनाएं स्पष्ट होती गयी वैसे-२ मेरा विद्वता और ज्ञान में सार्वभौमता स्थापित होता गया। जीवन ज्ञान विद्या अस्तित्व में निर्भ्रमता, विद्वता, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी, अखण्ड समाज और उसमें भागीदारी = विद्वान।

जीने की कला = विज्ञान।

060192 331, नालन्दा बाबाजी के साथ (बाबा मुन्डे)

उपलब्धि सहित साधना उपासना

साधना उपासना के साथ प्रतीकों से कैसे मुक्त हो?

प्रत्येक मनुष्य अपने में, अपने मूल रूप में जीवन है। शरीर भी जीवन के लिए एक प्रतीक है। जीवन के अपने सम्पूर्णता में किये जानेवाले सभी क्रिया कलाप जीवन में, जीवन से, जीवन के लिए प्राप्त किया। ऐसी प्रवृत्तियां अर्थात क्रिया कलापों की प्रवृत्तियों को २ प्रकार से पहचाना जाता है।

(अ) जीवन संचेतन शील कार्य — जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह करना

(ब) जीवन ज्ञान कार्य → पहचानने की विधि है। इसके ५ स्तर हैं। इसमें १० क्रियाएं। यह भी प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त है।

मूल्यांकन अनुभव

1. चयन, आस्वादन
2. विश्लेषण, तुलन
3. चित्रण, चिन्तन
4. संकल्प, बोध
5. प्रामाणिकता, अनुभूति

मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा

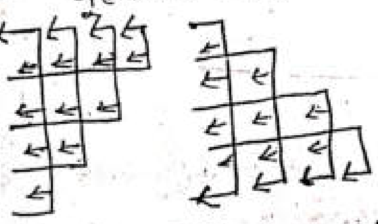

मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा का क्रिया इन परस्पर दो-२ क्रियाओं में क्रमशः मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि आत्मा का क्रिया कलाप होना पाया जाता है। इनकी परस्परता में जैसे मन और वृत्ति की परस्परता में वृत्ति मन का मूल्यांकन करती है और मन वृत्ति का अनुभव करता है अर्थात मन वृत्ति के प्रभाव क्षेत्र में अर्पित होता है। स्वंय से कम का मूल्यांकन और अधिक का अनुभव होना सास्वत नियम है। इसी विधि से आत्मा- बुद्धि का मूल्यांकन करता है और अस्तित्व में आत्मा अनुभव करता है। इस क्रम से उपलब्धि सहित अभ्यास और चिन्तन जीवन सहज है। सारे क्रिया कलाप जीवन में है।

18-03-92 सौभाग्य सदन (वैशालीनगर) भिलाई। साधना (बाबाजी के साथ)

(i) कौन से कार्य का चयन कर रहा हूँ?
(ii) कार्य का वस्तुओं में कैसा, क्या चयन कर रहा हूँ? (इन तीनों पर शरीर के सम्बन्ध में चयन देखा।)
(iii) शरीर के लिए कौन सी वस्तुओं का चयन कर रहा हूँ?

दोषपूर्ण मिलो — (I) स्वार्थ सम्बन्धी (II) समाज और व्यवस्था सम्बन्धी। मैं चित्त पर रहा हूँ। इसके आधार पर स्वंय का विश्लेषण और तुलन की संगीत पूर्वक उसका तृप्ति बिन्दु (सन्तुष्टि) को पहचान लिया। साधना का साध्य बिन्दु स्पष्ट हुआ, करतलगत हुआ। धीरे-२ चित्त रसा चली जाती है। चयन हुआ तो आस्वादन के लिए ही होता है। तुलन होता है तो विश्लेषण से ही प्रमाणित। पहले क्रम से कायिक, वाचिक, मानसिक, कृतकारित अनुमोदित सभी क्रियाकलापों में सम होने वाले चयन और आस्वादन को न्याय (प्रधानतः न्याय दृष्टि से परिपूर्ण) धर्म व की दृष्टियों से पहचानेंगे। अतिव्याप्ती (अधिमूल्यन), अनाव्याप्ती (अवमूल्यन) अप की दृष्टियों से पहचानेंगे। अतिव्याप्ती (अधिमूल्यन), अनाव्याप्ती (अवमूल्यन) आदि दोषों से भी बचेंगे।

(अमूल्यन)— वस्तु के विपरीत या भिन्न मूल्यांकन) आदि दोषों से भी बचेंगे।

सम्पूर्ण प्रमाणिक, हित, लाभ की सीमा में आं कलित होता है। फलस्वरूप प्रथम पाद की परिस्थिति सम्पन्न होता है। उसका प्रभाव व्यव में स्पष्ट दिखाई पडता है।

जैसे — लाभ प्रवृत्ति - असंग्रह प्रवृत्ति में न्यायिक हो जाता असंग्रह प्रवृत्ति आवश्यकता से अधिक उत्पादन से प्रमाणित हो जाती है।

- नित प्रवृत्ति - स्वास्थ्य, संयमता के रूप में प्रमाणित हो पाया होजाता है।
- प्रिय-का प्रियात्मक प्रवृत्तियां सम्पूर्ण इन्द्रिय सान्निकर्ष-मुद्रा, भाव, भंगिमा अंगहार, शिष्ट मूल्यों में - अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में अर्पण समर्पण के रूप में प्रमाणित हो जाता है। इस प्रकार प्रिय हित, लाभ का व्यवहारिक उपयोग न्याय, धर्म, सत्य का प्रयोजन साधक अपने में स्पष्ट कर लेता है। विकार, भ्रम और भय ये तीनों परिसमापन होने का सरल मार्ग मिल जाता है।

ईश्वर पूजा, उपासना, स्तुति, प्रार्थना

ईश्वर की पूजा नहीं होती, अनुभव होता है। देवताओं, दिव्य आत्माओं का सानिध्य होता है। दिव्य आत्माओं, देवताओं की प्रार्थना, पूजा और सम्मान होता है। देवताओं को ईश्वर मानकर या ईश्वर को देवता मानकर गलती करते। दिव्य आत्मा या दिव्य जीवन व देवजीवन किसी के उपर नाराज नहीं होते। देवता अपवाद रूप में नाराज होसकते हैं। मानव कोटि के मनुष्यों - खुशहाली, नाराजगी होती है। पशु व राक्षस कोटि के मनुष्य में - ईर्ष्या, द्वेष, विरोध, विद्रोह, युद्ध, शोषण इन्हीं मुद्दों में सफलता पर हर्ष का विफलता पर विषाद (रोना) का प्रकाशन शरीर धारण या बिना शरीर के भी इनका ये ही काम होता है।

भूतात्मा / प्रेतात्मा ये पशु राक्षस कोटि के मनुष्यों में ही जहां अति द्वेष या अति मोह होता है कहीं - २ प्रभाव दिखाते हैं। मानव एवं उससे ऊपर प्रभाव देखने में नहीं आया। इनको तन्त्रों के माध्यम से बन्धक भी बना लिया जाता है। शास्त्रों में भूत प्रेतों की उपासना को क्षुद्र विद्या कहा है।

देव कोटि की उपासना को उपविद्या कहा। दिव्य जीवन के रूप में जो जीते हैं उनकी उपासना को विद्योपासना लिखा गया। इस कोटि के दिव्य जीवन को गायत्री, सावित्री, सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, काली, महाकाली आदि नाम दिये हैं साथ ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव जैसे नाम भी दिया गया है। अनुभव में यह भी देखा गया कि दिव्य जीवन में विविधता शून्य हो जाती है। ~~बड़े~~ विविधता यानि बड़े, छोटे, ज्यादा, कम से मुक्त। देव जीवन में विविधताएं न्यून होजाती हैं। मानव कोटि के जीवन में विविधताए अस्वीकृति के रूप में रहती हैं। समानता की अपेक्षा बनी रहती है। राक्षस और पशु मनुष्य में मानवकुल को सर्वाधिक विविधता में बनाए रखने की प्रवृत्ति बढ़ता देखने को मिलती है। समाधि के बाद शरीर छोड़ने पर जीवन समाधि का दृष्टा होजाना सहज है समाधि में पहुंच कर अस्तित्व का बोध सम्भव नहीं हो पाता है। समाधि का दृष्टा होने के उपरान्त अस्तित्व का दृष्टा होना प्रमाणित हो पाता है। व्यक्त न करने के कारण प्रक्रिया रूप में जीवन शक्तियों को केन्द्रियकरण विधियों का अपनाना रहा। इसलिए प्रसारण विधि के विमुख सहज रहा।

किसी भी दिव्यात्मा की उपासना करें तो सभी दिव्यात्माओं को वह उपासना स्वीकृत हो जाता है।

भू स्थानीय देवता – क्षुद्र विद्या (तन्त्रविद्या) – राक्षस, पशु कोटि के मनुष्य मरने के बाद राक्षस देवता भूत, प्रेत, पिशाच होते हैं।

अन्तरिक्ष स्थानीय देवता (एक ब्रह्माण्ड में व्यापार करने वाले) – उपविद्या – यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पितर
रौद्र – देवकोटि
मानव कोटि के मरने के बाद – पितर
देव कोटि के मरने के बाद – पितर (यक्ष, गन्धर्व, किन्नर) ऋषि, महर्षि दिव्यात्मा कोटि ? [illegible]

द्यौ स्थानिक / दिव्य स्थानिक (अनेक ब्रह्माण्डों में भ्रमण करने वाले) – विद्या – दिव्य मानव

पितर कोटि (मानव) जल्दी शरीर में आना चाहते हैं। चूंकि देवकोटि व दिव्य कोटि में जाना चाहते हैं। सम्बन्ध की धारा शरीर यात्रा के बाद भी बना रहती है। व्यामोह (शरीर रहते समय में सम्बन्धों में अति व्याप्ति, अनाव्याप्ति दोष रहते हैं, यदि उसको शरीर अनिच्छा से छोड़ना पड़ता है ऐसा जीवन – प्रेतात्मा / प्रेतजीवन व्यामोह से प्रताड़ित होना स्वाभाविक है।) पीड़ा के निवारण के लिए उपाय करना, सभी सम्बन्धियों का कर्तव्य बनता है।

मरणोत्तर क्रिया कलाप

मरणोत्तर कर्मों को करना मृतक जीवन को गुणात्मक विकास के लिए अथवा सहज रूप में मानव गुणों से सम्पन्न पद (पितर पद) में आरूढ़ होने के लिए सहायक होता है। इसी परिकल्पनाओं के आधार पर कर्मों का निर्धारण हो पाता है। सम्बन्धित व्यक्तियों का मनोबल, वह शुभात्मक मनोबल शरीर से छूटे हुए जीवन के लिए उपयोगी होना सहज है।

निकट सम्बन्धित व्यक्ति जिसका शरीर छूटा हो (मृतक) के शरीर यात्रा काल में जो सार्वभौम शुभाकांक्षा रहा हो अथवा शुभ कार्य को आरम्भ किया हो अथवा शुभ कार्य को किया हो। उसके हितैषी लोग ऐसे सार्वभौम शुभ कार्य के प्रति संकल्पित होने से निष्ठान्वित होने से अथवा उसी तरह कोई सार्वभौम कार्य को कर देने से – शरीर छूटे हुए जीवन (तृप्ति का स्रोत होना सहज है) के लिए किया है और कर्मों का प्रभाव से वह प्रभावित होना सहज है।

सार्वभौम शुभ कार्य :- मानवता के संरक्षण के लिए किया गया कार्य, अखण्ड समाज के अर्थ में किया गया कार्य, सार्वभौम व्यवस्था को सर्वसुलभ करने के लिए किया गया कार्य, अविकसित के विकास में सहायक होने का कार्य, विपन्न, आर्त, संकटग्रस्त व्यक्तियों को सहायता करने के कार्य, मानवीय मूल्य चरित्र नैतिकता का आर्थ भाजप प्रमाशन कार्य ये सब सार्वभौम शुभ कार्य हैं।

मानवता से परिपूर्ण व्यक्ति ही शरीर छूटा हुआ जीवन को सहयोग कर पाता है। बाकि शेष तो अपनी परम्परा के बन्धन के भय से, मृतक जीवन के प्रति मोह या आतंक से या अपने वियोग के दुःख की पीड़ा को कम करने के लिए कर्मकाण्ड करते हैं।

ईश्वर के सम्बन्ध में शास्त्रों में जो मन्त्र है उनमें तुम संचालित करते हो के स्थान पर - तेरे में संचालित है, तेरे में नियन्त्रित है तेरे में सन्तुलित है और संरक्षित है कहे तो ज्यादा अच्छा है।

प्रार्थना, उपासना स्तुति - अस्तित्व की (में, से, के लिए)।

मैं अस्तित्व में विश्वास रखता हूँ। मैं स्वयं अस्तित्व का अविभाज्य स्वरूप हूँ।

अस्तित्व में विकास है वह मुझे सुलभ हो।

अस्तित्व में जागृति वह मुझे सुलभ हो।

अस्तित्व में दृष्टा पद प्रतिष्ठा भ्रमण में समाहित है वह मुझे सुलभ हो।

दृष्टा पद प्रतिष्ठा में प्रमाणिकता का सहज गुण, वह मुझे सुलभ हो।

सफल सान्निध्य (शरीर धारियों के साथ) का तात्पर्य - मेरी जिज्ञासा आपसे शान्त हो, आपकी ओर से। न कि उपरी मूर्ति (शरीर) से या केवल।

शरीर यात्रा के बाद मूर्ति रखना गलत नहीं। पूजा की कोई प्रतीक होगी। प्रतीक प्राप्ती नहीं है, यदि प्रतीक से प्राप्ती तक सेतु है अर्थात वह सबको मिलने वाला है तो ऐसे प्रतीक को रखने में किसी कोई तकलीफ नहीं है। आज तक के अनुभवों के आधार पर प्रतीक से प्राप्ती तक कोई सेतु प्रमाणित हुआ नहीं है। यदि प्रमाणित होता है उस स्थिति में प्रतीक की आवश्यकता शून्य हो जायेगी। क्योंकि, महर्षियों की वाणियों में प्रतीकों का अभाव नहीं है।

जीवन विद्या ⇒ अखण्ड समाज → सार्व भौम व्यवस्था

दोनों का फलक्रम
परिवार

इससे पूर्व ईश्वर को रखकर व्यवस्था की परिकल्पना। अब परिवार मूल में रखकर व्यवस्था व व्यवहार का आधार पाये। व्यवहार परिवार में ही प्रमाणित। विश्व मानव कुल - पूर्ण परिवार। वसुधैव कुटुम्बकम् ये कहकर संसार को असार भी कह दिया। विश्व - दुःखमय है, निस्सार है। इससे मुक्ति पानी है। अब वसुधैव कुटुम्बकम् का कोई महत्व नहीं रहा। इसका अर्थ मानव ने निकाल लिया कि वसुधैव कुटुम्बकम् की बात ईश्वरीय महिमा की बात हो सकती है, मनुष्य से होने वाले कर्मों की गति नहीं। फल समुदाय बने रहे।

परिवार में उत्पादन सुलभता व न्याय सुलभता का स्रोत स्पष्ट हो जाता है। गाँव में परिवार विनिमय सुलभता स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार गाँव स्वराज्य के आरम्भिक स्वरूप प्रमाणित होना सम्भव है। इसका मूल परिवार। व्यवस्था, उत्पादन, न्याय, विनिमय के लिए परिवार व ग्राम से कम में प्रमाणित नहीं होता। इसका तात्पर्य उत्पादन एक व्यक्ति एक से अधिक व्यक्ति का होना आवश्यक है, न्याय के लिए एक से अधिक व्यक्ति का होना आवश्यक है। विनिमय के लिए भी एक से अधिक व्यक्ति का होना आवश्यक। इन तीन के लिए एक अधिक व्यक्ति

जीवनविद्या एवं परिवारमूलक ग्राम स्वराज्य शिविर
ग्रा०- अकतई पो०- बेलहारी , त०- पाटन, जि०- दुर्ग
स्थान :- सुरेश चन्द्राकर का निवास
(१२ - २२ मई १९९२)

आपसी परिचय / मैंने विस्तार से जीवन विद्या के सन्दर्भ एवं उपयोगिता पर परिचय स्वयं से जोड़ा ।
आपके द्वारा कही बातों को यहाँ नहीं लिखा जा रहा है /

120592 : बाबाजी - समझदारी के बिना ईमानदारी का कोई अर्थ नहीं ।
समझदारी के लिए - ईश्वर केन्द्रित चिन्तन ज्ञान एवं वस्तु केन्द्रित चिन्तन ज्ञान आ [illegible] ईश्वर का ज्ञान रहस्यमय हो रहा। मनुष्य दायता से छिन गया। व्यक्ति जकड़ [illegible] हुए । बिना समझे हुए- नह [illegible] व्यापार प्रभाव में आ गया ।
वस्तु केन्द्रित चिन्तन ज्ञान ने शरीर को जीवन मान लिया । सुविधा, भोग, बहुभोग ...। दोनों ही से शिक्षा और व्यवस्था का सूत्र मिला नहीं । अतः अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था हो नहीं पाई ।
कल्पवादियों के अनुसार चेतना (ईश्वर, सत्ता) से वस्तु पैदा हुई /
भौतिक वादियों (वस्तु के.चि.) के अनुसार पदार्थ से चेतना पैदा हुई /
दोनों ही प्रमाणित नहीं कर पाये ।
जीवन में जागृति का प्रभाव - जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह करना / जीवन को दस क्रिया। इन १० क्रियाओं से उपरोक्त चार क्रियाएँ विचारित हुई / जीवन को दस क्रिया। इन १० क्रियाओं से उपरोक्त चारों मुक्त, भारबन्धन से मुक्त, आशा से मुक्त गठनपूर्ण परमाणु (जीवन) = भार से मुक्त, अणुबन्धन से मुक्त, आशा से मुक्त अस्तित्व में सर्व सम्पन्नता बना रहता है / अस्तित्व में घटने बढ़ने वाली बात नहीं ऊर्जा (सत्ता) का कोई नाप दण्ड नहीं अतः व्यापक / ~~प्रकृति पदार्थ~~ इकाई की गणना असम्भव या अनन्त । व्यापक सत्ता में अनन्त इकाई - अस्तित्व में / गणित का उत्पादन (मूल) अस्तित्व में । प्रत्येक इकाई गणित का आधार गणित का [illegible] पूर्णता को स्पष्ट (प्रकाशित) करने वाली - स्वरूप । हर गणित की गतिविधि में मानते हैं । हरेक एक स्वयं में पूर्ण । क्रिया, निष्कर्ष, एवं सन्तुलन प्रत्येक एक में है। प्रमाणित होता है ।

श्रीराजगुरुजी - हम सब (प्रत्येक व्यक्ति) जीवन को सुरक्षित एवं बचाने के लिए धपत शील [illegible] लेकिन उसके प्रयोजन / उपयोग को समझे बिना भी । वस्तु की कमी और वस्तु के बढ़ाने से व्यक्ति को सुखी हम नहीं बना सकते । वस्तु की कमी और भी दुःखी नहीं । इसका कारण क्या है समझदारी है ।
यात्री की कहानी कहाँ से आया, कहाँ जाओगे ?, क्यों आये ? कौन हो । यदि नहीं जानते तो शुद्ध पागल पन है। यदि कोई पागल हो आप तो मारते पीटते नहीं डाक्टर के पास ले जाते हैं ।
बन्दर के हाथ में चाकू से एक को मरता । अब उसके हाथ में बम आ गया / बम से पृथ्वी का कोयला बन सकता है / बने गये हैं । जितने हथियार बना डाले उससे 27 पृथ्वी नष्ट सभी आदमी से [illegible] 12 मिनट में सारी दुनिया समाप्त हो सकती है। पेड़, पशु पक्षी सभी आदमी को [illegible] आदमी इनसे जुड़ा है। सारे पेड़ / पशुओं को मार दे तो मनुष्य समाप्त हो जायेगा। ये धरती कितनी उपयोगी है । दूध, फल, रसायन बनाकर दे रही है ।

130592 बाबाजी : हाथ देखना - प्रातः हाथ देखना - पुरुषार्थ को स्मरण करो / योजना पर विचार करो और सफल बनाने के लिए कार्यक्रम बनाओ /
मैं (जो भी अपराध, पाप, गलती, शाप) तब तक प्रभावशील है जब तक हम विकास का [illegible] स्वीकार लेते हैं तब ये सब स्वस्थ हो जाते हैं / पाप नहीं करते
[illegible] ...अपराध, गलती पाप सब [illegible]

काकतालन्याय :- विशाल मरुस्थल। काक कव्वे ने उसे पार करने का निश्चय किया। रोज पार करने लगा। थक गया। उसके पंख थक गये। गर्मी से झुलस गया। इतने में एक ताड़ वृक्ष दिखा। कितना खुश हुआ होगा वह। पेड़ की आशा में हिम्मत से उसके पास ऊपर जाकर बैठ गया। बहुत थकता है, उड़ता है। राहत की साँस नहीं मिलने से लम्बे श्वास लेता है। यहीं आदा आनन्द कारि-पाता है।

मनुष्य दुःख को चाहता नहीं। सुख को ही चाहता है। हर काम से दुःख नहीं होता; हर काम से सुख नहीं होता। मनुष्य की पहचान परिवार में। Individual में नहीं।

प्रकाश मानें हमारे मनो वेग का एक अंश है। मनुष्य की इन अपार शक्तियों को हम कहां देखना चाहते हैं।

कबीला युग → दासयुग (ईश्वर वाद के साथ दासता आयी) हमारे देश में ईश्वर वाद से कम पीड़ा हुई (राजा का दास बनना शुरू किया। भाट (नियम को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने वाला), चारण (वर्तमान को बढ़ा-चढ़ा कर बताता है) राजा के दास बने पुरोहितों ने सहायक बने। (राजा ईश्वर का प्रतिनिधि) कोचीन में आज भी कुछ मन्दिर में जहां राजा को बिठाया गया था।

जागृति के साथ मूल्यांकन (उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनीयता विकास क्रम में) इसके विपरीत नशा / बेहोशी। गोरो-गाद, काओ-गाद

ग्राम स्वराज पर चर्चा - गांव के लोग गांव के काम और सम्भालें, व्यवस्था करें समस्या है, अव्यवस्था है, यदि हम उससे छूटना चाहते तो बात आगे बढ़े। समझदारी चाहिए। स्वयं की समझदारी। दूसरे से जो समझदार हैं उनसे हम समझदार बनने के लिए प्रेरणा / सहयोग मिल सकता है। लेकिन स्वयं को ही समझदार बनना पड़ेगा।

वस्तुओं का ज्ञान, व्यवहार ज्ञान, विवेक ज्ञान एवं व्यवस्था ज्ञान ये ज्ञान जीवन को समझने के बाद ही आयेगा।

जीवन - मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा। मनुष्य - शरीर व जीवन का संयुक्त साकार रूप है। जीवन विद्या से जीवन जागृति या जीवन के प्रकार) वैसे ही तकनीकी ग्राम स्वराज्य के लिए हमें विश्वास की जरूरत है। आप और हमारी दोनों ओर की इच्छा जरूरी है।

मानसिकता के लिए अपनी उपयोगिता, सदुपयोगिता तथा प्रयोजनीयता ... ग्राम स्वराज्य बनना। जीवन की पहचान के लिए - मनुष्य - मनुष्य के बीच सुख - न्याय से। विवेक - न्याय -

① रूप के साथ - सच्चरित्र - पेड़ तोड़ना, पशु को मारना, ... दुश्चरित्र में दुश्चरित्र उसकी मनुष्य हो सकेगा।

② बल के साथ - दया - दूसरों को जीने देकर जीना है। इससे हम एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। जिसके साथ अन्याय हो, उपेक्षा व अपमान हो, विपदाओं में सहयोग करो।

③ पद के साथ - न्याय - ... जो पद जिस पद में रहेगा न्याय करेगा।

④ धन के साथ - उदारता - इसके हो जाने धन के साथ उदारता से / सदुपयोग दूसरों के लिए " सदुपयोग।

⑤ बुद्धि के साथ - विवेक पूर्ण विवेक - ... सत्य अनुभव में ही बोध में आता है। सत्य जीवन को शरीर से भी ज्यादा समझा है। हर सत्य बोध विवेक के लिए स्रोत है। विवेक की पहचान - उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनीयता) ↓ समाधान/उत्पादन ↓ व्यवहार ↓ व्यवस्था के साथ होती है।

रूप के साथ सच्चरित्रता के रूप में, जीवों के साथ दया ... रूप में / उदारता के रूप में, पद के रूप में न्याय से, बुद्धि के साथ विवेक, अनुभव में प्रामाणिकता ही सत्य न होगा, ईश्वर होगा। दूसरे ढंग से —

अवसाद काल में वियोग के रूप में, व्यवस्था काल में न्याय के रूप में, विचार काल में समाधान के रूप में, अनुभव काल में प्रामाणिकता के रूप में ईश्वर, ब्रह्म, सत्ता सर्व सुलभ है। पूरे ईश्वर को हम (जड / चैतन्य) में जो सत्ता को सुलभ हैं। सबमें जो सत्ता व्यापक है जो न्याय, धर्म एवं सत्य चाहता है कोई नहीं। न्याय, उदारता, दया, विवेक अनुभव को जीवन चाहता है।

शरीर के साथ न्याय :— संरक्षण, पोषण एवं समाज गति योग्य बनाये रखना
अर्थ (तन, मन, धन) का सदुपयोग करना = धर्मनीति = सुखी होना।
तन, मन, धन रूपी अर्थ की सुरक्षा = राज्यनीति = व्यवस्था
व्यवस्था क्रम से एक-एक गाँव में होगी।

नियम, नियन्त्रण एवं सन्तुलन के रूप में ही हम सच्चरित्र होते हैं।
ये (नियम, नियन्त्रण एवं सन्तुलन) ईश्वरीय स्वरूप है। परम सत्य कोई गाया है।
गायत्री — तीनों वेदों से जो गाया है वह गायत्री। समझा जा सकता है।
समझदारी का प्रवाह है।

अस्तित्व परम सत्य है, इसको समझा जा सकता (समझाया जा सकता है)। जीवन जागृति पूर्वक ही ज्ञाता होता है। जीवन ही ज्ञाता, भोक्ता एवं कर्ता है। जीवन जागृति अस्तित्व दृष्टापद प्रतिष्ठा में ज्ञाता होता है। अस्तित्व सर्व सुलभ है, निर्भ्रमता है। जागृति ही मुक्ति है, कैवल्य है, निर्भ्रमता है। भ्रम ही बन्धन है। स्वस्थ शरीर की सार्थकता तभी सहज है। स्वस्थ शरीर से स्वस्थ जीवन प्रकाशित होता है। स्वस्थ शरीर से स्वस्थ जीवन प्रकाशित होता है जब जीवन स्वस्थता हो।

सच्चरित्र को पहचानने वाला जीवन, उदारता, विवेक, आनन्द, दया, अनुभूति को पहचानते हैं, निर्वाह करते हैं, को व्यक्त करने वाला जीवन। आप हम सब — पहचानते हैं। विश्वास, श्रद्धा जीवन का कार्य है। शरीर का नहीं। आँखों से भी जानते हैं, मानते हैं, ये जीवन का कार्य है। शरीर में नहीं होता नहीं। न्याय, ममता इत्यादि सभी मूल्य शरीर में नहीं होता, ये जीवन का कार्य है। नहीं देखते, लेकिन होता है, अनुभव गम्य है, ये जीवन का कार्य है।

जानना मानना कौन वस्तु - अस्तित्व, अ० में सह अस्तित्व, अ० में विकास, अ० में जीवन, अ० में जीवन जागृति, अ० में रासायनिक भौतिक रचना विरचना।

अस्तित्व कैसा है — सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति। व्यापक सत्ता ऊर्जा सत्ता, ... होता है / शून्य, घिरा हुआ दिखाई देता है। हम उसमें डूबे एवं भीगे हुए हैं। पारगामी होता है / क्रियाशील घिरा हुआ - नियन्त्रित, डूबा हुआ — सन्तुलन, भीगा हुआ — बल सम्पन्नता। सम्पूर्ण अस्तित्व (पदा०, प्राणा०, जीवा० एवं ज्ञानावस्था में) इन चारों अवस्थाओं में है / इस धरती पर सम्पूर्ण अस्तित्व ... हो चुकी हैं। सम्पृक्तता :- अस्तित्व में हर एक भीगा हुआ, चारों अवस्थाएँ विकसित हो चुकी हैं। हर एक डूबा हुआ एवं घिरा हुआ है। हर एक आपस में क्रिया करते हैं, सन्तुलित व क्रियाशील हैं, बल सम्पन्न है। वास्तविकता, यथार्थता और सत्यता का अध्ययन है।

प्रत्येक एक में रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म अविभाज्य वर्तमान है। आँखों में केवल रूप का आंशिक भाग देख पाते हैं। गणित आँखों से अधिक, समझ से कम होता है। ... रूप व गुण को समझाया (इस गति को भी मनोगति से नाप पाये)। जैसा ... वस्तु है या अवस्था है उसको विश्लेषण ...।

अधिक शक्तियों से कम शक्तियां मूल्यांकित प्रमाणित होती हैं। फलतः जड़ शक्तियों से

गति को नापने के लिए दो ध्रुव चाहिए। एक ध्रुव हो तो दूसरे ध्रुव से ही लक्ष्य या गति को नापते हैं। समझदारी के आधार पर हम गणित को समझाते हैं या गणित समझ में आता है। हमने गणित को सत्य मान लिया और मनुष्य को असत्य मान लिया। मनुष्य की समझदारी की आंशिक अभिव्यक्ति गणित है। विज्ञान गणित को सत्य भाषा मानते हैं। वे मनुष्य को छोड़कर गणित को सत्य मानते हैं। या गणित द्वारा ही यन्त्र से गणना करना चाहते हैं। मनुष्य से छोटा गणित, गणित से छोटा यन्त्र। और हम यन्त्र से मनुष्य को नापना चाहते हैं। जीवन के प्रभाव क्षेत्र में मन का क्षेत्र जब पराबर्तित होता है तो बहुत विशाल है। मन के प्रभाव क्षेत्र में जब वस्तु आती है तब देख पाते हैं। हम कहते हैं कि प्रकाश से पहचानते हैं।

मन जब देखने जाता है तो सारे अस्तित्व को ही देखते हैं। वृत्ति ही अस्तित्व का विचार

मन से बड़ा प्रभाव क्षेत्र वृत्ति का, वृत्ति से बड़ा चित्त का, चित्त से बड़ा बुद्धि का, बुद्धि से बड़ा आत्मा का प्रभाव क्षेत्र होता है।

आत्मा परम सत्य का अनुभव करता है। बुद्धि में धर्म प्रतिबिम्बित होता है। और बुद्धि द्वारा प्रमाणित होता जाता है। इसी प्रमाण से चित्त में न्याय, वृत्ति में नियमों का विश्लेषण, तुलन, मन अपने प्रभाव क्षेत्र से शरीर को जीवन्त बनाये रखता है और चयन और आस्वादन की क्रिया करता है।

14.05.92 बाबाजी :- ईश्वर कल्याणकारी है। कल्याण यानि हम सुखी हो जायें। न्याय समझ में आया तो हम सुखी। स्वयं व्यवस्था में हो जायें तो सुखी, समग्र व्यवस्था में भागीदार हो जायें तो सुख की निरन्तरता। प्रमाणिकता - जो हमने सीखा, किया है, तो औरों को भी समझाया जाये, कराया जाये तो प्रमाणित हो जाता है।

आज न्यायाधीश न्याय को नहीं जानते, जबकि वे यह भी मानते हैं कि न्याय संसार में किसी को मिला नहीं। जब न्याय नहीं पता तो न्याय कैसे देते होंगे? वे निर्णय देते हैं। लेकिन मनुष्य न्यायालय, विद्यालय, सरकार के बिना भी मानव सहज शुद्ध न्याय को पहचानता है। परन्तु वह पहचाना नहीं जाता। उसका मूल्यांकन नहीं हुआ।

अन्तर्मुखी साधना (मोक्षबोधि) व्यवहार से जुड़ नहीं पाती थी। इसलिए वह समाज का लेन देन नहीं। जीवन विद्या की रोशनी की साधना में जीवन का समाज से सम्बन्ध। हमने दासता को स्वीकारा। आदमी को मार लिया। दासता मानव का बनेगी दासता से संघर्ष सुगम। संघर्ष दासता से होता था। वह संघर्ष दासता से

न होकर मनुष्य से हो गया। अब समाधान का समय आ गया है [illegible]
ने रंग, रसूल, रूप के साथ झगड़ा किया। कबीला विधि में बल विधि का
उपयोग। बलवाला था जीता हुआ तो नायक। धन से युद्ध किया। ~~युद्ध~~ युद्ध
सन्तुलन पाने के लिए किया। पद से युद्ध किया। [illegible] सेहत निर्भय होकर
समाधानित होकर, सर्वतोमुखी समाधानों से ही सभी युद्ध का परिसमापन हो
जायेगा। महापुरुषों ने जो किया उसका सम्मान है लेकिन जो
समीचीन समस्या है ~~[illegible]~~ उसका समाधान नहीं ढूँढो। हर
थी गद्दी के सामने लाखों करोड़ों व्यक्ति खड़े हैं। लेकिन रास्ता [illegible]
भीड़ को ही सफलता। मूर्खता की आखिरी [illegible] युद्ध। साम, दाम,
भेद जब असफल तब दण्ड (युद्ध)। रामायण, महाभारत और चाणक्य
का समापन युद्ध पर। युद्ध किसी को अच्छा किसी को बुरा लगा।
बौद्धिक युद्ध बचा है उसे छोड़ जाए — बौद्धिक समाधान, सर्वतोमुखी
समाधान के लिए यह युद्ध सफल नहीं।
प्राणावस्था - वनस्पतियों में। प्राणावस्था में मुख्यरूप से रासायनिक
रचना है। रासायनिक रचना पदार्थावस्था में है। दो या दो से अधिक तात्विक
वस्तु मिलकर (अपने मूल आचरण को छोड़कर) एक रसायन उदा०-पानी)
अनेक रासायनिक द्रव्य बने। वह ठोस व तरल रूप में। तरलरूप में और
रसायन क्रिया से रसायन द्रव्य। रासायनिक क्रिया से ठोस द्रव्य - कोश
(Non living cell)। यह निष्प्राण! रसायन जल, रसायन वायु और वातावरण
के दबाव से स्पन्दनशीलता (संकोचन, प्रसारण क्रिया प्रारम्भ)।
अन्य वनस्पतियों से अन्न व्यवस्था बनी। ये बीजानुषंगी परम्परा।
जीवों में वंशानुषंगी परम्परा बनी। अपने-२ मौलिक आचरणों के साथ
परम्परा बनी। अपने-२ मौलिक आचरणों के साथ परम्परा बनी। मनुष्य
संस्कारानुषंगी परम्परा। समझदारी का बीज ही संस्कार।
जीवन प्रभाव क्षेत्र में ही मनुष्य देखता है। देखना = समझना (जानना, मान-
जानने मानने की पूर्णता पहचानने व निर्वाह करने के क्रम में होती है। बिना
सम्बन्ध को पहचाने हमें समझाया नहीं जा सकता। समझदारी का आवश्यक
ही संस्कार कहलाता है। समझदारी - पूर्णता के अर्थ में परिपक्व रहना
आवश्यक है। मनुष्य पूर्णता के अर्थ में प्रवर्तनशील है। मनुष्य की पूर्णता का
अर्थ - सुख, शान्ति, सन्तोष और आनन्द में। इसका व्यावहारिक रूप - [illegible]
आचरण / व्यवसाय, न्यायपूर्ण व्यवहार, समाधान और प्रामाणिकता में
प्रमाणित होता है।
श्रीराजजी:- बीजानुषंगी या जीव अपने-२ परम्परा में काम करता है। मनुष्य में समझदारी
के अनुसार कार्य। अच्छे बाप - बच्चे खराब भी। मूर्ख बाप के बच्चे ज्ञानी।
यानी समझदारी या संस्कार का प्रभाव। कल्पनाशीलता, कर्मस्वतन्त्रता -
जीवन तृप्ति के लिए।

हर एक परमाणु विश्वास के रूप में एक व्यवस्था। हर एक अणु व्यवस्था से विश्वास। अणुओं से रचना व्यवस्था से विश्वास। यह विश्वास विकसित अवस्था – मनुष्य में प्रमाणित। हर एक परमाणु, अणु से लेकर मानव तक प्रत्येक एक अपने त्व सहित व्यवस्था तथा समग्र व्यवस्था में भागीदार है। यही विश्वास है। सुरक्षा के कारण। पहचान त्व सहित। मनुष्य की पहचान मानवत्व से है।

जीव – आशा के अनुरूप – आकार, आकार से रूप। मनुष्य का शरीर समृद्ध मेधस से युक्त यानि जीवन की सभी वैभवता को प्रमाणित करने योग्य हो गया। आश्वासन के साथ दौड़ना असफल है। दौड़-दौड़ कर थक जाते हैं। ये कारण क्या है। बहुत धूप कहीं जला या। काला दीवाल आया। मन उपयोगिता को नकारता नहीं सदुपयोगिता से उत्साह, प्रयोजन शीलता से और उत्साह।

विगत वर्तमान होता नहीं। यह अस्तित्व का तकाजा है।

आदर्श पुरुषों को सम्मान करके उन जैसा जी लेना ये हमारी व्यवस्था या पुण्य का प्रभाव है। शास्त्रों की गलतियां न मानकर स्वयं की गलती ही मानता है यह – दासता ही रही।

स्वामी राम तीर्थ – बच्चों को चौखट पर छोड़ घर से भाग गये और संन्यासी आये। नाम हुआ। लेकिन शिक्षा/व्यवस्था का कोई सूत्र नहीं मिला।

सुखद दुष्टता = पशु (मानव निषिद्ध)। कामोन्माद, भोगोन्माद, लाभोन्माद से तंग आकर लोगों को विरक्ति और भक्ति अच्छी लगती है। आदर्शवाद व भौतिकवाद से कोई गम्य स्थली प्राप्त नहीं हुई। यदि हम यह स्वीकार करते हैं तो हम सब के ऊपर जिम्मेवारी आती है। तो हमें अनुसन्धान करना चाहिए या नहीं। यदि किसी ने किया तो उसको सुनना चाहिए या नहीं।

स्वयं के प्रबोधन में :- सुख सभी चाहते हैं। क्या कोई नहीं चाहता? यह दुःख क्यों आता है! शादी में सुख माना पर नहीं मिला। नौकरी या व्यवसाय से दुःखी और दुःखी। नगर में जाकर भी दुःखी। पहले और बाद में दोनों में दुःखी। सुख के लिए स्वयं को पहचानना जरूरी। जीवन को पहचानना। मनुष्य की पहचान परिवार में, गांव, समाज, देश, विदेश में। वर्तमान संगठनों पर प्रकाश। आप से पूर्व अनुभव समाज सुधार किसान आन्दोलन एवं शिक्षा के नई रचना।

मानव की पांच कोटियां। जीवन की कार्य। जीवन में अध्ययन शक्ति अध्ययन बल सम्पन्नता (क्षमता) समान। योग्यता, पात्रता के लिए कार्य क्षमता।

(– शिविरों में बाबाजी, राजन जी, साधन भट्टाचार्य, विश्वकर्मा जी, अर्चना दास, नवा की गांव की लोगों के अलावा, अन्य क्षेत्रीय लोग भी आते आते रहे)

जीवन विद्या साधना शिविर
(21 मई से 2 जून 1992)

प्रथम दिवस

21.05.92 :- अभ्युदय :- सर्वतोमुखी समाधान

आशा और उपलब्धि के बीच जितनी दूरी है वही मानव मात्र की पीड़ा है। मानव सहज रूप में शुभ चाहता है लेकिन कर तलगत नहीं कर पाया। ऐसी मानव परम्परा नहीं बनी। न्याय चाहता है लेकिन अन्याय कर बैठता है। मनुष्य मूल रूप से शुभ चाहता है। लेकिन असमर्थता आ जाती है। इसका मूल कारण मनुष्य कर्म करते समय स्वतन्त्र फल भोगते समय परतन्त्र (मनुष्येत्तर प्रकृति कर्म व फल भोगने (दोनों में) परतन्त्र है। मानव कर्म करने में प्रवर्तनशील है। मनुष्य संस्कारों के आधार पर प्रवर्तनशील है। मानव परम्परा अगली पीढ़ी के लिए संस्कार का आधार बनता है। शुभ योग्य परम्परा बन नहीं पायी। अनेक लोग सहज रूप अच्छे हुए। मानव परम्परा (शिक्षा, संस्कार, संविधान एवं राज्य व्यवस्था) इन चारों से बनता है। शिला युग → कबीला युग → दास युग से आज संघर्ष युग ~~में~~ इन चारों अभी ~~सभी युग में रहे~~ मानव परम्परा नहीं बनी। रूप में भिन्नता अलग बात है। शुभ चाहते हैं संघर्ष चाहते नहीं, पर संघर्ष के लिए बाध्य हैं। संघर्ष से हमें समाधान युग में प्रवेश करना है।

स्वान्तः सुखाय के लिए हम भागे। अस्तित्व में भाग नहीं सकते। कर्म का परिणाम काल, विषय सीमा में ही सार्थक। समाधान (स्वान्तः सुखाय) के लिए व्यक्तिगत प्रयास हुए। कर्म का परिणाम मानव परम्परा में काल निरपेक्ष मानवीय परम्परा नहीं बन पाया। (जो शुभ चाहता है उसमें बाधा) नहीं हो पाया।

जो चाहता है तथा प्राप्त नहीं। उसके बीच की दूरी को पाया जा सकता है। इसका आधार मानव परम्परा बनने पर सम्भव है।

मनुष्य को मध्य में रखकर समाधान की खोज करेंगे।

प्रत्येक मनुष्य में चार क्रिया कलाप (आज पैदा हुए तथा कल दम तोड़ते हुए में) जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह पाया जाता है। ऐसी अध्ययन की वस्तु बनी। ~~कैसे~~ पहचानेंगे (जानने - मानने के क्रम में = समझने)

जीवन को स्वयं में

जीवन विद्या का लक्ष्य -(i) स्वयं के प्रति विश्वास (ii) श्रेष्ठता के प्रति सम्मान

मनुष्य के ऊपर मानसिकता निर्भर है। सूचनाओं आदि के रूप में। उनमें से समाधान युग के लिए तथा समस्याएं [illegible] के लिए प्रति बिम्बों की दो सूचियां बनाई जा सकती हैं। शिक्षा, संस्कार, संविधान और राज्य व्यवस्था में मानव दौड़ा जाये। इस धरती पर आदर्शवाद से अन्तरण भौतिकवाद की तरफ हुआ।

दिवस - 2
22.06.92

प्रत्येक मनुष्य जीवन और शरीर का संयुक्त साकार रूप है।

मनुष्य कर्म स्वतन्त्र एवं कल्पना शील है।

कर्म करने में स्वतन्त्र व फल भोगने में परतन्त्र।

मनुष्य :- मनाकार को साकार करने वाला मन स्वस्थता का आशावादी। मनाकार को मनुष्येत्तर प्रकृति में साकार करते हैं। आज भौतिक रूप में [illegible] हम तो आगे बढ़ चुके। अब मनस्वस्थता बाकी रही है।

मानव परम्परा वस्तुओं के आधार पर तृप्ति बिन्दु पा नहीं सकता।

सम्बन्धों के आधार पर विश्वास मिलता है। मूल्यों के आधार पर)
केवल वस्तुओं के आधार पर विश्वास पूरा नहीं बन पाता। या तृप्ति नहीं होती।
गुरु - शिष्य (प्रमाणिकता एवं जिज्ञासा) में एकसूत्रता के साथ विश्वास होता है)
वस्तुएं और सेवाएं परस्पर मूल्यों के आधार पर अर्पित होती रही है)
हर सम्बन्ध में मूल्यों को पहचाना जा सकता है। सम्बन्धों की पहचान एवं
मूल्यों का निर्वाह होने पर वस्तुएं व सेवाएं तो स्वयं अर्पित समर्पित है)
पर तृप्ति बिन्दु विश्वास में।

प्रमाणिकता = अनुभव मूलक अभिव्यक्ति (अनुभव = अनुक्रम से भव, अनुक्रम - विकास या जागृति)
प्रत्येक व्यक्ति में अनुभव करने की क्षमता समान रूप से विद्यमान है। मनसा भी समान रूप में है।
अनुभव - जानना, मानना के मध्य में तृप्ति बिन्दु है। जिससे जान लिया
मान लिया उसमें तृप्ति मिलती है। तृप्ति क्या है - जागृति या जीवन
जागृति के लिए प्रयोजन।

परम्परा में अधिकतर मान्यता यह है कि अनुभव को व्यक्त नहीं किया
जा सकता। लेकिन इस विधा में अनुभव ही परम प्रमाण है। न कि शास्त्र
या तर्क। अनुभव एक ऐसी वस्तु है जिसे ही अभिव्यक्त किया जा सकता है।
अनुभव मानव ही करता इसमें हम सब सहमत हुए। आगे जीवन करता है या
शरीर इस पर चिन्तन करेंगे।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ज्ञानी, विज्ञानी हो जाते हैं। जब ये परम्परा में
आता है तो अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था बनता है।

<u>जीवन का कार्य रूप</u>

चयन - आस्वादन
विश्लेषण - तुलन (विश्लेषण का मुख्यतम रासायनिक भौतिक संरचना में
तुलन - प्रिय-अप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, धर्माधर्म सत्यासत्य
के आधार पर करते। हम इन्हें चाहते हैं लेकिन जानते नहीं रहते। (1)

<u>सम्बन्ध</u> :- सम्बन्धों की पहचान परस्पर प्रयोजन से स्पष्ट होती है) (2)
माँ बच्चे के प्रति पोषण मूल्य। बच्चे की ओर से कृतज्ञता का मूल्य)
इस निर्वाह से तृप्ति निश्चित है।
सम्बन्ध बोधगम्य होने पर मूल्यों का निर्वाह सहज रूप में होने लगता है।
पिता बच्चे के प्रति संरक्षण (स्वास्थ्य, विद्या एवं जब तक बच्चे निर्णय लेने योग्य न हो
तब तक निर्णय)

<u>मूल्य एवं मूल्यांकन</u> के साथ ही व्यवस्था पा सकते हैं। <u>भय और प्रलोभन</u>
के कारण सारा पराभव हुआ। पहचानने में सजगता एवं तीव्रता निम्न [illegible]
प्रबोधन, प्रकाशन व प्रदर्शन, एवं अभ्यास।
प्रबोधन के लिए मूल वस्तु : अस्तित्व, अस्तित्व में सहअस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक भौतिक रचना व विरचना।
इसके लिए (बोध) के लिए स्वान्त गाहयता है मानव परम्परा।

जैसे - सुनकर, देखकर, पढ़कर, स्वीकार करके, सम्पादित कर बोध करते हैं।

नागरिक ... के माध्यम से प्रकाशन । संचार, भाषा, गान, नृत्य, ओरेशों, ये सभी
के माध्यम से मानवीयता को लोगों में स्थापित करने का प्रदर्शन ।

जीवन का कार्य रूप

[illegible]

[illegible]

चिंतन - चिंतन - चित्त
बोध - संकल्प - बुद्धि
अनुभव - प्रामाणिकता - आत्मा

तुलन में - न्याय पूर्ण दृष्टि से प्रिय, हित, लाभ को तौलने पर मनुष्य होना प्रारम्भ होता है ।
धर्म दृष्टि से सभी समाधान प्राप्त होते हैं, व्यवस्था बन पाती है ।
सत्य दृष्टि से अस्तित्व के सभी आयामों में प्रामाणित होना होता है उससे बड़ा शब्द है पद ।
इससे आगे कुछ होता नहीं ।
मन स्वस्थता की क्या वस्तु है । सुख की आशा (सुख, सन्तोष शान्ति, सन्तोष और आन-
सम्बन्ध और सम्बन्धों के निर्वाह से न मूल्यों के चित्रण से - सुख
चिन्तन में (व्यवहार, व्यापार, विचार) प्रयोजन के आधार पर करना ।
स्वयं में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने पर सन्तोष का अनुभव करते हैं ।

बोध जो होता है वह सत्य ही होता है । सत्य में, से, के लिए ।
जो सत्य समझता है उसके प्रति दृढ़ता, संकल्प में प्रवर्तन होता है ।
सत्य बोध के बिना संकल्प होता नहीं ।

<u>साधना</u> : १० क्रियाओं में विश्वास
(स्वेच्छा प्रारब्ध, परेच्छा प्रारब्ध, अनेच्छा प्रारब्ध)
① न्याय दृष्टि - चयन और आस्वादन का
सम्बन्धों की पहचान, सम्बन्धों निहित मूल्यों का निर्वाह । एवं मूल्यांकन । व्यवहार में बाह्य व अन्तःकरण दोनों में स्पष्ट है ।
न्याय दृष्टि से बाह्य से अन्तरंग साधना प्रारम्भ होती है । हर स्थिति, गति, पद में समाधान को पहचानते
② समाधान दृष्टि :- समाधान : मानव धर्म । समाधान चिन्तन की उपज है । चित्रण और विश्लेषण
क्यों और कैसे को पहचान लिया । समाधान चिन्तन में सम्मिलित हो जाता है । ये ही व्यवस्था का मूल है ।
क्या समाधान पूर्वक है ? परिवार में [illegible] । किसी भी समाधान के लिए पहले अनुभव
मनुष्य में अनेक क्रियाएं हैं । उन सब में सूक्ष्म - समझदारी है । समझदारी = अनुभूति । समझदारी
होता है । भास, आभास, प्रतीति एवं अनुभूति । समझदारी के बाद ईमानदारी
के लिए भाषा, अर्थ और अवधारणा में ले जाते हैं । समझदारी के [illegible] टिकी है या निहित है ।
प्रमाणित होने का दायित्व प्रत्येक मनुष्य में समान रूप से है । मनुष्य ही सत्य को प्रमाणित करता है ।
सत्य है ऐसा सभी मानते हैं । सत्य को कौन प्रमाणित करेगा । मनुष्य ही भोक्ता और कर्ता भी समझ में
तभी मनुष्य दृष्टा होना समझ में आता है । साथ ही [illegible] के लिए प्रयास किया है ।
आता है । आदिकाल से मानव ज्ञान, [illegible] । न्याय दृष्टि पूर्ण क्रिया एवं दृष्टि की क्रियाशीलता एवं सत्य दृष्टि की क्रिया
मानवत्व का तीन आयाम -
न्याय दृष्टि से प्रिय, हित, लाभ, भारी एवं सम्बन्धों में परखें ।

मन को एकाग्र करने के लिये।

आँखों का पाट 60° पर है। ये मन की गति है। आँखों से मन का ...)
देखने वाला मन है।

दोनों आँखों को भृकुटि पर मिलाये तो शाम्भवी मुद्रा। | मन की दौड़ समाप्त।
दोनों आँखों को नासाग्र पर मिलाये तो उन्मनी मुद्रा। |

ॐ कार को देखो, सुने, उच्चारण करे मन से।
प्रिय मन्त्र को श्वेत पट्टिका पर नीले अक्षरों पर लिखकर मन से देखो, सुने, बोले।

23.05-92
दिन-3

अस्तित्व

अस्तित्व हमारे जीवन प्रभाव क्षेत्र में कैसा है? समग्र अस्तित्व से हमारी आवश्यकताये छोटी है। जीवन प्रकाश हमारी आवश्यकता से बहुत बड़ा है। अस्तित्व में जो समझ गये - अनुभव, अभिव्य-, प्रमाणित हुआ। जो नहीं समझे वह कल्पनाओं का क्षेत्र बन गया।

आप हमारे बीच में जो शून्य है वह ऊर्जा है, परमसत्ता है, यह सबमें वस्तु है।

हर वस्तु ऊर्जा में घिरे रहने के कारण - नियन्त्रित
हर वस्तु ऊर्जा में डूबे " - क्रियाशीलता
भीगे रहने के कारण - बल सम्पन्नता।
- हर एक के साथ।

नियन्त्रित रहना स्वयं सुरक्षा द्योतक है। इसलिये किसी एक को कोई भी एक अपने बल से समाप्त नहीं कर सकता है। सुरक्षित इसलिये तो स्वभाव गति में आये। स्वभाव गति में आने हेतु सम्पूर्ण द्रव्य जीवन विकास क्रम में, आणविक, परमाणु विकास क्रम में गठनपूर्णता हो। क्योंकि अस्तित्व सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में है।

शून्याकर्षण में जब वस्तु आ जायेगी वह अपनी गति में कार्य करती है स्वभाव गति में कार्य करती है। सूर्य, पृथ्वी आकर्षण विकर्षण रहित स्थिति। यह आकर्षण विकर्षण रहित स्थिति शून्याकर्षण में है। जब तक दोनों के बीच में अच्छी दूरी है तब तक नियन्त्रित है। यह अच्छी दूरी न रहे तो टकराव, दुर्घटना इत्यादि।

अच्छी दूरी में रहते हैं तो क्रियाशीलता है। सत्ता में नियन्त्रित हैं। न कि सत्ता नियन्त्रित करती है।

हर वस्तु में चुम्बकीय प्रभाव किसी न किसी अंश में है ही। प्रत्येक इकाई व्यवस्था में होने पर शून्य कर्षण में है। बल की स्थिति मध्यस्थ बल जो परमाणु के मध्यांश में होता है।

सम	मध्यस्थ	विषम
धनाकर्षण	शून्याकर्षण	ऋणाकर्षण

साम्य ऊर्जा करतलगत होना बहुत महत्वपूर्ण है। ये सबके साथ एक सा प्रभाव शील है। साम्य ऊर्जा सबके साथ एक सा प्रभाव शील है इससे सह अस्तित्व स्पष्ट होता है। बड़ा-छोटा, ज्यादा-कम ये मानव की धारणा की पीपलटी ये उपरोक्त के स्पष्ट हो जाने पर समाप्त हो जायेगा।

सत्तामयी ऊर्जा में समस्त प्रकृति ओत प्रोत है (क्रिया, द्रव्य, पिण्ड)। सत्ता में प्रकृति अर्थात् भाज्य स्थिति है। यही सह अस्तित्व है। रचना, विकास, ये सब नियन्त्रित, क्रियाशीलता के कारण ही है। पूरकता, उदात्तीकरण, संक्रमण का विकास अस्तित्व में नित्य वर्तमान है।

(121)

काल = क्रिया की अवधि । सम्पूर्ण अस्तित्व क्रियाशील । सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति से क्रियाशीलता स्पष्ट । सत्ता में प्रकृति गर्भित है। सत्ता स्थिति पूर्ण है। इसलिए सत्ता व्यापक है।

क्रिया का कालखण्ड नाम करना है। क्रिया की अवधि गणना पहचान लिया। इसके द्वारा क्रियाओं को काल निबद्ध मान लिया। ~~स्थलीय~~ मंडल

वस्तु की अवधि (निश्चित सीमा) = पदार्थ।

प्रत्येक एक अपनी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँ० से अधिक में अपना प्रभाव क्षेत्र बनाये रखता है।

सत्ता में प्रकृति का अविभाज्य सम्बन्ध है इसलिए सहअस्तित्व है।

अस्तित्व में चारों ~~(अवस्थाओं में) सम्बन्ध~~ अवस्थाओं - पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था) में अन्तर सम्बन्ध सहअस्तित्व का प्रमाण है। नक्षत्र, ग्रह, भूमि भी सहअस्तित्व में हैं। ~~स्वयं~~ भूमि भी सहअस्तित्व में अनेकों वस्तुओं को धारण किये है। ज्ञानावस्था में सम्बन्ध से सहअस्तित्व है। अजीर्ण परमाणु (अंश प्रदान करने वाले) व भूखे परमाणु (अंशों के ग्रहण करने वाले) ये गठनपूर्ण परमाणु हैं। ये ही गठनपूर्ण परमाणु हैं। जीवों में तृप्त परमाणु है। ये अणुबन्धन से मुक्त, भार से मुक्त। वर्तुलात्मक गति से स्पन्दन कम्पनात्मक गति सहित। और आशा बन्धन से युक्त। जीने की आशा। ~~यह आशा~~

क्रिया = श्रम, गति, परिणाम

श्रम ↓ विश्राम

गति ↓ गन्तव्य

परिणाम ↓ अमरत्व

विकास विधि से जीवन, रचना विधि से शरीर रचना।

शारिरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक स्वास्थ्य (परमार्थ करता) है।

शारिरिक के लिए भोजन ।

मानसिक

अस्तित्व एवं अस्तित्व में परमाणु का विकास

दि० - 5
25-05-92

सत्ता में संपृक्त प्रकृति

अध्ययन

अस्तित्व को अनादिकाल से मानव असंदिग्ध रूप में समझने का प्रयास करता रहा है। इसी क्रम में आधिभौतिकवादी विचारों के अनुसार चेतना से पदार्थ की उत्पत्ति होती है / मानी जाती है। भौतिकवादी विचारों के अनुसार पदार्थ से चेतना निष्पन्न होती है। अभी तक न किसी ने चेतना से पदार्थ को पैदा होते हुए देखा तथा न ही पदार्थ से चेतना पैदा होते हुए देखने को मिली। यही देखने को मिलता है कि चेतना एवं पदार्थ अविभाज्य वर्तमान है। सत्ता में सम्पृक्त (भीगा हुआ, डूबा हुआ, घिरा हुआ रूप में ओतप्रोत) प्रकृति अविभाज्य वर्तमान होने के कारण स्वयं अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व के रूप में नित्य प्रकाशित है। अर्थात् चेतना व पदार्थ में एक नित्य सामरस्यता त्रिकालाबाध सत्य है।

सत्ता व्यापक है और सत्ता में प्रकृति रूप है और अविभाज्य है। ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ सत्ता न हो, इसलिये प्रकृति का सत्ता में होना स्वाभाविक है।

दि० - 6
26-05-92

दिवस -7
27-05-92

सत्ता व जीवन में अन्तर - जीवन में गुणात्मक परिवर्तन। जीवन का प्रभाव होते विशाल। सत्ता व्यापक। जीवन, चैतन्य प्रकृति में जागृत। प्रकृति के दो रूप - जड़ और चैतन्य। गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य पद में जीवन है। जीवन अविकसित में (पशुओं में) भी व्यक्त होता है। यानि जीवन शरीर के आकार में ढल जाता है।

? आवेश - एक दूसरी इकाई के बीच अच्छी दूरी, इतना अच्छी दूरी में अतिकर्षण। यह अतिकर्षण (i) ब्रह्माण्डीय किरण (बहुत सारे गृह गोल, जो क्रम में समृद्ध या व्यवस्थित नहीं हो पाये जैसे सूर्य - उसमें जो पदार्थ है वे विकास के सूत्र से सम्पन्न हैं। वहाँ सामान्य हो, वनामकीय अभी तैयार नहीं। ये ताप निकालता है, जहाँ ताप कम है वहाँ वह सामान्य होता है। (ii) विकसित धरती सुरक्षा कवच (ओजोन पर्त) बनाकर रखता है। धरती पर उत्पात, मनुष्य द्वारा विकास के नाम उसकी गड़बड़ी से। तथा इसका अनुभव कारण है। हमने उसको फाड़ दिया। आदमी को शामिल ... ... में पड़ गये)

दिवस 8
28-05-92

① ईश्वरप्राप्त वस्तु है, जो हम मानते रहे, भगवान को खोजते जाते हैं।

② चारों अवस्थाएं एक दूसरे के लिए पूरक हो - स्वर्ग। यह मनुष्य-2 के साथ पूरक हो तभी सम्भव है।

धर्म = समाधान = सुख। सार्वभौम व्यवस्था और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदार - व्यवहार रूप में, कार्य रूप में, अनुभव रूप में धर्म।

p.15 - विकास को दो प्रकार से बताते गये। परमाणु में - गठन के आधार, गठनपूर्णता

② अस्तित्व में सम्पूर्ण वस्तु सत्ता में भीगा हुआ, डूबा हुआ एवं घिरा हुआ है। सत्ता में बल सम्पन्नता के कारण क्रिया। अंशों से भी छोटी इकाईयां। लेकिन वे व्यवस्था में नहीं इसलिए इन्हें पदार्थ की इकाई नहीं माना गया। क्रिया के कारण प्राणमय कोष कम। ग्रहण और विसर्जन, परमाणु में अंशों का ग्रहण और विसर्जन ये अन्नमय कोष। धरती में अलग-2 बीज डालने पर अमृत व विष चयन करने वाला गुण वनस्पति में आ चुका है। पेड़ खाते रहे आस्वादन नहीं है। प्राणमय कोष (वनस्पति) जीते रहे ये ही सुख का लक्ष्य है। आनन्दमय का कोई अंश जागृत। सुख, दुःख का अनुभव होता है इसमें आस्वादन भी आ गया। आनन्दमय कोष जीवों में भी है। विज्ञानमय कोष - जीवन शक्तियों के माध्यम से Know How जानना सार्वभौम व्यवस्था को पहचानता है। सारा खेल ऊर्जा का। ... सम्मुख ऊर्जा में ... पहचाना नहीं।

दिवस-9
29-05-92

प्राप्त योग - जो प्राप्त है। अस्तित्व/ईश्वर। इसमें जागृत होकर अनुभूत होना पाया जाता है।

प्राप्य योग - जो प्राप्त नहीं उसे प्राप्त करना है। प्रकृति अनन्त है। एक इकाई दूसरे इकाई का सान्निध्य प्राप्त करता है। दूसरी विधि से सान्निध्य प्राप्त होते हैं। लेकिन उसे पहचानते नहीं। सान्निध्य को सम्बन्धों से पहचानते हैं। इसमें आस्वादन है। प्रेम = दया + कृपा + करुणा। वस्तु, शरीर भाषा, रूप का आस्वादन होता है। भौतिकवाद यहीं फंस गया। इसी में विकार आयेंगे ही। मूल्य एवं मूल्यांकन पूर्वक इसमें सुखी होते हैं। ... से सुख।

दिवस-10
30-05-92

सामाजिक नियम :- स्वधन, स्वनारी / स्वपुरुष और दयापूर्ण कार्य व्यवहार विन्यास के रूप में होना पाया जाता है। यह प्रमाण मनुष्यों के आचरण में देखने को मिलता है या मिलना सम्भव है। अथवा सम्पन्न होने के लिए बाध्य है। इसलिए साधना आवश्यक है।

सामाजिक नियम सन्तुलन का बिन्दु है। इसमें मूल्य, चरित्र और ~~आचरण~~ नैतिकता के रूप में आचरण सन्तुलित हो पाता है। इसलिए समाज और सामाजिकता का अर्थ प्रतिपादित हो पाता है।

बौद्धिक नियम :- असंग्रह (आवर्तनशील अर्थव्यवस्था में भागीदारी), स्नेह, विद्या (जीवन विद्या), सरलता (पूरकता विधि से चलने वाली), अभय (शरीर का नश्वरत्व, जीवन का अजरत्व, एवं व्यवहार के नियम)

उपरोक्त बौद्धिक नियम सकारात्मक है। इसी के साथ नकारात्मक भी बौद्धिक नियम है यथा संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान और भय।

प्राकृतिक नियम :- मनुष्येतर प्रकृति मनुष्य के लिए एवं मनुष्य मनुष्येतर प्रकृति के लिए नैसर्गिक है (जैसे नैसर्गिक माध्यम जैसे बीज जमने के लिए पानी, जमीन, अंधेरा नैसर्गिक है।) इसमें पूरकता विधि वर्तमान है इसका पालन प्राकृतिक नियम है।

दिवस-11
31-05-92 कार्य कारण - संयोग मानकर जीव जगत को प्रमाणित किया। प्रकृति ईश्वर के कारण से संसार उत्पत्तिवाद में किसी देवी-देवता अवतार से उत्पत्ति। आज कोई सन्तोषी माँ से कहे - कौन उनपर मुकदमा चलाये। पैदा होने ना होने का निश्चित नियम होगा। जो समझ में आयेगा ~~[illegible]~~

विद्वान कम, विचारक उसासे ज्यादा, क्रियान्वयन करने वाले और ज्यादा। विद्वान का मूल्यांकन, सम्मान, कृतज्ञता। वेतन नहीं। सम्मान से वह प्रत्येक जिज्ञासु के लिए उपलब्ध होगा।

दिवस - 12
01-06-92

विषय - अस्तित्व में नहीं। वस्तु का अस्तित्व है। जो समझ में नहीं आया वह विषय है। समझने के बाद वस्तु। वस्तु जो प्रकाशमान है। वास्तविकताएं हैं। अस्तित्व अनन्त भाव है, सम्पूर्ण भाव है। जीवन मनाकार को साकार बनाने के लिए कार्यपक्ष बनाता है।

साधना :- सर्वतोमुखी समाधान के प्रति हमें विश्वास करना होगा। किसी भी समस्या से भागना नहीं है। पहले स्वयं पर विश्वास (जीवन की यथार्थता, सत्यतापर) जीवन महिमा, कार्य (अध्ययन विधि), स्वरूप को जागृति विधि से पहचानेगा। जो स्वयं में ही प्रमाणित होना है।

मानव अपने रूप के आधार पर अपने प्रमाणों (जीवन प्रमाणों) को नहीं दे पाता। फल से मूल में जाना। समाधान या समस्या को पैदा करने वाली वस्तु क्या है? – जीव का कार्य कलाप – संज्ञान शीलता एवं संवेदन शीलता (जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह करना) इसके अनेक combination बनते हैं। कुछ जानता है, कुछ मानता है यहाँ समस्या या समाधान नहीं। हमें समस्या के मूल में जाना पड़ेगा।

चयन व आस्वादन से संकल्प और बोध तक – समाधान और समस्या है। दर्शन = अनुभव की अभिव्यक्ति। अनुभव जीवन के संगीत से होता है। अनुभव और अभिव्यक्ति जागृत। हम समस्या को भी सत्य समझते हैं। समाधान को भी सत्य मानते हैं। वर्तमान में हम यहाँ फँस गये।

सभी समस्या = ~~[illegible]~~ अव्यवस्था की समझ की पीड़ा है। पीड़ा में हम जीना नहीं चाहते। अर्थात समस्या हमारा बन्धन। हम सदा समाधान = सुख को ही चाहते हैं। समस्या, समाधान कहाँ से मिल रहा है उसे समझें। सर्वाधिक समस्या व समाधान – मनुष्य-२ के साथ।

ध्यान – चयन, आस्वादन में न्याय की किरण डाली। चयन उस समय नहीं ~~[illegible]~~ होता ~~[illegible]~~ कार्यरूप में। (परस्परता में रहता है)
लेकिन हम मानस बनाते हैं, पर जीवन बोध ईमानदार है। विश्लेषण करने लगे। आस्वादन में न्याय घुलने लगा। आस्वादन में न्याय सन जाये।

01-06-92
रात्रि 10 बजे से 1 बजे तक
पवित्र कुमार चौधरी

सम्प्रेषणा : मूल तत्व नहीं। इसलिए स्वयं में पूर्ण नहीं। इसलिए कहीं डूबती है कहीं उठती है। इससे विश्लेषण स्पष्ट होता नजर आता है।
जैसे अस्तित्व – रूपात्मक व अरूपात्मक। सम्प्रेषणा से पश्चात स्पष्ट हो व बोध हो। शब्द के अर्थ तक ले जाए।
ठीक भाषा में प्रस्तुत है। दृष्टांत (जैसे से) बात पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं। दृष्टांत – जैसा होता है। हमें दृष्टांत से न रुककर मूल वस्तु के अर्थ में पहुँचाना चाहिए।
ध्यान का उद्देश्य : निश्चित करें (fix) इससे मन भागता नहीं। संकल्प मन को भागने नहीं देता।
सम्प्रेषणा वस्तु के स्वरूप के अनुसार। अरूपात्मक के साथ अनुभव जुड़ा है। कमरे प्रयोग – कमरे की हर वस्तु को देखने का प्रयोग करवाए। अस्तित्व को सम्पूर्ण में समझे, खण्ड-खण्ड में नहीं। प्रथम रूप में। बाद में अरूपात्मक को। प्रयोग में हम शून्य को नहीं गिनपाने से सामान्यतः।
आहार, विहार – में प्रिय, अप्रिय, हिताहित के साथ। प्रिय – इन्द्रिय सन्निकर्ष (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) एवं कर्मेन्द्रियों के सन्दर्भ में।
शरीर से जुड़ी बात – लक्ष्य Qualitative – मुख्य
जीवन से जुड़ी बात – प्रयोजन Quantitative – गौण
विकास की गति – स्वभाव गति में हो या सामान्य गति में ही बना सकते हैं। (साधना या परिवार का उदा० अजय जैन के सम्बन्ध में नौकरी इत्यादि)
देश, काल, शरीर, जीवन के सन्दर्भ में निर्णय।
विकास क्रम में – देश काल में शून्य। मात्रात्मक उपलब्धि देशकाल से जुड़ी है। गुणवत्ता स्वयं में, मात्रात्मक दूसरे के सम्बन्ध में।
समझने का तात्पर्य अस्तित्व में साफ-साफ दिख जाना। न्याय, विवेक, आनन्द सत्य तो अरूपात्मक अस्तित्व ही है। न्यायपूर्ण व्यवहार से Minimum उपलब्धि रहती है।
गुरु – शिष्य – शरीर सापेक्ष न पहचानकर जीवन सापेक्ष। मित्र भी लगभग इसी तरह। माता, पिता से – रक्त मिला। माता-पिता, भाई-बहिन, व पति पत्नी शरीर सापेक्ष।
सम्बन्ध < शरीर सापेक्ष / जीवन सापेक्ष] सम्बन्ध मनुष्य-मनुष्य के बीच। मनुष्य अर्थात शरीर व जीवन का संयुक्त साकार रूप।
पति पत्नी में भी शरीर के सन्दर्भ में सम्बन्ध पहचानते हैं। जिन आधारों पर पहचाना उन्हें निर्वाह करते समय वस्तु का आदान-प्रदान एवं सेवा से लेकिन परिणाम जीवन में ही होता है। चूंकि मूल्यों की प्राथमिकता है। व्यवहार में जीवन पहले, शरीर बाद में। (पोषण, सुरक्षा, सेवा – आदान-प्रदान में)। प्रिय, हित में हमने निर्णय तुलना में लिया। यदि चयन और आस्वादन में हम हित में समर्पित हो जाये। जैसे किसी को आमंत्रित किया। अतिथि के हित को जोड़कर क्या-क्या खिलाये ये तय हो गया। अन्य किसे बुलाये? उन्हें कैसे खिलाये पिलाये – वहीं चिन्तन शुरू। चिन्तन काफी विस्तृत हो जाता है। यहीं से चिन्तन भी शुरू। चिन्तन शुरू किया।

09-06-92

शाकाहार : दुग्धाहार : मांसाहार मद्यपान

प्राचीन कालसे सभी देशों में इन दोनों आहार पद्धतियों के श्रेष्ठ, नेष्ठ, उचित-अनुचित, आवश्यक- अनावश्यक सम्बन्धी चर्चा होती आयी है। यह प्राय: धार्मिक परम्पराओं में भी व्यापी हुई एक अहम् मुद्दा रही है। इसी के साथ अहिंसा- हिंसा भी जुड़ा रहना पाया जाता है। मनुष्य सहज रूप में अहिंसा का पक्षधर है। हिंसा की मान्यताओं में विविधता पाया जाता। कुछ धर्म नेता मांसाहार के बारेमें सहमति प्रदान करते हैं किन्तु हिंसा के बारे में सहमति नहीं दे पाते हैं। इससे बचने के लिए बहुत सारे उपायों को खोज डाला। किसी मन्त्र को पढ़कर काट देना अथवा जिसको काटते हैं उसकी सद्गति की कामना करते हुए किसी को वध करदेना मनुष्य में से कुछ लोग उचित मान लिया। धर्मगद्दियों से स्वीकार हुआ औचित्यता को अधिकतर मनुष्य अनुमोदन करता रहा। इस विधि से रूढ़ियों का विशेषकर आहार पद्धतियों में रूढ़ियों का बना रहना पाया जाता है। इसमें प्रधानत: मांसाहार मद्यपान शाकाहार : दुग्धपान स्वीकारा जाता है।

ऐतिहासिक विधि से देखने पर पता चलता है मनुष्य इस धरा पर जबसे अपने जीवन क्रम को आरम्भ किया है तब से शिला युग, शिला से कबीला युग, कबीलायुग से दासयुग, दासयुग से संघर्ष युग सहजता में जागृति के उद्देश्य से ही घटित होता आया। सभी बदलती हुई घटना स्वयं असन्तुष्टि को अर्थात जागृति के प्रमाणों में रिक्तता को अनुभव करता रहा। फलत: पुन: परिवर्तन की पृष्ठ भूमियां बनती रही, परिवर्तन और अन्तरण (बदलाव) होते आया। इन अन्तरण क्रम में सभी प्रकार रूढ़ियां पीढ़ी से पीढ़ी को अन्तरित होता आया। वातावरण में परिवर्तन एवं मानव में बदलाव से अन्तरण क्रम है। प्रत्येक मानव सन्तान किसी न किसी परिवार में अर्पित रहता है। ~~वह~~ पुन: वह किसी शिक्षा धर्म और राज्य संस्था में अर्पित होना पाया जाता है। परिवार का जो मान्यता और रूढ़िया है वही उस सन्तान का पहला वातावरण है। शिशु अवस्था में जो अमृत पिलादे, मद पिलादे, मद्य पिला दे, मांस रसों को पिला दे स्वीकारता है। क्यों कि उनके पास कोई विकल्प नहीं रह जाता है। इसप्रकार दुग्धपान कराये, फलों का रस पिलाये, अन्न रसों को पिलाये उसको भी स्वीकारता है। तीसरा स्थिति इन दोनों के सेवन कराये उसको भी स्वीकारता है। इस प्रकार बच्चे जिस वातावरण में शरीर के द्वारा जीवन यात्रा को आरम्भ करते हैं उसी समय से शरीर पुष्टि और संरक्षण जैसा-2 मिल पाया, उसी को स्वीकारते हुए अपनी आगे को मार्ग बढ़ाना देखने को मिलता है। किसी आयु के अनन्तर शिक्षा धर्म, और राज्य की स्वरूपों, तथ्यों को समझने के लिए तत्पर होता है

तब तक उसमें स्वयं कुछ रूढ़ियां ढला रहना परंपरा (समुदाय परंपरा) सहज है। अभी तक की सभी धर्म गद्दियां समुदायगत चेतना से ग्रसित हैं। जबकि अब राज्य गद्दी भी समुदायगत होते हुए आहार पद्धतियों वह विशेष धार्मिकता को व्यक्त नहीं करता। भले पहले करता रहा हो। जहाँ-2 धर्मगद्दी और राज्य गद्दी की तालमेल अथवा साझेदारी बनी है वहाँ अभी भी आहार विहार के ओर में ~~...~~ रूढ़ियां बना ~~...~~ हुआ है।

विज्ञान जगत स्थापित होने के उपरान्त इसके पूर्व की सभी आदर्शवादी वांग्मय को एक विधिवत अध्ययन ना होना का करार देकर अब ~~विज्ञान~~ नियमों के अनुसार प्रक्रिया विधि से प्रमाणों को मानव सुलभ करते हुए विज्ञान की उत्कृष्टता को स्थापित करना एक लक्ष्य मानकर बहुत सारा क्रियाकलाप किये गये। इसका निचोड़ अथवा अभी तक विज्ञान की उपलब्धियों का निचोड़ ह्रास विधि पर प्रमाण में सीमित हुई। यांत्रिकता मनुष्य का जीवन लक्ष्य हो पाना सम्भव नहीं हुआ। आदर्शवाद के अनुसार रहस्य रहित का आचार अथवा प्रमाणों का आधार नहीं हो पाया। इन दोनों विधियों से प्रताड़ित और असंतुष्ट मानव जब जो इच्छा पड़े वैसे ही कुछ करने और सोचने के क्रम में लगा ही है। इसी क्रम में विज्ञान अपने ह्रास विधि के अनुसार मेंढक, बकरी, मनुष्य, गाय इन सबके मांसादि, मांस रक्तादि तत्वों को ~~रासायनिक~~ रासायनिक वस्तुओं के रूप में पहचाना। पहचानने के लिए यन्त्र विधियों को मानव सुलभ कराया। इसके फलस्वरूप मांसाहार और शाकाहार में अभेदता प्रतिपादित हुई। इससे मांसाहारियों को राहत सा प्रतीत हुआ। इसी के साथ यह स्पष्ट नहीं हो पाया कि जीववध के साथ जीवों में जो कुछ भी अभिव्यक्तियां हो पाती हैं उसको मानव भाषा में तड़पना कलपना कहा जा सकता है उसे देखकर अपने में सन्तोष लगाना सभी व्यक्ति के बलबूते की नहीं हो पाई। इसका तात्पर्य ये हुआ कि प्राणिवध, जीववध मनुष्य वध को घटना के रूप में देखकर सभी कि लोग प्रभावित होता पाया गया। साथ ही अपरोक्ष रूप में वध का भागीदारी को मांसाहार के रूप में स्वीकारते आया। यह रूढ़ियों के आधार पर होना पाया गया। इसके फलस्वरूप कई लोग मांसाहार की निरर्थकता अनौचित्यता और हिंसा को भी स्वीकारा। उसमें से कुछ लोग शाकाहार में परिवर्तित हुए) ऐसी नजीर सभी देश काल में होते आया। इसी प्रकार

शाकाहारी मानव भी मांसाहार में मांसाहारी के रूप में होना देखा गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मानव सहज कर्म स्वतन्त्रता एवं कल्पनाशीलता के आधार पर रूढ़ियों को बदलने का दृष्टान्त समझ में आता है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट हुआ कि विज्ञान के अनुसार रासायनिक तत्व के ~~जनक~~ रूप में, मनुष्य व जीवों को प्रतिपादित करने के उपरान्त भी मनुष्य सहज कल्पनाशीलता एवं कर्म स्वतन्त्रता की गति अवरुद्ध नहीं हुआ। साथ ही धर्म के इस धरती पर स्थापित समस्त धर्म गद्दीयों के अनुसार आहार के दोनों पक्ष अथवा किसी एक पक्ष के वकालत करने पर भी मनुष्य का कल्पनाशीलता और कर्म स्वतन्त्रता की गति रुक नहीं पायी।

मुख्य बात यह है कि मनुष्य सहज कल्पनाशीलता और, कर्म स्वतन्त्रता की अबाध गति किसी लक्ष्य की ओर है या नहीं इसको पता लगाना एक आवश्यकता उत्पन्न हुई। इस अधिकार को मानव ही उपयोग करता हुआ प्रमाणित है और वर्तमान है। ऐसी स्थिति में कल्पनाएं कर्म के लिए, कर्म कल्पनाओं के लिए पूरक होना एक सहज क्रिया के रूप में प्रत्येक मनुष्य में परिलक्षित है, इसका तात्पर्य ये हुआ कि कल्पनाशीलता कर्म स्वतन्त्रता के मध्य में तृप्ति बिन्दु का होना एक अनुमान विधि में आता है। स्पष्ट अनुमान विधि वो सब है जो अस्पष्ट कल्पनाएं हैं। स्पष्ट कल्पनाएं वे हैं जो योजनाओं और कार्य योजनाओं में परिणत हो जाते हैं जहाँ कर्म स्वतन्त्रता प्रमाणित होती है। इसप्रकार योजनाओं, कार्य योजनाओं और कर्म स्वतन्त्रताओं कल्पनाशीलताओं का निरन्तरता मानव परम्परा में होना पाया जाता है। इसी विधि में इनके तृप्ति बिन्दुओं को स्वराज्य और स्वतन्त्रता के रूप में पहचाना जाता है। स्वराज्य का आधार परिवार होना पाया गया है। कर्म स्वतन्त्रता का तृप्ति बिन्दु स्वत्वमय में पाया गया है जो स्वयं जीवन जागृति का द्योतक है। जिसमें से स्वराज्य व्यवस्था में ही प्रत्येक मनुष्य को एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को पहचानना सम्भव है। अन्य विधियों में अर्थात समुदाय, वर्ग चेतना विधियों से पाये जाने वाली व्यवस्था कार्यों में ~~स्वयं~~ मनुष्य स्वयं एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण नहीं मिलता। इसका प्रमाण यही है कि वर्ग या समुदाय चेतना का होना।

वर्ग, समुदाय समाज नहीं होता। समाज, वर्ग या समुदाय नहीं होता। इसका अवलोकन परिवार, ग्राम परिवार

विश्व परिवार विधि के रूप में प्रस्तुत अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था योजना में करें। साथ ही उसके पृष्ठ भूमि के रूप में जीवन विद्या को विधिवत अध्ययन करें। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आये कि प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मस्वतन्त्रता और कल्पनाशीलता को जानकर, अनजान को जीवन जागृति के लक्ष्य में उपयोग करता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि कल्पनाशीलता और कर्मस्वतन्त्रता रूपी गति की गन्तव्य के लिये है। यह गन्तव्य जीवन जागृति ही है। इस प्रकार मानव परम्परा जीवन जागृति पूर्वक ही स्वतन्त्रता एवं स्वराज्य रूपी वैभव को प्रकाशित कर पायेगा व प्रमाणित कर पायेगा। यह अधिकार प्रत्येक मनुष्य को समान रूप में प्राप्त है।

व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के क्रम में ही हिंसा अहिंसा की स्पष्ट रेखाकरण हो पाती है। व्यवस्था का तात्पर्य स्वराज्य व्यवस्था ही है जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है। स्वयं में व्यवस्था वर्तमान में विश्वास है जो स्वयं के प्रति विश्वास श्रेष्ठता के प्रति सम्मान के रूप में प्रमाणित होती है यह जीवन विद्या में पारंगत होने मात्र से यह सार्थक हो जाता है। जीवन विद्या को सर्व सुलभ करने की व्यवस्था का शुभारम्भ भजनाश्रम अमरकंटक में और I.I.T. दिल्ली में किया जा चुका है। इसे कोई भी व्यक्ति परीक्षण कर स्वीकार कर सकते हैं।

अब हम इस मोड़ पर पहुँचते हैं कि सहज रूप में मनुष्य व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को स्वीकारता है। ऐसे स्थिति में हमारा अध्ययन वर्तमान में प्राप्त रहस्य मूलक ईश्वर केन्द्रित मूलक ज्ञान और अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक वस्तु केन्द्रित चिन्तन ज्ञान (आधुनिक विज्ञान) के अतिरिक्त अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान के आधार पर व्यवस्था को पहचानने की तथ्य स्पष्ट हुई है। इसी क्रम में हिंसा अहिंसा का तथ्य भी स्पष्ट हुआ है।

अस्तित्व में जड़ प्रकृति, चै.. य प्रकृति प्रसिद्ध है। प्रसिद्धता का तात्पर्य नित्य वर्तमान है। चैतन्य प्रकृति में जीवन गण्य होता है। जो जीवन विद्या से स्पष्ट हो जाता है। साथ ही यह

भी स्पष्ट होता है कि, मनुष्य ही ज्ञान रूप में (दृष्टा पद प्रतिष्ठा) में
व्यक्त है। इसके आधार पर जड़ प्रकृति, रासायनिक भौतिक
रचना विरचना के रूप में वैभवित है। जीवन न्याय, धर्म,
सत्य को प्रमाणित करने के रूप में अपने दृष्टा पद प्रतिष्ठा को
प्रमाणित करता है। प्रत्येक मनुष्य जीवन और शरीर का संयुक्त साकार
रूप है। जीवन तृप्ति के लिए सार्वभौम व्यवस्था (सर्वतोमुखी समाधान
व प्रमाणिकता (स्वानुशासन) में स्पष्ट होती है। शरीर के
लिए पोषण, संरक्षण और समाज गति (अखण्ड समाज) व उसकी निरन्तर
गति मानव परम्परा की महिमा के रूप में प्रमाणित होती है। इसी
क्रम में हिंसा व अहिंसा का स्पष्ट रेखांकण प्रमाणित होता है।

रासायनिक रचना क्रम में प्राणकोशाओं की रचना एक
कोशीय रचना से चलकर, द्विकोशी, बहुकोशी रचना के रूप में
अनेक रचनाएं प्रमाणित हो चुकी हैं। बहुकोशीय रचना क्रम में विविधता
भी स्पष्ट है। ये विविधताएं अपने बीजानुषंगी, वंशानुषंगी विधि सम्पन्न
होने के क्रम में अनेकानेक प्रयोगों के उपरान्त प्रत्येक विविधता अपने
परम्परा में दृढ़ता को प्राप्त कर लिया है। इसी प्रकार वनस्पति जगत
और जीव जगत के शरीर रचनाएं अपने आप स्पष्ट है। जैसा - अनेक
प्रजाति के जीव शरीर, मनुष्य शरीर वंशानुषंगीयता के आधार पर
स्थापित हुई है। इसका मूल विधि उन-उन परम्परा के कोश, भ्रूण
में समाहित रहता है।

अस्तित्व में विविधता को आकलित करने के क्रम में पदार्थावस्था
में परिणामानुषंगी विधि से सर्वाधिक विविधताएं प्रस्तुत है। प्राणावस्था
में बीजानुषंगी विधि से, जीवावस्था में वंशानुषंगी विधि से और ज्ञानावस्था
में संस्कारानुषंगी विधि से विविधता शून्य स्थिति तक पहुँच चुका
मानव में भ्रमित अवस्था, भ्रान्ताभ्रांत अवस्था और निर्भ्रान्त अवस्थाएं
में प्रमाणित है। निर्भ्रान्त मानव जितने भी होंगे उनमें कोई विविधता
नहीं रह पाती। इन तथ्यों से स्पष्ट हुआ कि मानव प्रकृति में विविधता
शून्य होने की, सर्वथा समता के लिए स्रोत जीवन जागृति के रूप में
निश्चित समीचीन है। इसे मानव परम्परा में सहज सुलभ कर लेना ही ऐतिहासिक
परिवर्तन का स्वरूप होगी। ऐतिहासिक परिवर्तन का तात्पर्य संघर्ष युग से
समाधान युग में प्रवेश।

समाधान क्रम सभी कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य, आयामों में
फैला हुआ है। क्योंकि अस्तित्व में मनुष्य को छोड़कर सभी प्रकृति अपने आप में
व्यवस्था के रूप में है। अभी तक मानव अपने त्व सहित व्यवस्था में जीने
के लिए तड़फ ही रहा है। प्रयास तो शुभकामना से ही आरम्भ होता
रहा। जब फल का समय आया तब अव्यवस्था की समझ से
पीड़ित होना सर्वाधिक विकसित मनुष्य की अभिव्यक्ति रही। क्योंकि

होके महापुरुष इस धरती पर सुखद क्षणों को स्थापित करने के लिए प्रयास किया। कर्म और विचारों के रूप में। वह शनै-२ एक समुदाय चेतना में सिमटती रही। ऐसी परस्पर समुदाय चेतना में प्रकट हुई दूरियां स्वयं पुनः पीड़ा का कारण बना रहा।

~~आ पर्याप्त~~ दर्शित
सन्दर्भित हिंसा अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में स्पष्टीकरण का क्रम चलते हम यहाँ पहुँचे कि मानव में ही विविधता का समापन उसके स्थान पर न्याय, धर्म, सत्य का नित्य विद्यमानता अस्तित्व सहज है। जब हम किसी भी जीव की हत्या करते हैं तभी मांसाहार की बात बनती है। हत्या न्याय व्यापक है, धार्मिक, एवं सत्य के लिए समर्थित किया होना सम्भव है क्या! ऐसा पूछने पर स्वाभाविक रूप में हत्याओं के पक्ष में कम से कम अथवा नहीं के बराबर व्यक्ति हो पाते हैं वह भी किसी कारण वश। सर्वाधिक लोग अभी भी हत्या के विपरीत अथवा विपक्ष में मतस्थापित है। यह तो सामान्य लोक सर्वेक्षण है दूसरी विधि से ~~लौकिक विषयों के द्वारा परीक्षण करने से यह निश्चय~~ पता लगता है कि मनुष्य में पाए जाने वाली ~~लौकिक~~ प्रवृत्ति दो प्रकार से देखने को मिलता है। मनुष्य के हरेक क्रिया व वाणी के पूर्व में मानसिकता का होना पाया जाता है जो जीवन सहज वैभव है। भ्रमित मानसिकता राग, द्वेष, अविद्या, अभिमान और भय के रूप में और निर्भ्रम मानसिकता - असंग्रह (आवर्तनशीलता), स्नेह (सहअस्तित्व) विद्या (जीवन विद्या), सरलता (सहभागिता सहभागीयता) और अभय (सम्बन्धों की पहचान और उनमें निहित मूल्यों का निर्वाह, फलतः विश्वास) ये प्रमुखता प्रवर्तन का स्वरूप है। इन्हीं दो प्रकार की मानसिकता से ही सम्पूर्ण मानव अपने प्रवर्तन को वाणी से, कार्य व्यवहार विन्यास से प्रमाणित करता है। इसमें से रागादि पाँच प्रवर्तन क्लेशकारी होने के कारण ऐसे व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कार्य व्यवहार विन्यास से क्लेशों को अथवा समस्याओं को आमंत्रित करता है। इसी प्रकार असंग्रह आदि मूल प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया सभी कार्य-व्यवहार विन्यास समाधान समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व को प्रमाणित करता है। इससे स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार की मूल प्रवृत्तियों से सम्पन्न मानव को परम्परा के रूप में पाना है। अस्तु मानवीयता पूर्ण परम्परा

पूर्वकल्पी सर्वाधिक अपना सम्पूर्ण मानव को आसंग्रह
आदि मूल प्रवृत्तियों के साथ जीने की कला को सहज सुलभ
किया जाना सहज है। इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर विविध विधा
अर्थात जीवन विधा सहज सुलभ होने के कारण जीवन ऐसा ही
/ जीवन प्रकाश में ही हिंसा और अहिंसा स्पष्ट होती है।

चैतन्य प्रकृति जीवन और शरीर के संयुक्त साकार
रूप में मानव तथा जीवों की परम्परा को प्रकाशित किया है।
जिन जीव शरीरों में समृद्ध मेधस रचना जो रासायनिक
प्रक्रिया ही से सम्पन्न हो चुकी है ऐसी शरीरों को
जीवन द्वारा विचारों को प्रकाशित कर अपने को प्रमाणित
करता है। इसी क्रम में मनुष्य शरीर भी सर्वाधिक समृद्ध
मेधस रचना सम्पन्न होने के फलस्वरूप ही जीवन अपनी
सम्पूर्ण महिमा को मानव परम्परा में स्थापित कर देने
के लिए प्रयत्नशीलता आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक,
विधियों में विविध प्रकार से प्रकाशित करता आया है। जो
आज संघर्ष युग के रूप में प्रत्यक्ष है। इसे समाधान युग में
अन्तरित होना एक अनिवार्यता है। यह जागृत विधि से ही
सम्भव है। युद्ध, विध्वंस, वध, शोषण, द्रोह, विद्रोह से
ये सम्भव नहीं है। सम्पूर्ण संघर्ष का ये ही हाथ पैर
नाक है। इन्हीं क्रियाओं को सम्पन्न करना ही संघर्ष कहलाता
है। इसका मानव अपना सर्वाधिक मानव विरोध करता है
इसलिए भी संघर्ष से समाधान की ओर सहज रूप से और
निश्चित दिशा चाहिए।

समृद्ध मेधस युक्त शरीर रचना के साथ जो जीवन
जीने की क्रम में अपने को व्यक्त कर रहा है उसे बलपूर्वक
वध और भक्षण करना हिंसा है।

इस मुद्दे पर कुछ लोगों का पूछना है क्या मरने के बाद
उस शरीर का भक्षण करना उचित होगा या नहीं। इस मुद्दे पर स्वयं
स्पष्ट है कि मानव संवेदनाएं धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा,
करुणा के रूप में प्रमाणशील होता है। इस आधार पर मानवीय
दृष्टि और प्रवृत्तियों के अनुसार ऐसी आहार से आकर्षित होना
अथवा प्रलोभित सम्भव नहीं है। मानव संचेतना की महिमा

मानव सर्वाधिक विकसित होने का गवाह है। विकसित अविकसित के विकास में सहायक होना ही विकसित का गवाही है। इस आधार पर मनुष्य - मनुष्येत्तर प्रकृति के लिए पर्यावरण (नैसर्गिक) होना स्पष्ट होती है। इस विधि से मनुष्येत्तर प्रकृति मनुष्य के लिए एवं मनुष्य मनुष्येत्तर प्रकृति के लिए पूरक ~~विधि~~ होना सफलता का द्योतक है। मानव में सफलता जागृति के रूप में और मनुष्येत्तर प्रकृति की सफलता सन्तुलन के रूप में स्पष्ट है। इस विधि से मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ हिंसा, अहिंसा स्पष्ट हुई। मनुष्य प्रकृति के साथ द्रोह, विद्रोह, शोषण, युद्ध, अपराध के रूप में हिंसाएं और समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के रूप में प्रमाणित होती है। इस प्रकार मानव के सन्दर्भ में और मनुष्येत्तर प्रकृति के सन्दर्भ में हिंसा और अहिंसा स्पष्ट होता है यही अव्यवस्था और व्यवस्था के रूप में अध्ययन गम्य है।

अव्यवस्था, गलती और अपराध ये सब

भ्रमजन्य अथवा भ्रममूलक होने के कारण ये सब सुधरने योग्य है। किसी अपराध उसी प्रकार से दुहराता नहीं है। किसी भी गलती उसी प्रकार दुहराता नहीं। अव्यवस्था का गति सहज नहीं होती अर्थात असन्तुलित रहता है। असन्तुलन का प्रकार सार्वभौम नहीं होता। सन्तुलन सार्वभौम होता है। सन्तुलन व्यवस्था का द्योतक है इसलिए सार्वभौम होता है। मूलतः मनुष्येत्तर प्रकृति सन्तुलन के रूप में है ही। इसलिए वह सब अपने त्व सहित व्यवस्था के रूप में प्रमाणित है। मनुष्य भी अस्तित्व सहज प्रकाशन है। मानव सहज मौलिक गुणों के आधार पर भ्रमित और निर्भ्रमित विधियों से व्यक्त होना सहज है। भ्रमित विधि से मनुष्य अपना मानव जीवकोटि के सदृश प्रकाशित होने जाता है। फल स्वरूप मानव पद में अव्यवस्था का असर पीड़ा के रूप में होता है क्योंकि ह्रास भी नियम से होता है और विकास भी। इस क्रम में पतनशील और मनुष्य का सन्तुलन, नियन्त्रण नहीं होने के कारण अथवा विकास सहज न होने के कारण असन्तुलन भावी हो जाती है। यही अव्यवस्था की पीड़ा है। इसी प्रकार अपराध भ्रमजन्य क्लेशकारी प्रवृत्ति का प्रकाशन है यह सदा ही असन्तुलित रहना पाया जाता है। इसलिए अपराध में सर्वाधिक विविधता भावी होती है। गलतियों के सन्दर्भ में यह

देखा गया है कि हजारों बच्चों के लिए गणित का प्रश्न पत्र प्रस्तुत किया जाता है उसका उत्तर यदि सही होता है तब हजारों का उत्तर एक ही होता है। जब गलत किया जाता है तो हजारों में हजारों (एकाधिक) गलतियां देखने को मिलती है। इससे स्पष्ट हो गया कि हम मानव सही में एक, गलती में अनेक, न्याय में एक अन्याय में अनेक, समाधान में एक, समस्या में अनेक। इस निष्कर्ष से साथ हिंसा मानव परम्परा के लिए, समस्या है ना कि समाधान। मानव सहज रूप में समाधान को चाहता है।

10-06-92

जीव हिंसा की आवश्यकता जब मानव शिला युग से पहले की स्थिति में थे उस समय में उत्पन्न हुई। क्योंकि जीवों के बीच में ही अपने को सुरक्षित रखने की आवश्यकता रही। इसी आधार पर हिंसक हथियारों को क्रमागत विधि से जैसा डण्डे से, पत्थर से, धातुओं से, प्रयोग किया। इसके बाद बुद्धि और विज्ञान को लगाकर हिंसक हथियारों को बनाया गया। क्रम से जब हिंसक जानवरों से कोई खास भय नहीं रहा तब ही सर्वाधिक मानव नाश के हथियारों को मानव ने बनाया। मानव के साथ मानव का विरोध समुदायिक चेतना से उत्पन्न होता आया। जो स्पष्ट है। अभी मानव, मानव नाश का अथवा किसी समुदाय को नाश कर स्वयं सुरक्षित होना सम्भव नहीं। इसका मूल कारण अस्तित्व नाशकारी नहीं अथवा नाश होने योग्य नहीं अथवा नाश नहीं होती। इसके विपरित अस्तित्व सहज रूप में सह अस्तित्व नित्य प्रभावी है। यह जागृति क्रम में सफल होना पाया जाता है। भ्रमवश मनुष्य समुदाय चेतना में फंस गया है। सहज रूप में मानव जागृति के लिए योग्य पात्र है। क्योंकि मानव में जागृति प्रमाणित होना है। इसके पहले सम्पूर्ण प्रकृति में संतुलन, नियन्त्रण, विकास संक्रमण पूरकता, उदात्तीकरण सिद्धान्त प्रभाव शील है। मानव कुल अपना मानव परम्परा जागृत परम्परा के रूप में वैभवित हो पाता है। भ्रमित कार्यों से स्व कुल का ही नाशकारी परिस्थितियों को निरमित करने लगा है जो आज की तिथि में प्रमाणित हो चुकी है। इससे छूटने के लिए मानव सहज मानवीयता ही है। मानव की शरण मानवीयता है। इस लिए यह जागृति विधि में सर्व सुलभ होना समीचीन है। इसे सफल बनाना हमारा कार्य है।

मानव वन्य पशुओं से सुरक्षित रहना आवश्यक है। वह उसके सन्तुलन का भी मर्यादा है। वन्य पशुओं के सदृश मानव को बधा विध्वंस का निशाना बनाना अमानवीयता का द्योतक है। अमानवीयता राक्षस मानव और पशु मानव के रूप में सर्वविदित होती है। राक्षस मानव का आशा यही है कि स्वयं को छोड़कर सभी पशु मानव बने रहें। जबकि यह अस्तित्व, अस्तित्व में सह अस्तित्व और विकास सहज रूप में सम्भव नहीं। इसलिए हर पशु मानव राक्षस मानव बनने के लिए प्रयासरत होता है। क्योंकि राक्षस मानव का आधार सुविधा, सामग्री, शोषण का बाजार नहीं बनना

चाहता। साथ ही पशु मानव में भी कर्म स्वतन्त्रता, कल्पनाशीलता वर्तमान है। इसी आधार से दास युग से संघर्ष युग में पहुँचना हो पाया। संघर्ष, सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज का आधार नहीं हो पाता। हर पशु मानव, राक्षस मानव भी सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज को चाहता है। यह अहिंसक विधि से अथवा इसके लिए अहिंसकता आवश्यक तत्व है। अहिंसकता का कार्य रूप परस्पर पूरकता है और नैसर्गिकता है। प्रत्येक मनुष्य अन्य मनुष्य के नैसर्गिक और पूरक है। होना चाहता है अथवा होने के लिए बाध्य है। सम्पूर्ण मानव, सम्पूर्ण मानवेत्तर प्रकृति के नैसर्गिक और पूरक है। इसी प्रकार सम्पूर्ण मानवेत्तर प्रकृति सम्पूर्ण मानव के लिए नैसर्गिक और पूरक है। इसी सत्यता वश सम्बन्ध और मूल्य पहचानने में आता है। मूल्यांकन पूर्वक सिद्ध करना प्रमाणित होता है। इसी विधि से हम मानव अहिंसक होना प्रमाणित हो जाते हैं।

शाकाहार के सम्बन्ध में जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी पर्याप्त स्पष्ट हो चुका है। प्राण कोशाएं मनुष्य शरीर और जीव शरीर की रचना में समान दिखते हुए, रचनाओं की परिशिष्टता और उपयोगिता अपने आप विविध है। जीव शरीर और मनुष्य शरीर के मूलतः किसी जीवन का उपयोगी है और उसकी उपयोगिताएं उत्तर-उत्तर कोटि की जीवों की परम्पराओं में स्पष्ट हो चुकी है। जब कि वनस्पति रचनाएं सर्वाधिक ऋतु क्रम से अनुबन्धित है। ये सम्पूर्ण अन्न-वनस्पतियां बीज अनुषंगी ऋतु क्रम से अनुबन्धित होकर यह धरती को सस्य श्यामला रूप प्रदान किया है। इनमें इस धरती के साथ पूरक विधि से सन्तुलन बना है। ऋतु क्रम व्यवस्था के लिए वनस्पतियां और उसके अनुपात और धरती में निहित खनिज इन दोनों के योगफल में शीतमान, उष्णमान और वर्षमान का सन्तुलन होने के उपरान्त ही मनुष्य इस धरती पर अपने परम्परा को बनाए रखने के लिए प्रयत्न करते आया। इन तमाम प्रयत्नों के साथ सर्वाधिक मात्रा से शाकाहार को प्राप्त करते भी आया। पहले कन्दमूल, पत्ते, फल बाद में अनाज को प्राप्त करने की समझ ज्ञान, विवेक और तकनीकी से युक्त हुआ। इसके बावजूद मांसाहार भी पारम्परिक रूप में पनपा अथवा परम्परा उसे बदलती रही।

शाकाहार रचना में, रचनाओं में जीवन का योग नहीं रहती अथवा जीवन का आधिक्य, प्रभाव नहीं रहता। सम्पूर्ण अन्न वनस्पतियां जीव और मनुष्य के लिए आहार पदार्थ ही तो सम्पूर्ण अन्न वनस्पतियों के लिए आहार पदार्थ, धरती-खाद, हवा पानी और प्रकाश के संयोग का फलन है। इस प्रकार धरती भी अपने स्वरूप को

रासायनिक तत्वों में परिवर्तित कर जीव और मनुष्य के
आहार पदार्थ का भी रूप प्रदान किया है। यह भी बात कह चुके हैं कि
मनुष्य शरीर और जीव शरीर का रचना भी प्राणकोषाओं से
सम्पन्न होता है और वह रचनायें किसी न किसी जीव न
स्वत्व होना स्पष्ट किया जा चुका। अस्तु अन्न वनस्पति
में किसी जीव का अधिकार न होना और उपयोग को पाय करते
पदार्थों स्थितियों में वह धरती के लिए आवश्यक होने को देखने को
मिलता है। अन्न वनस्पतियों को शाकाहार कहा।
इसके सेवन से सर्वाधिक जीव और मनुष्य शरीर के पोषण
होना प्रमाणित होती है। अस्तु शाकाहार और मांसाहार का
स्वाभाविक जीव सहित शरीर तथा जीव रहित
रचना के आधार पर स्पष्ट होती है।

शाकाहार के सम्पूर्ण तत्व जीव शरीर और मनुष्य
शरीर के लिए उपयोगी सिद्ध होना प्रमाणित
हो चुकी है। जीव कोटि में कोई-कोई जैसे शेर जो मांसाहार
के लिए ही वर्तन रहते हैं। ऐसे जीवों को दुष्ट मृगों
(बाघ) के नाम से भी जाना जाता है। ये प्रायः मांसाहार
से पलता देखा जाता है। इसकी भी परम्परायें हैं। यह अन्य
वन्य मृग और मनुष्य पालन जानवरों को खाकर अपना
पोषण कार्य को पूरा कर लेता है। इसी के साथ जीव जो शाकाहारी
के रूप में हैं उनका विपरण भी होते आया है। इसकी गवाही
ये है कि बाघ जैसा मांसाहारी जीव होते हुए भी खरगोश
आदि जैसे अथवा हिरण जैसे अनेक जीव जातियां अपने परम्परा
को बनाये रखते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इनकी
परस्परता में जो मांसाहार जीवों का परम्परा है यह
सन्तुलन के अर्थ में ही उपयोगी है जबकि मनुष्य का
रचना जैसा प्रधान रूप में दांत और आंत ये शाकाहारी
होने के लक्षणों को स्पष्ट करता है। ये सब स्थितियां मनुष्य
के शाकाहारी होने के पक्ष में प्राकृतिक, नैसर्गिक सहज होते-जीते
सहज रूप में मनुष्य अपना अधिकांश मनुष्य शाकाहार के पक्ष में होते
हुए मांसाहार की रूढ़ियों को क्यों अपनाता रहा। इसका उत्तर खोजने
पर पता चलता है कि भोग द्वेष और युद्ध मानसिकता को बनाये
रखने के लिए इसे अपनाना सर्वेक्षण से पाये जाने वाले तथ्य हैं।
जबकि युद्ध और भोग समाज और सामाजिकता का सूत्र व्याख्या
नहीं कर पाया। इस प्रकार भ्रमवश ही मनुष्य अपराध

प्रकृति को किसी समुदाय चेतना का अनुभव मान लेने के फलस्वरूप मांसाहारी रूढ़ियां परम्परा रही। औचित्यता यही है मानव परम्परा को पहचाने, मानवीयता और स्वराज्य व्यवस्था और स्वतन्त्रता को अपनाये। उस स्थिति में मानव के लिए मांसाहार की आवश्यकता नहीं के बराबर हो जायेगी।

मद्यपान के बारे में बहुत कुछ लोग जानकारी प्राप्त कर चुके हैं, उसके बावजूद भी लोग किसी के आधार पर अथवा संघर्षों का मुकाबला करने के लिए अथवा मानसिक पीड़ाओं को भुलाना देने के लिए सहज ही मद्यपान अथवा नशाखोरी किया जाता है। कुछ ऐसे भी मत हैं कि नशा से मानसिकता में एकाग्रता और तल्लीनता होती है। यदि ऐसा होता भी हो तो क्षणिक रूप में होगी और उसके अनन्तर पहले से अधिक मन स्थिति विचलन और पीड़ा का होना पाया जाता है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मद्य और नशा पदार्थ उपविषयों के सदृश औषधियों के रूप में इनकी उपयोगिता अवश्य ही होगी न कि पान और सेवन के रूप में। अस्तु मांसाहार मद्यपान उक्त विश्लेषणों से मानव के लिए कितना उपयोगी है यह स्पष्ट हो चुका है।

<u>दुग्धपान</u> :- इसके बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपने ढंग के विश्लेषणों के आधार पर मांसाहार के सदृश ही निरूपित करना चाहता है जब कि दुग्ध अवश्य ही शरीर जन्य रस रूप होते हैं इसमें ममता पूर्वक आह्लाद सहित उत्पन्न होने वाली रस है। आकार, प्रकार, गन्ध, स्वाद और गुण के आधार पर मांस रस से भिन्न होना पाया जाता है। यह दुग्ध दुग्ध निष्पत्ति, शरीरगत निश्चित नाड़ी और ममता, और पुष्टि द्रव्य जो सुपाच्य रहता है ऐसी संयोग से निःसृत होती है। इसे सभी प्रकार की दुग्ध के मूल में दर्शित किया जा सकता है। इसका मुख्य संयोगी तत्व ममता ही है इस प्रकार ममता मूलक वस्तु दुग्ध होना निरूपित होती है जब कि मद्य किसी मिष्ट पदार्थ विकार पैदा करने के उपरान्त ही मद्य उत्पन्न होती है। यह उर्मी मिष्ट पदार्थ के पर किया गया अत्याचार के फलस्वरूप होती है, इसमें प्रत्येक अणु आवेशित होना पाया जाता है फलस्वरूप उर्मी के रूप में मद्य प्रभावित होती है। फलस्वरूप इसके सेवन उत्तेजना / आवेश होना पाया जाता है।

शाकाहार के सन्दर्भ में भी अनेक मत भेद सुनने को मिलती है। प्रधानतः धर्म गद्दियों में इसकी लम्बी व्याख्या अथवा धर्मावलम्बियों के मुखारबिंद निःसृत बातों को सुनने में आती है। जैसा कि कोई धर्मावलम्बी कहते है कि जमी कन्द (जमीन के अन्दर वाले समस्त कन्द जाति की सब्जी) नहीं खाना चाहिए। शहद को भी कुछ न खाने को कहे है। कोई-२ दूध को नहीं पीने को कहते है। कोई मिर्च नहीं खाने को कहते है। लहसुन, प्याज को तो वर्जित कहते ही है। कोई-२ शक्कर नहीं खाने को कहते है। कोई कहते है कि गुड़ खाना चाहिए शक्कर नहीं इस प्रकार से और भी कोई कहते है सब्जियों में भाजी नहीं खाना नहीं चाहिए। दाल में मसूर दाल नहीं खाना चाहिए। इस प्रकार अनेकानेक मत भेद खाने तथा नहीं खाने के बीच में सुनने को मिलता है। यह इसी प्रकार भी एक मुद्दा है किसी न किसी शाकाहार को कोई न कोई निषेध मानता ही है।

इस सन्दर्भ में इन आहारें सात्विक, राजसिक और तामसिक रूप में भी बात की जाती है। सर्वेक्षण से ये पता लगता है कि जो सात्विक आहार कहलाने वाले वस्तुओं को सेवन करता हुआ मनुष्य भी तमाम शोषण, द्रोह, विद्रोह, युद्ध करता हुआ जिसको तामस राजस कहलाता है ऐसे वस्तुओं को सेवन करने वाला भी बहुत सहृदय व्यक्ति जीता जागता मिलता है। इन आधारों को लेकर इसको एक पैमाना अथवा कोई कसौटी बना लेना ठीक नहीं हो पाई। इसका यही सही माप दण्ड और प्रयोजन सिद्धि है कि शरीर के लिए अथवा अपने-२ शरीर के लिए अनुकूल आपके स्वस्थ रहने योग्य आहार पदार्थों का (शाकाहारी आहार पदार्थों का) सेवन करना उचित होगी। प्रत्येक मनुष्य शरीर की आवश्यकतायें आहार के रूप में गुण और तादात की विविधता होगी। प्रत्येक शरीर अपने अनुपात में आहार को पाकर स्वस्थ रह पाता है। इसको समझना और आचरण में सन्तुलन को यथार्थ रखना, स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान का गवाही है। स्वस्थ मानस स्वस्थ शरीर के द्वारा सटीक अभिव्यक्त होता है। इसलिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता जीवन को है ही। स्वस्थ शरीर संतुलित आहार से सफल होना सहज है। इस प्रकार इन ऊहा पोह को अटपटा बनाना कटुता के क्रम में खड़ा होने की स्थितियां मानव परम्परा के लिए उपयुक्त नहीं है। मापदण्ड तीन रूप में १ सात्विक - ज्यादा से ज्यादा परोपकार, अहिंसकता को, राजसिक - भोग प्रवृत्तियों को बढ़ाने तथा तामसिक - जिससे क्रोध, मद, मात्सर्य बढ़ता है। इनको भी खान पान से जोड़ेंगे। खानपान के लिए स्वास्थ्य संपन्न का मापदण्ड चाहिए। स्वास्थ्य के आधार पर पथ्य अपथ्य। प्याज में गन्धक (सल्फर) परिपक्व रूप में शरीर के विस्तृत काल गतिमान होता है। लहसुन में फास्फोरस, नाइट्रोजन परिपक्व रूप में। पित्त को गलाने, मेद दोष से बचाने में उपयोगी। हृदय, रक्तचाप में उपयोगी। 1-3 gm लहसुन औषध रूप में प्रसिद्ध। जीरा, धनिया - पित्त नाशक। काली मिर्च - कफ नाशक

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्र में संगीतीकरण

व्यक्ति की पहचान परिवार में होना सहज है। यही मूल बात है। इसी के आधार पर ग्राम परिवार स्वयं समाज का आरम्भिक रूप है। यह अपने में सर्वांग सुन्दर होता है। जैसा ग्राम स्वराज्य के रूप में गठित होने लगता है। यही विश्व परिवार के रूप में होने पर वह अखण्ड समाज की ख्याति पाता है। यह समाज का अर्थ क्रम से राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्र तक अथवा सम्पूर्ण राष्ट्र तक एक परिवार रूप में वैभवित होना और उसी के साथ स्वराज्य व्यवस्था प्रभावशील हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगीत का तात्पर्य है। स्वराज्य विधि का सार्वभौमता स्पष्ट होने के कारण इसकी सम्भावना और समीचीनता स्पष्ट है। इसे व्यवहारान्वयन करना ही हमारा कार्य और निष्ठा है।

अस्तित्व, अ० में सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक भौतिक रचना और विरचनाओं में संगीतीकरण

अस्तित्व नित्य वर्तमान होना पहले स्पष्ट किया जा चुका है। अस्तित्व स्वयं सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में सहअस्तित्व है। फलस्वरूप विकास सहज रूप में दृष्टिगोचर होती है। दृष्टिगोचर का तात्पर्य समझ में आने से है। विकास मूलतः परमाणु में होना प्रतिपादित हो चुकी है। परमाणु में निहित अंशों के संख्या भेद से उसकी जाति और मात्रा और आचरण स्पष्ट है। इसी प्रकार अर्थात् इन तीनों तत्वों के योगफल में होकर परमाणु अपने स्वत्व सहित व्यवस्था के रूप में प्रमाणित है। अस्तित्व में जीवन और पदार्थ का विभाजन रेखा नहीं है। फलत यह ओतप्रोत है। इसी के फलस्वरूप विकास की बात स्पष्ट हुई है।

इसी क्रम में अर्थात परमाणुओं में निहित अंशो में, संख्या भेद क्रम में गठन पूर्णता एक घटना है। इस घटना के अनन्तर जीवन सत्ता में रूपान्तर होती है। मूलतः परमाणु होते हुए जीवन में जीवनीय गुण- आशा, विचार, इच्छा संकल्प और अनुभवों के रूप में स्पष्ट हो जाती है। यही जीवनीय क्रम का आरम्भ आशा से आरम्भ होकर अनुभव तक जीवन जागृति की आवश्यक प्रयास अनवरत होता है। फलस्वरूप मानव में जीवन जागृति प्रमाणित होने का अवसर है। इसी अवसर के आधार पर मनुष्य अपने को दृष्टापद में प्रमाणित करना आरम्भ करता है। क्रम से जागृत होकर प्रमाणों को व्यक्त करने योग्य हो जाता है। ऐसी योग्यता मानव परम्परा में जीवन विद्या से सार्थक हो जाता है। फलस्वरूप क्रम से ये अध्ययन अर्थात अस्तित्व, सह अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक भौतिक रचना और विरचना अध्ययन गम्य हो जाते हैं। ये सब जीवन विद्या के प्रकाश स्पष्ट होते हैं। इस प्रकार इन सब में दृष्टापद प्रतिष्ठा के अनुसार अस्तित्व में प्रसिद्ध, पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था रूपी अवस्थाओं में परस्पर पूरकता उदात्तीकरण, विकास और जागृति के रूप में सहित प्रमाणित होती है

110692

उत्पादन, व्यवहार, विचार, अनुभव समुच्चय के साथ जीने की कला

मानव सहज रूप में ही उक्त चारों आयामों अपने को पाता है। इसमें न्यूनाधिकताएं हो सकती है कि कोई किसी आयाम में, दूसरा किसी आयाम विशेष रूप में विस्तार कर लिया हो। अन्य आयामों में उतना विशालता और परिपूर्णता नहीं आया हो। यही मनुष्य में विविधता का प्रधान रूप है। इसका कारण जागृति के क्रम में विभिन्न स्थिति में मनुष्य का होना ही है।

कहे गये चारों आयामों में सामरस्यता और संगीत तभी प्रमाणित होती है जब मनुष्य जागृति पूर्ण हो जाता है। जागृति पूर्णता होने के अनन्तर उसकी निरंतरता सहज होने के कारण संगीत का भी निरंतर हो पाती है। जैसा अनुभवों के आधार पर अर्थात अस्तित्व में अनुभव के आधार पर ही मनुष्य विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान को सहज ही तर्क शैली में पूरा पाता है। इसी से फलस्वरूप नित्य सर्वतोमुखी समाधान

निष्पन्न होने लगते हैं। अनुभव के फलस्वरूप प्रामाणिकता एवं
अभिव्यक्ति के रूप में सहज सुलभ होती है। ऐसी प्रमाणिकता
और सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न बौद्धिक और वैचारिक महिमा
जब व्यवहार में और व्यवसाय में व्यक्त होता है तब न्याय-
पूर्ण व्यवहार, और आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना
सहज हो जाता है। फलस्वरूप सम्बन्धों एवं मूल्यों का
पहचान, निर्वाह सहज हो जाती है। ये ही पुन: अनुभव के
लिए स्रोत बनती है। अनुभव निरन्तर जानने, मानने,
पहचानने, निर्वाह करने के क्रम में फैलता ही रहता है। इस प्रकार
अनुभव स्थिति में होते हुए प्रामाणिकता जाति के रूप में व्यवहार
व्यवसाय तक पहुँच उसके प्रत्यावर्तन में अनुभव के लिए
स्रोत होना सहज है।

मानव मूलत: सुख धर्मी और संस्कारानुषंगी इकाई
होने के कारण मनाकार को साकार करने वाला और मन:स्वस्थता का
आशावादी तथा प्रामाणिक होने के रूप में व्याख्यायित है। इसी क्रम
में मानव सहज ज्ञान (जीवन ज्ञान/जीवन सहज अनुभव ज्ञान)
नित्य समीचीन है। इसके लिए जीवन जागृति इनके मानव
परम्परा में प्रामाणिक होने की कार्यक्रम के रूप में अनुभव,
विचार, व्यवहार और उत्पादन उत्पादन योजना
प्रधानत: दो ध्रुवों पर आधारित है। पहला आवश्यकता,
दूसरा श्रम नियोजन विधि। इसका स्रोत अथवा नित्य स्रोत
प्राकृतिक ऐश्वर्य है। व्यवहार का अथवा मानव व्यवहार का दो
ध्रुव समीचीन है (i) मूल्य और (ii) मूल्यांकन
इसका सम्पूर्ण स्रोत प्राकृतिक और मानव सम्बन्ध एवं
और उसका निर्वाह रूप है। विचारों का भी दो ध्रुव समीचीन है,
विवेचना और विश्लेषण। इसका सम्पूर्ण स्रोत सह अस्तित्व है।
अनुभव के भी दो ध्रुव अस्तित्व और जीवन। इसका
नित्य समग्र स्रोत जीवन जागृति और विकास है।
इन समुच्चय रूप जीवन और जीवन महिमा
होने के कारण जीने की कला इनके रचनाओं के साथ व्यक्त होना
सहज है। इसी के लिए सम्पूर्ण शिक्षा, संस्कार, संविधान
और स्वराज्य व्यवस्थाओं का सूत्र, व्याख्या, अध्ययन अध्यापन
का कार्यक्रम सम्पन्न होने की आवश्यकता आ चुकी है। इसी
[illegible]

मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद, शास्त्र और योजनाओं में सामरस्यता अथवा एक रूपता का स्वरूप

मध्यस्थ दर्शन :- सभी विकारों, आवेशों से मुक्त स्वभावगति प्रतिष्ठा का अनुभव, उसकी अभिव्यक्ति है। ऐसी अभिव्यक्ति विचार रूपमें, व्यवहार रूप योजना रूप में व्यक्त होना सहज है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अनुभव मूलक पद्धति, प्रणाली नीति से सम्बद्ध सम्पूर्ण अभिव्यक्तियां व्यवस्था के रूप में ही प्रकाशित होते हैं। क्योंकि अनुभव सहज ही अस्तित्व सहज, सह अस्तित्व सहज, विकाससहज, जीवन सहज, जीवनजागृति सहज और रासायनिक भौतिक रचना विरचना सहज सत्य का अनुभूति यह सब अपनेमें व्यवस्था और व्यवस्थामें भागीदारी है। यही अनुभव का बिन्दु है। इसका तात्पर्य ये ही हुआ अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व होने के कारण ही सम्पूर्णव्यवस्था का रूप है। यह अनुभव होता है। अस्तित्व के आधार पर विकास अपने में एक व्यवस्था है। यह अनुभव होता है। जीवन अपने में एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्थामें भागीदारी है इस तथ्य का अनुभव होता है। इसी क्रम में प्रत्येक परमाणु, अणु, कोषा अपने में एक व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी है यह अनुभव होता है। जीवनजागृति अपनेमें एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्थामें भागीदारी है इस तथ्यका अनुभव होता है। इसका विशद चर्चा, पाठ विभिन्न लिपियों में प्रस्तुत किया गया है। वही वाद और शास्त्र के रूप में प्रस्तुत है। अनुभव जानने मानने की तृप्ति बिन्दु में उसकी निरन्तरता है। जानने मानने की प्रधान बिन्दु [illegible] सम्मलित रूप में अस्तित्व है। अस्तित्व को जानने, मानने पर जो भी तृप्ति बिन्दु बनती है उसकी निरन्तरता जीवन पर्यन्त तक मानवपरम्परा में अभिव्यक्त होती ही। यह शिक्षा, संस्कार, व्यवस्था और संविधान का सूत्र व्याख्या होने के कारण यह परम्परागत रूप में वर्तमान होने की व्यवस्था अस्तित्व में है। इसीप्रकार ऊपर कहे हुए सभी बिन्दुओं में जानने मानने की तृप्ति बिन्दु और उसकी निरन्तरता प्रमाणित्व और प्रमाणों के रूप में साबित हो जाती है।

अनुभव के आधार पर सर्वतोमुखी समाधान सुलभ हो जाता है। जब विवेक सम्मत विज्ञान शैली और विज्ञानसम्मत विवेक शैली के तृप्ति बिन्दु और उसकी निरन्तरता में समाधान स्पष्ट हो जाता है। इसी क्रम में व्यवहार में सम्बन्धों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह के तृप्ति बिन्दु में न्याय स्वयं सुलभ होना पाया जाता है। मनुष्य परिवार

मूलक व्यक्तित्व होने के फलस्वरूप परिवारिक आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर देना अथवा उत्पादन में भागीदार हो जाना नियम पूर्ण व्यवस्था है। यही व्यवहार में अर्पित समर्पित होने के साक्षी के आधार इसका सन्तुलन उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनीयता के रूप स्पष्ट हो जाता है। इस विधि से जो तत्व स्पष्ट हुआ अर्थात प्रयोजन स्पष्ट हुआ। वह सम्प्रयोजन अनुभव के लिए वस्तु हो जाती है। इस प्रकार मध्यस्थ दर्शन, अनुभवों को आवेश से मुक्त जीवन जागृति सहज स्वभाव गति प्रतिष्ठा के रूप में प्रतिपादित किया है। इसी के आधार पर ~~जब~~ यह मानव व्यवहार दर्शन, मानव कर्म दर्शन, मानव अभ्यास दर्शन और मानव अनुभव दर्शन के रूप में परिभाषित है। इसी अनुभव जब क्रिया शैली में अवतरित हुई वह समाधानात्मक भौतिकवाद, अनुभवात्मक अध्यात्मवाद और व्यवहारात्मक जनवाद के रूप में प्रस्तुत है। यह वाद स्वयं सर्वतोमुखी समाधान की अभिव्यक्ति है। इसके आधार पर शास्त्र प्रस्तुत हुआ वह ~~सौर्य के~~ आवर्तनशील अर्थ चिन्तन, मानव संचेतना वादि मनोविज्ञान, व्यवहारवादी जन चेतना (मानवीयता) पूर्ण मनुष्य का आचार संहिता रूपी संविधान प्रस्तुत हुआ है।

इन शास्त्रों के आधार पर मानवीय शिक्षा योजना, मानवीय संस्कार योजना, मानवीय संविधान योजना, मानवीयता पूर्ण परिवार मूलक स्वराज्य योजनाएं प्रस्तुत हुई हैं।

इस प्रकार इन में सामरस्यता स्वयं स्पष्ट है क्योंकि मूल में व्यवस्था, व्यवस्था की अभिव्यक्ति में ही सम्पूर्ण अनुभव, विचार, व्यवहार, उत्पादन पुनः व्यवस्था को जीने की कला के रूप में प्रमाणित कर देना अथवा साक्षित कर देना ही इस प्रयास का प्रयोजन है।

<u>समाधानात्मक भौतिकवाद</u> :— समाधानात्मक भौतिकवाद स्वभाव का प्रतिपादन है कि सम्पूर्ण विकास सत्ता में प्रकृति सम्पृक्त होकर क्रियाशीलता के रूप में व्यक्त है। और यह सम्पूर्ण वस्तु विकासक्रम में है। विकास स्वभाव गति प्रतिष्ठा का द्योतक है। प्रत्येक अवस्था में स्वभाव गति के लिए सम्भावना उदयशील रहता ही है। यह नित्य प्रभावी है। नित्य प्रभाव का कारण सह अस्तित्व है। अस्तित्व ही स्वयं सह अस्तित्व होने के कारण स्वभाव गति की सम्भावना नित्य सहज है। ~~इस~~

दूसरी विधि से प्रतिपादन – सम्पूर्ण प्रकृति क्रम, गति, परिणाम को प्रकाशित करते हैं। यह विधि का आरोपित क्रम में होने वाले आचरण है। क्रम ~~के लिए~~ विश्राम के लिए, गति गन्तव्य के लिए और परिणाम अमरत्व के लिए नियति है। इसी क्रम में सम्पूर्ण प्रकृति विकासक्रम और गतिशील है। इस क्रम में सम्पूर्ण पदार्थ- (पदार्थावस्था) प्राण, जीव और ज्ञानावस्था में गण्य हो का विकास को स्पष्ट कर देता है। इस स्पष्टता क्रम स्वभाव गति – प्रत्येक एक के लिए परमावश्यक रहता है। इसका प्रकाशन और प्रमाण प्रत्येक एक अपने त्व सहित व्यवस्था होना और समग्र व्यवस्था में भागीदार होना अस्तित्व में स्पष्ट है।

तीसरी विधि सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति पूरकता ~~विधि~~ उदात्तीकरण विकास और संक्रमण विधि से विकास के सम्पूर्ण चरणों को प्रमाणित किए। पदार्थावस्था प्राणावस्था के लिए पूरक है। इसका प्रमाण इस धरती में है। सम्पूर्ण वनस्पतियाँ [illegible] हैं धरती के गुणों को विकसित अवस्था में प्राणावस्था के रूप प्रकाशित किया है। इस सादृश्य से प्रत्येक व्यक्ति समझ में आता है। इसमें और भी एक सत्य मनुष्य को प्राप्त होता कि पदार्थावस्था में प्राणावस्था का मूल / आशय / विकास विधि समाहित रहा है। सादृश्य से ऐसी [illegible] सहज ही निकलती है। इसी के साथ और एक सत्य सूत्र [illegible] स्पष्ट होता है कि जो सूक्ष्म रूप में अपना कारण रूप में था वही वह होकर प्राणावस्था व पदार्थावस्था के लिए पूरक होता है। पदार्थावस्था प्राणावस्था के लिए पूरक होता ही है और उदात्तीकरण भी होता है। उदात्तीकरण का मूल रूप रासायनिक वैभव है। रासायनिकता पदार्थावस्था का देन है। रसायन पदार्थ अर्थात विजातीय दो पदार्थ अपने अपने आचरणों से सम्पन्न रहते हुए जब एक दूसरे से मिलते हैं तब वे दोनों अपने-2 आचरणों को त्याग कर, दोनों मिलकर एक आचरण को प्रकाशित करना आरम्भ करते हैं। इसी विधि से सम्पूर्ण रासायनिक क्रियाएं वैभवित हैं। इसको सम्पूर्ण मानव देखने योग्य क्रिया कलाप है। विश्वास है वह व्यापक रूप में देखा भी होगा। यदि शेष कुछ बचा होगा उसको आगे आदिमानव मानव अपने आप देख लेगा। सामान्य रूप में रासायनिक वैभव का सूत्र यही है क्योंकि रासायनिक द्रव्यों सम्पूर्ण कोशाओं का रचना [illegible] सहज रूप में प्रकाशित है। हर कोशा अपने-अपने में अपने आचरण सूत्र को बनाए रखता है। उसी प्रकार अनेक कोशाएं मिलकर एक रचना को स्थापित कर लेते हैं। पुनः यह बीज [illegible] न्याय विधि से परम्परा को स्थापित किए हैं। मूलतः बीज यही है कि कोशा के नाम रूप में निहित स्थित आचरण सूत्र। इस प्रकार प्रत्येक एककोशी द्विकोशी और बहुकोशी संरचनाओं को पाया गया है। इनका आचरण को देखने पर पता चलता है कि प्रत्येक कोशा अपने में पूर्ण व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के सूत्र से सूत्रित है। इसी प्रकार प्रत्येक

परमाणु भी अपने त्वासहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी की सूत्र से सूत्रित है। इसका साक्ष्य लोहा-लोहत्व से, व्यवस्था होना, समग्र व्यवस्था में भागीदार होना। अर्थात सह अस्तित्व वादी होना सहज रूप में देखा जाता है।

जीवावस्था भी प्राणावस्था, पदार्थावस्था के लिए पूरक होना और पदार्थावस्था/प्राणावस्था - जीवावस्था के लिए पूरक होना सहज स्वरूप के रूप में देखने को मिलता है। मनुष्य शरीर भी प्राण कोशाओं से ही रचित रचना है। इसके लिए भी पदार्थ, प्राण व जीव - पूरक होना पाया जाता है। मनुष्य के अध्ययन से पता चलता है कि मानव - मानव के लिए भी और मनुष्येतर प्रकृति के लिए पूरक होने में अभी तक स्पष्ट रूप रेखा नहीं बनी। मनुष्य का ही आचरण सहित विविधता से भ्रमित हो गयी है। इसलिए मानव अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होने का स्वरूप में सहज स्वीकार करने की आवश्यकता है और अनुसार सभी चीज़ें निरंतर प्रतिपादन को, विश्लेषणों को समाधानात्मक भौतिक में किया है।

व्यवहारात्मक जनवाद :→ व्यवहारात्मक जनवाद का प्रतिपाद्य है कि मानव अस्तित्व सहज रूप में सामाजिक इकाई है ना कि समुदायिक। अभी तक के अनेक प्रयासों से यथा - विचारधारात्मक धार्मिक व्यवस्थात्मक, राजनैतिक व्यवस्थात्मक, शैक्षणिक - व्यवस्थात्मक, संस्कारिक व्यवस्थात्मक; प्रचार साहित्य, कलात्मक विधियों से जितना भी प्रयास हुआ वह सब अभी तक समुदायगत चेतना सामग्री ही रह गया। हर समुदाय अपने श्रेष्ठता, ज्येष्ठता के चक्कर में फँसकर शताब्दियों अथवा सहस्रों शताब्दियों कष्ट भोगता ही रहा। कष्ट का सामान्य आकलन द्रोह, विद्रोह, शोषण और युद्ध रहा। इसी कारण वश मनुष्य में असुरक्षा की कल्पना बढ़ती रही। फलतः संग्रह की आवश्यकता भास होती रही। इसी के प्रमाण में संग्रह, भोग, अथवा सुविधा भोग प्रवृत्ति, भय मुक्ति के लिए शरण हुआ। जबकि भय मुक्ति अभी तक हुई नहीं, क्योंकि समाज बना नहीं। अखण्ड समाज मानव के सामाजिक होने का प्रमाण इस धरती पर होगा। अन्यथा समुदायिक विद्रोह युद्धों से मनुष्य इस धरती पर रहना दुष्कर हो जायेगा। इसी धर्म संकट अथवा पशोपेश (फँसी हुए प्रश्न) के उत्तर में समाधानात्मक भौतिकवाद प्रतिपादित हुई। इसका प्रधान मुद्दा यह है कि मानव शरीर और जीवन का संयुक्त आकार रूप है। प्रत्येक मनुष्य कर्म स्वतंत्र

कल्पनाशील है। प्रत्येक मनुष्य न्याय का याचना करने वाला और जागरूकता
का आशावादी है। मनुष्य कर्म करते समय स्वतन्त्र, फल भोगते समय में
परतन्त्र है। मनुष्य ही संस्कारानुषंगी इकाई है। अन्य प्रकृति क्रमशः
जीवावस्था - वंशानुषंगी, प्राण - बीजानुषंगी और पदार्थ परिणामानुषंगी
है। मनुष्य से पहले के तीनों अवस्थाओं में न तो सुधार की आवश्यकता
है तथा न ही मनुष्य कोई सुधार कर सकता है। इस आधार पर उनपर आप
स्पष्ट होता है कि मानव अपने को सुधार लेगा तभी उसका कल्याण मार्ग
का प्रशस्त है। कल्याण मार्ग का तात्पर्य व्यवहार रूप में समाधान,
समृद्धि, अभय, सह अस्तित्व सुलभ होना।

मानव अपने व्यवहारिक कल्याण मार्ग के लिये योग्य अनुसन्धान
एक आवश्यकता के रूप में सम्मुख हुआ है और अनुसन्धान रूप में मानव
के सम्मुख यह व्यवहारात्मक जनवाद का अनुसन्धान एक प्रस्ताव के रूप में
प्रस्तुत है। पहले मनुष्य का अस्तित्व सहज मौलिक गुणों को स्पष्ट किया
जा चुका है। ऐसी सहज गुणों का पोषण में अथवा उन गुणों में निहित
आशयों के अर्थ में अनुसन्धान सहज है। जैसा मनुष्यों में कर्म स्वतन्त्रता
कल्पनाशीलता प्रत्येक मनुष्य में समान रूप में विद्यमान है। ऐसी
विद्यमानता स्वयं इस बात का द्योतक है कि इसके दृष्टि बिन्दु का
परिचय मनुष्य को। मनुष्य में अथवा प्रत्येक मनुष्य में जानने, मानने
पहचानने, निर्वाह करने का सहज गुण विद्यमान है। इन दोनों गुणों को
जागृति क्रम में अर्थात जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के क्रम
में नियोजित करने पर सहज ही व्यवहारात्मक जनवाद स्पष्ट हो जाता है।
इस विधि से मानव सामाजिक प्राणी होना स्वीकारने की वस्तु है। इसका
उपाय मानव सहज विधि से सह अस्तित्व के रूप में सूचित है। जैसा समाधानात्मक
भौतिकवाद के सूत्र परिचय में प्रकट होने के लिए प्रश्न होना अनिवार्य स्थिति है।
ऐसी पूरकता विधि में कितने भी अनदेखी मानव के साथ रहना मानव ही
आज तक की समुदाय चेतना का कारण है। जब सम्पूर्ण एक-एक अपने
त्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी है उसी प्रकार मनुष्य
भी अपने त्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होना
सहज है।

मनुष्य में सम्बन्धों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह करने की गुण, सह-
अस्तित्व सहज रूप में देखने को मिलता है। प्रत्येक मनुष्य कहीं न कहीं किसी न किसी
के साथ विश्वास निर्वाह करता है। कुछ क्षण भी जो मनुष्य स्वभाव गति
में रहता है उन सब में ऐसे गुणों को आकलित किया जाता है अथवा आकलन
होता है। इससे यह पता लगता है कि मनुष्य सहज रूप में विश्वास के साथ

परम्परा में सुखी हो पाता है। इस गुणात्मकता की मनुष्य में होते हुए इसका प्रोत्साहन और जागृति विशालता की ओर साधिकार होने के स्थान पर अथवा बनाने के स्थान पर समुदाय चेतना के अर्थ में संस्कारों, राज्यों ने अपना कार्य करना शुरू किया। मनुष्य को इससे तृप्ति नहीं मिला। फलस्वरूप समुदाय में अन्तर विरोध पनपता रहा। ऐसा अन्तर विरोध ही अन्ततोगत्वा द्रोह, विद्रोह का कारण होता रहा। इससे अर्थात ऐसे द्रोह विद्रोह ~~शोषण, युद्ध~~ से किंवा शोषण और युद्ध से भी इसका कोई उत्तर मिला नहीं। प्रत्येक मनुष्य का आशय अभय है। सहअस्तित्व समाधान, समृद्धि है। यह सहअस्तित्व पूर्वक ही सर्वसुलभ होना समीचीन है।

मनुष्य में सह अस्तित्व - अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होती है। जिसकी विधि परिवार मूलक स्वराज्य योजना के रूप में मानव को अर्पित किया है।

मानव समझदारी के साथ ईमानदारी, ईमानदारी के साथ जिम्मेदारी, और जिम्मेदारी के साथ स्वयं में एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य समझदारी से ही अपने कल्याण मार्ग को पहचान पायेगा। समझदारी स्वयं जागृति के अर्थ में प्रमाणित होता है।

समझदारी का स्वरूप मनुष्य का अध्ययन से आरम्भ होता है। क्योंकि मानव समाज में भागीदारी को निर्वाह करने के लिए पहले मनुष्य ही अध्ययन वस्तु हो पाया जाता है। मनुष्य के अध्ययन में जीवन विद्या प्रधान भाग है। जीवन विद्या के साथ ही अपना जीवन ज्ञान के साथ ही स्वयं पर विश्वास श्रेष्ठता के प्रति सम्मान सहज रूप में व्यक्त होता है यही अखण्ड समाज का मूल तत्व है। क्योंकि जीवन तृप्ति शरीर की आवश्यकता इन दोनों का सन्तुलित बिन्दु को पहचानने वाला मनुष्य ही है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को जीवन विद्या से दीक्षित होना अति अनिवार्य स्थिति है।

जीवन ज्ञान के प्रकाश में ही सम्पूर्ण सम्बन्ध, मूल्य, स्थिति गति मूल्यांकित होता है। फलस्वरूप जागृति के पद भेद ~~की~~ से अथवा विकास के पद भेद से अभिव्यक्त मौलिकताएं मूल्यांकित हो

आते हुए भी सुने हुए अध्यात्म के प्रति आस्था, निष्ठा को अनेकानेक व्यक्तियों ने अर्पित किया। अधिकांश लोग अध्यात्म समझने वाली वस्तु नहीं है ये एक इंगित मात्र प्रशंसा और वर्णन है। इस इंगित भाग में से महिमा के रूप में अध्यात्म को आनन्द स्वरूप बताया गया। मनुष्य में अथवा सभी मनुष्य में इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक कार्य कलापों में क्षणिक रूप में सुख भासता रहा। उसकी निरन्तरता की अपेक्षा जीवन सहज कार्य रहा। इसी आधार पर न समझा हुआ अध्यात्म होते हुए बुजुर्गों अथवा जिनको हम श्रेष्ठ जनमानते रहे उनके आश्वासनों शिरोधार्य करते हुए अध्यात्म साधना में अर्पित करते रहे। इस क्रम में जो कुछ दिन साधक विरक्तिवादी चरित्र को अथवा आचरणों को व्यक्त कर पाया उनको आदर्श चरित्र होने का सम्मति लोकमत से मिलता रहा। जो स्वयं विरक्तिवादी चरित्र का आचरण नहीं करते रहे। ऐसे ही अधिकांश लोग ऐसा पाया जाता रहा। इस क्रम में कुछ दिनों बाद वह साधक पुनः पहले कहे हुए आध्यात्म साधना स्वयं परमार्थ आधार है वह परमानन्द ही है इस बात का अनुमोदन करते रहे। इस प्रकार शिष्यानुमोदन की परम्परा बनते आयी। पुनः वही आश्वासन, इन्द्रिय सन्निकर्ष में सुख की निरन्तरता का न होना के योग फल में विरक्तिवादी आचरण के उम्मीदवारों की उपज होती आया।

मूलतः आदर्शवादी विचार का उद्गमन मानव द्वारा ही हुआ है वह उत्पीड़न का जवाब के रूप में आया कि कबीला अथवा ग्राम नायक युग जिसका सिद्धान्त "जिसकी उसकी भैंस" की पीड़ा से उभरना आशय रहा। तदाशय के लिए मनीषियों ने जो चिन्तन किया, जिसके लिए अन्तर्मुखी विधि (मौन विधि) को अपनाया। परम मौन अवस्था में जो कुछ भी भास, आभास, प्रतीति और अनुभूति हुई वह परम मौन, निर्विशेष, सम्मोहनता ही रहा। आज भी मौन विधि ~~से समाध~~ ध्यान समाधी जिसको कहा गया है वह परम मौन, निर्विशेष सम्मोहनता का दर्शक पद में ही ~~धरम~~ प्रमाणित हो पाती है। उसका अभिव्यक्ति आज भी ऐसे ही होता है जैसे पहले ऋषु: ने सत्य को अनिर्वचनीय कहते। इस स्थिति को अनुभव करने के उपरान्त कोई उत्तर सत्य को

पाता है। अन्यथा इसमें जीवमूल्य, अधिमूल्य होना सहज सम्भव है। यही जीवमूल्य, अधिमूल्य अथवा विमूल्य की अन्तर्वि गतिक्रम में अन्तरविरोध का तत्व है। क्योंकि मनुष्य में मूल्य और सम्बन्धों का मूल्यांकन विधि से ही अभयता का अनुमान होना पाया जाता है। इस आधार पर अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदार होने के लिए स्वयं एवं व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होना आवश्यक है। इसको सार्वजनिक करने की दिशा में व्यवहार व्यवहारात्मक जनवाद प्रस्तावित है।

मानव सहज रूप में ही व्यवसाय, व्यवहार, विचार अनुभव समुच्चय के रूप में स्पष्ट है। इन सभी आयामों में प्रत्येक मनुष्य का वर्चस्व मौलिक रूप में गण्य होता है। यही स्वयं की पहचान और प्रकाशन है। इस प्रकाशन क्रम में अनुभव पूर्वक ही विचारों का सन्तुलन और विचारों के सन्तुलन के आधार पर व्यवहार सन्तुलन (स्वयं में एवं व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी) ~~के आधार~~ व्यवहार सन्तुलन के ~~के~~ आधार पर व्यवसाय सन्तुलन, व्यवसाय सन्तुलन के आधार पर वैसर्गिक सन्तुलन ~~और~~ सहज होता है।

सम्पूर्ण अनुभव अस्तित्व में होती है। क्योंकि ~~अस्तित्व~~ अस्तित्व में ही सम्पूर्ण भाव वस्तु विद्यमान है। अनुभव का सम्पूर्ण वस्तु भी अस्तित्व ही है। मानव भी अस्तित्व में अविभाज्य इकाई है। इन सभी तत्वों के आधार पर मनुष्य जागृति पूर्वक सामाजिक होता है अर्थात अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदार होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की दृष्टापद प्रतिष्ठा में अस्तित्व सहज रूप में है। इस अनुपम अधिकार का अपना अवसर को प्रयोग करने के क्रम में ही मानव अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था को पाता है। अन्यथा भ्रमित होकर मानवता के विपरित व वैसर्गिकता के विपरित कुकर्मों को करता है। फलस्वरूप दुःख पाता है। दुःख मुक्ति के लिए प्रत्येक मनुष्य अपने में एवं व्यवस्था सार्वभौम व्यवस्था में भागीदार होना ही एकमात्र उपाय है। इसकी सम्भावना पूर्णतया स्त भी चीज है। इसके लिए मानव चेतना परम्परा रूपी अथवा मानव परम्परा के रूप में प्रमाणित विविध शिक्षा, संस्कार संविधान, राज्य व्यवस्था का विकल्प - व्यवहारात्मक जनवादी विचार शैली से सिद्ध होता है। यही आज की आवश्यकता है।

<u>अनुभवात्मक अध्यात्मवाद</u> :- यह एक आदि कालीन प्रश्न रहा कि अध्यात्म जो कुछ भी वस्तु का नाम दिया वह वस्तु के रूप में अस्तित्व में वर्तमान में प्रमाणित नहीं हो पाया। उसकी प्रमाणिकता की ललक मानव में प्रकारान्तर से बनता ही रहा। इस में मूलतः ना समझ में

अनुभवपूर्वक
यथावत् उद्घाटित करने के लिए कोई सूत्र नहीं मिला। तत्पश्चात उसका
दृष्टा पद के लिए उम्मीद [illegible] अध्ययन, प्रयास किये। उपरान्त
दृष्टा पद का अर्थात अस्तित्व में समाधि का दृष्टा पद महिमान्वित
हुआ। फलस्वरूप अध्यात्म को अनुभव के रूप में व्यक्त करना
सहज हुआ।

अस्तित्व सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में नित्य विद्यमान वर्तमान
और प्रकाशमान है क्योंकि अस्तित्व ही सम्पूर्ण भाव है सम्पूर्ण वस्तु है,
सम्पूर्ण ऊर्जा है। मनुष्य भी अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान है।
अस्तित्व न घटता न बढ़ता। अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व होने
के कारण घट ~~बढ़~~ बढ़ने के आरोपों से या घटनाओं से मुक्त है।
इसका तात्पर्य यह हुआ कि अस्तित्व शाश्वत है क्योंकि ~~आवश्यकीय~~ अशाश्वतीयता का
किसी शाश्वत वस्तु के आधार पर ही आकलन किया जा सकता है और
कल्पना किया जा सकता है, आकलन किया जा सकता है और
मूल्यांकन किया जा सकता है। इस क्रम में किसी भाव के आधार पर ही
अथवा भाव की अपेक्षा में अभाव की परिकल्पना हो पाती है। यह
प्रत्येक मनुष्य में होने वाली सहज क्रिया है। ~~[illegible]~~

मनुष्य सहजरूप में शाश्वत और अशाश्वत की
कल्पना और प्रमाणों को संजोये रखा। जैसा शरीर छोटे से बड़ा होता है
और एक दिन विरचित हो जाता है जिसको हम मृत्यु कहते हैं।
इसी प्रकार जीव, जानवर, वृक्ष, पौधे एक दिन विरचित हो जाते हैं
जिसको हम मर गया कहते हैं। इसी क्रम में [illegible] पाषाण ~~[illegible]~~ धातु
शीघ्र परिणाम को प्राप्त कर लेते हैं उसकी स्थिति को अशाश्वत माना
जाता है। इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर इन सबको माया मिथ्या प्रकट
मानने के लिए मानसिकता तैयार कर ली और समाधि की अवस्था में
देखा गया, अपार महिमा को कहा, [illegible] मानने के लिए तैयार हो गए।
फलस्वरूप संसार को समझने के लिए जीव जगत अशाश्वत, नश्वर
और मायिक करार देते हुए जो समाधि में देखा हुआ महिमा को ईश्वर
नाम दिया। इसी को सत्य, ज्ञान, अनन्त भी कहा। परमात्मा भी कहा।
इस प्रकार मनुष्य भी मायिक चक्र में फंसकर भ्रमित होने के लिए
बाध्य होता गया। जिस महिमा को समाधि बोध, निर्वाण अवस्थाओं में देखा
गया उसी को ब्रह्म भी कहा। इस बीच जीवों के हृदय परमात्मा का वास
अथवा आत्मा का वास बताते हुए [illegible] अपेक्षा आत्मा सगुण है।
आत्मा परमात्मा से अभिन्न है इस बात को [illegible] ग्रस्त होकर चर्चा किया।
ये सब होते हुए विरक्तिवादी चरित्र में अर्पित होते हुए मनुष्य का
सांगोपांग अध्ययन नहीं पाया। साथ ही मनुष्य सामाजिक इकाई
होने का वैभव को सार्थक बनाने की विधि नहीं मिल पायी।

अस्तित्व और समाधि को दृष्टापद के आधिकार द्वारा
देखने पर पता चला कि मनुष्य अथवा प्रत्येक मनुष्य
जीवन और शरीर का संयुक्त साकार रूप है। जीवन भी क्रिया है।
शरीर भी क्रिया है। इसके अलावा को देखने पर पता चला
जीवन अक्षय बल अक्षय शक्ति सम्पन्न क्रिया है, जबकि शरीर
क्षरणशील बल और शक्ति सम्पन्न क्रिया है। सिद्धान्त यही है कि
अधिक बल और शक्तियां कम बल और शक्ति के माध्यम से
अभिव्यक्त, सम्प्रेषित, प्रकाशित होती हैं। इसका प्रथम प्रमाण
अस्तित्व स्वयं सहअस्तित्व होने के रूप में प्रमाणित है। सम्पूर्ण
प्रकृति सत्ता में सम्पृक्त है। सत्ता व्यापक ~~और~~ ऊर्जा है।
इसकी अवस्थिति सर्वत्र समान है। इसकी ल० चौ० का
गणित क्रिया ~~पर~~ पंगु हो जाती है वह भी ऋण धनात्मक रूप
में अनन्त की संज्ञा में कुण्ठित हो जाती है। अनुभव में भी
यही स्पष्ट होती है कि अनुभव के अनन्तर अनुभव के
लिए सम्भावना उदयशील रहता है। इसलिए अनुभव
कैसा होता है का इससे पता चलता है। कितना होता है यह मनुष्य
की आवश्यकता अथवा इच्छा अथवा जिज्ञासा के अनुसार
विशालता का अनुभव हो पाता है। इसके उपरान्त और विशालता
की सम्भावना समीचीन रहता है। यह प्रत्येक व्यक्ति को जागृत
विधि अभ्यास पूर्वक होने वाली अनुभव है। अनुभव स्वयं
अनुक्रम से अर्थात जीवन जागृति क्रम से होने वाले परमोपलब्धि
है। उपलब्धि मूलतः जीवन जागृति ही है। क्योंकि अस्तित्व
सदा वर्तमान है। अस्तित्व में ही सत्ता का बोध पाया जाता है।
इसलिए सत्ता में ~~अ~~ मुग्ध होने मात्र से अस्तित्व विश्लेषित
होना सम्भव नहीं है। इसलिए अनुभव को लोकगम्य
बनाने के लिए, लोक सुलभ रूप देने के लिए अस्तित्व में
अनुभव होना आवश्यक है। अनुभव दृष्टापद का ही स्वरूप है। अनुभव में
जानने, मानने का दृष्टि बिन्दु निष्पन्न होती है। यही प्रमाणिकता का स्रोत है।
यह प्रमाणिकता प्रमाणों के ~~आप~~ आप अन्य को बोधगम्य कराने का
कार्य करता है। यही अभिव्यक्ति है। प्रमाणों को सम्प्रदाय के अर्थ में
व्यक्त कर देना ही अभिव्यक्ति है यह अनुभव का ही फलन है।
अनुभव दृष्टापद का महिमा है। ये अनुभूत है। जीवन नित्य होने
के कारण अनुभव ~~नित्य~~ नित्य होना जागृति सहज है।

अस्तित्व में मानव ही जीवन जागृति सहज हुआ करने की व्यवस्था है। क्योंकि मानव
परा में प्रमाणों के रूप में बोधगम्य सहज गति है। इसके द्वारा
परम्परा में शिक्षासंस्कार अध्ययन ~~शील~~ सहज मानव में मानवत्व
अनुभव परम्परा को मानव परम्परा में समाहित करना मानव में सफल बनाने, सहज
सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को सफल बनाने, सहज आवश्यक है। सम्पूर्ण अनुभव अस्तित्व
बनाने और सर्व सुलभ बनाने के लिए आवश्यक है। सह अस्तित्व, सहअस्तित्व
है। और अस्तित्व में प्रधान आयामों के रूप में सह अस्तित्व, स० अ० में
में विकास, स० अ० में जीवन, स० अ० में जीवन जागृति और स० अ० में
रासायनिक भौतिक रचना व विरचनाएं दृष्टव्य है। इनमें से जीवन स्पष्ट होती है
और जीवन जागृति जीवन विद्या साधना क्रम में स्पष्ट होती है। इस प्रकार
और अन्य आयाम अध्ययन पूर्वक बोधगम्य हो जाते हैं जो मनुष्य को
अस्तित्व में ऐसी कोई वस्तु नहीं रह पाती ~~है~~ है जो
समझ में नहीं आता है। यही अनुभवात्मक अध्यात्मवाद का
प्रतिपाद्य है।

13-06-92

~~भावों यथा स्थिति का मोह एवं उससे उत्पन्न~~

यथा स्थिति का मोह, समस्या और समाधान

आदिकालीन वांगमय के आधार पर वर्तमान में पाये जाने वाली यथा स्थिति ~~स्थिति में~~ ~~के~~ अध्ययन का सार संक्षेप ~~है~~ है कि मनुष्य आरम्भिक ~~स्था~~ स्थिति में वनवासी होना सहज रहा। वन्य पशु और वनोपज के आधार पर आजीविका ~~की~~ आधारित रही। इस आरंभिक युग में वनोपजों को ~~संग्रह~~ अधिक संग्रहण करने वाला अभ्यास और तादात के आधार पर ~~॰~~ बड़े छोटे का परिकल्पना ~~उस~~ आरम्भ हुआ। जिसके पास ज्यादा संग्रहण हो गया उसका विनिमय के फलस्वरूप दूसरों से संग्रहण कराने लगे/ दूसरे से संग्रहण कार्य सम्पन्न होने से बड़ और बड़ होता गया। ~~यहीं से~~ ~~वनवासी युग कृषि युग में आया~~। इस बीच यह भी एक मूल्यांकन प्रचलित रहा कि जो वन्य प्राणियों को अथवा दुष्ट प्राणियों का वध कर सकता था उसको सर्वाधिक सम्मान मिलता रहा।

~~मानव जैसे वनवासी युग से कृषि युग में और संक्रमित हुआ~~ इस बीच यह भी बात स्पष्ट होता है कि जो जितना अपनी यथा स्थिति को बना लिया पत्ता, वल्कल, पुष्प आदि चीजियों से अलंकार कलाओं को विकसित कर लिया और रहन

File No.

श्री रण सिंह आर्या के द्वारा
श्रीबाबा के सान्निध्य में
हुये स्पष्ट - तथ्यों का
लिखित (Photocopy) Record -